दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

मोहनीय कर्म

ज्ञानावरणीय कर्म

आयुष्य कर्म

छठा-कर्मग्रन्थ

-: संपादक :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

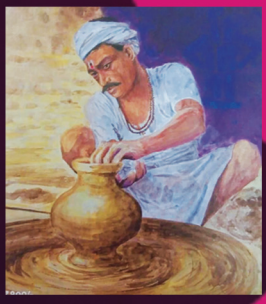

गोत्र कर्म

अंतराय कर्म

नाम कर्म

श्री चन्द्रमहत्तराचार्य विरचित

छठा - कर्मग्रन्थ

◆ सम्पादक ◆

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक
स्व.पू.आ. श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के
तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी,
निःस्पृह शिरोमणि, सूक्ष्म तत्त्व चिंतक, भावाचार्य तुल्य
पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के
कृपापात्र चरम शिष्यरत्न **गोडवाड के गौरव, मरुधररत्न,**
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

205

प्रकाशन

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : द्वितीय • मूल्य : 210/- रुपये • प्रतियां : 1000
विमोचन स्थल : पेसुआ (राज.) • विमोचन : दि. 11-6-2024
. • Website : Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल, चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार, मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छ में सर्वाधिक हिन्दी साहित्य सर्जक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में **आलेखित संपादित 205 वीं पुस्तक 'छठा कर्मग्रन्थ'** की द्वितीय आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

वर्षों पूर्व आचार्यश्री का संकल्प था कि जैनधर्म के प्राथमिक अभ्यास के रूप में पंच प्रतिक्रमण, चार प्रकरण, तीन भाष्य और छह कर्मग्रन्थों पर हिन्दी विवेचन हों तो भारत देश के अनेक प्रांतों में रहनेवाली हिन्दीभाषी प्रजा लाभान्वित हो सकती है ।

दक्षिण भारत के कर्णाटक, तामिलनाडु, आंध्रप्रदेश के विविध शहरों में राजस्थानी जैन प्रजा बसी हुई है, परंतु जैनधर्म के विशेष अध्ययन हेतु हिन्दी साहित्य नहींवत् उपलब्ध है ।

पूज्य आचार्यश्री ने अपने संयम जीवन के पिछले 47 वर्षों में निरंतर अनथक प्रयत्न कर पंच प्रतिक्रमण, चार प्रकरण, तीन भाष्य एवं छह कर्मग्रंथों पर हिन्दी विवेचन तैयार किया है ।

इन विवेचनों को तैयार करने में पूर्व प्रकाशित हिन्दी-गुजराती प्रकाशनों का भी आधार लिया गया है । उन सभी लेखकों के प्रति हम कृतज्ञता भाव अभिव्यक्त करते हैं ।

काल के प्रभाव से तात्त्विक साहित्य की स्वाध्याय रुचि दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है । फिर भी यह तात्त्विक साहित्य योग्य आत्माओं को तो अवश्य लाभ करेगा ही, भले ही उनकी संख्या कम क्यों न हो !

शासन देव से हमारी यह मंगल प्रार्थना है कि पूज्यश्री दीर्घायु बनें और उनके वरद हस्तों से तात्त्विक-सात्त्विक साहित्य सर्जन की धारा सदैव प्रवाहित रहे, इसी मंगल कामना के साथ ।

सम्पादक की कलम से...

जैनधर्म जगत् कर्तृत्व के रूप में किसी ईश्वर को नहीं मानता है ।

जैनधर्म की मान्यतानुसार यह संसार अनादिकाल से है और अनंत काल तक रहेगा ।

इस संसार में हर आत्मा का अस्तित्व भी अनादिकाल से है ।

आत्मा के इस संसार परिभ्रमण का मूल कारण कर्म ही है ।

कर्म के दो भेद हैं-द्रव्यकर्म और भावकर्म । राग-द्वेष की परिणति के कारण आत्मा में पैदा होनेवाले शुभ-अशुभ अध्यवसायों को भावकर्म कहते हैं, जबकि उन्हीं कर्मों से आत्मा में लगनेवाली कार्मण वर्गणा को द्रव्य कर्म कहा जाता है ।

द्रव्यकर्म का कारण भावकर्म है ।

यद्यपि द्रव्यकर्म स्वयं जड़ हैं, परंतु भाव कर्मों के कारण ही उन कर्मों में आत्मा को सुख-दुःख देने की शक्ति पैदा होती है ।

गणधर भगवंतों के द्वारा विरचित दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग में **अग्रायणीय पूर्व** की पाँचवीं वस्तु के **चौथे प्राभृत** के आधार पर कर्मग्रंथ संबंधी अनेक ग्रंथों का सर्जन हुआ है । **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय देवेन्द्रसूरिजी म.सा.** ने स्व-पर हित के लिए तीन भाष्यों के साथ पाँच कर्मग्रंथों का भी श्रेष्ठ सर्जन किया है, इनके स्वाध्याय से जैन दर्शन को मान्य कर्म के संदर्भ में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है ।

वर्तमान में श्वे.मू.संघ में छठे कर्मग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध ग्रंथ के रचनाकर **श्री चंद्रमहत्तराचार्य** हैं । ग्रंथ के प्रारंभ में ही **'नीसंदं दिट्ठिवायस्स'** अर्थात् बारहवें अंग **'दृष्टिवाद'** का झरणा कहकर इस ग्रंथ की उत्पत्ति का निर्देश कर दिया है ।

कुछ समय बाद पूज्य आचार्यश्री ने इस ग्रंथ पर **मलयगिरिजी म.** ने संस्कृत भाषा में सुंदर टीका की रचना की थी । उस टीका को समझने के लिए **पं. जयसोम म.** ने टबा की भी रचना की थी ।

सेठ वेणीचंद सुरचंद द्वारा स्थापित श्री यशोविजय जैन धार्मिक पाठशाला (श्री जैन श्रेयस्कर मंडल) महेसाणा की ओर से लगभग 90 वर्ष पूर्व चार प्रकरण तथा तीन भाष्य की भाँति 1 से 6 कर्मग्रन्थों का भी गुजराती विवेचन प्रकाशित हुआ था ।

हिन्दी भाषा में भी वीर संवत् 2474 में फूलचंद शास्त्री द्वारा अनूदित और **पं. सुखलालजी** द्वारा सम्पादित हिन्दी विवेचन प्रकाशित हुआ था ।

कुछ वर्षों पूर्व स्थानकवासी परम्परा में हुए **श्री मिश्रीमलजी म.** ने भी एक से छह कर्मग्रन्थों पर हिन्दी भाषा में विस्तृत विवेचन तैयार किया था ।

उन सभी विवेचनों को लक्ष्य में रखकर इस विवेचन का सम्पादन किया है ।

ग्रन्थ को सरल व सुबोध बनाने में मेरा तो यत्किंचित् ही प्रयास रहा है, ज्यादा श्रम तो पूर्व के विवेचनकारों का ही है ।

'कर्मग्रन्थों' का अभ्यास जैनधर्म की आधार-शिला है । इनका जितना अधिक ठोस अभ्यास होगा, उतनी ही जैनदर्शन पर तात्त्विक श्रद्धा दृढ़ बनेगी ।

काल के प्रभाव से तात्त्विक कर्मग्रन्थों के अभ्यास की रुचि घटती जा रही है, फिर भी योग्य आत्माओं को तो यह विवेचन लाभ करेगा । बस, इसी मंगल भावना से स्वाध्यायी की अल्प संख्या होने पर भी यह संक्षिप्त विवेचन तैयार किया है ।

बीसवीं सदी के महान् योगी, निःस्पृह शिरोमणि, सूक्ष्म तत्त्व चिंतक पूज्यपाद भवोदधितारक परम गुरुदेव **पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** की अदृश्य कृपावर्षा से ही मेरी साहित्ययात्रा गतिमान है । उनकी कृपावर्षा मुझ पर सदैव बरसती रहे इसी अपेक्षा के साथ ।

महावीर भवन, चंद्रगुप्ता रोड,
मैसूर (कर्णाटक),
मौन एकादशी पर्व, सं.2075
दि.19-12-2018

निवेदक
गुरुपादपद्म रेणु
रत्नसेनसूरि

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादो सुद-3, विक्रम संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी पू. पंन्यास **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष, 4 मास
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर, निगडी ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।

◆ **पादविहार :** लगभग 47,000 कि.मी. ।

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 243

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., स्व. मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.
मुनि श्री महापुण्यविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई), लोढाधाम (मुंबई) ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

छठा-कर्मग्रन्थ-मूलसूत्र

सिद्धपएहिं महत्थं, बन्धोदयसंतपयडिठाणाणं ।
वुच्छं सुण संखेवं, नीसंदं दिट्ठिवायस्स ।।1।।

कइ बंधंतो वेयइ ? कइ कइ वा संतपयडिठाणाणि ?
मूलुत्तरपगईसुं, भंगविगप्पा मुणेअव्वा ।।2।।

अट्ठविहसत्तछब्बंधएसु अट्ठेव उदयसंतंसा ।
एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबंधम्मि ।।3।।

सत्तट्ठबंध अट्ठुदय, संत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगम्मि पंच भंगा, दो भंगा हुंति केवलिणो ।।4।।

अट्ठसु एगविगप्पो, छस्सुवि गुणसंनिएसु दुविगप्पा ।
पत्तेअं पत्तेअं, बंधोदयसंतकम्माणं ।।5।।

पंचनवदुन्निअट्ठा-वीसा चउरो तहेव बायाला ।
दुन्नि अ पंच य भणिया, पयडीओ आणुपुव्वीए ।।6।।

बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमे वि उदय संतंसा हुंति पंचेव ।।7।।

बंधस्स य संतस्स य, पगइट्ठाणाइ तिण्णि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइ दुवे चउ पणगं दंसणावरणे ।।8।।

बीआवरणे नवबंधए(गे)सु, चउ पंच उदय नव संता ।
छच्चउबंधे चेवं, चउबन्धुदए छलंसा य ।।9।।

उवरयबंधे चउ पण, नवंस चउरुदय छच्च चउसंता ।
वेअणिआउयगोए, विभज्ज मोहं परं वुच्छं ।।10।।

गोअंमि सत्त भंगा, अट्ठ य भंगा हवंति वेअणिए ।
पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो उ ।।11।।

बावीस इक्कवीसा, सत्तरसं तेरसेव नव पंच ।
चउ तिग दुगं च इक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स ।।12।।

एगं व दो व चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्ठाणाणि नव हुंति ।।13।।

अट्ठ य सत्त य छच्चउ तिग दुग एगाहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस, इत्तो पंचाइ एगूणा ।।14।।

संत्तस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स हुंति पन्नरस ।
बन्धोदयसंते पुण भंगविगप्पा बहू जाण ।।15।।

छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो ।
नवबंधगे वि दुण्णि उ इक्किक्कमओ परं भंगा ।।16।।

दस बावीसे नव इग वीसे सत्ताइ उदयकम्मंसा ।
छाईनव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्ठेव ।।17।।

चत्तारिआइ नवबंधएसु, उक्कोस सत्त मुदयंसा ।
पंचविहबंधगे पुण, उदओ दुण्हं मुणेअव्वो ।।18।।
इत्तो चउबंधाई इक्किक्कुदया हवंति सव्वे वि ।
बंधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा हुज्जा ।।19।।
इक्कग छक्किक्कारस दस सत्त चउक्क इक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगिक्कंमिक्कारा ।।20।।
नवतेसीइसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
अउणुत्तरिसीयाला पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।21।।
नवपंचाणउअसएउदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
अउणत्तरि एगुत्तरि पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।22।।
तिन्नेव य बावीसे, इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे ।
छच्चेव तेर-नव-बंधएसु पंचेव ठाणाणि ।।23।।
पंचविह चउविहेसुं छ छक्क सेसेसु जाण पंचेव ।
पत्तेअं पत्तेअं चत्तारि य बंधवुच्छेए ।।24।।
दस-नव-पन्नरसाइं, बंधोदय सन्त पयडिठाणाणि ।
भणिआणि मोहणिज्जे, इत्तो नामं परं वुच्छं ।।25।।
तेवीस पन्नवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंधट्ठाणाणि नामस्स ।।26।।
चउ पणवीसा सोलस, नव बाणउईसया य अडयाला ।
एयालुत्तर छायाल सया, इक्किक्क बंधविही ।।27।।
वीसिगवीसा चउवीसगा उ, एगाहिआ य इगतीसा ।
उदयट्ठाणाणि भवे, नव अट्ठ य हुंति नामस्स ।।28।।
इक्क बिआलिक्कारस तित्तीसा छस्सयाणि तित्तीसा ।
बारस सत्तरससयाण-हिगाणि बिपंचसीईहिं ।।29।।
अउणत्तीसिक्कारस, सयाणिहिअ सतरसपंचसट्ठीहिं ।
इक्किक्कगं च वीसा, दट्ठुदयंतेसु उदयविही ।।30।।
ति दुनउई गुणनउई, अडसी छलसी असीइ गुणसीई ।
अट्ठ य छप्पन्नत्तरि, नव अट्ठ य नामसंताणि ।।31।।
अट्ठ य बारस बारस, बंधोदय संतपयडिठाणाणि ।
ओहेणाएसेण य, जत्थ जहासंभवं विभजे ।।32।।
नव पणगोदय संता, तेवीसे पन्नवीस छव्वीसे ।
अट्ठ चउरट्ठवीसे, नव सगि गुणतीस तीसम्मि ।।33।।
एगेगमेगतीसे, एगे एगुदय अट्ठ संतम्मि ।
उवरयबंधे दस दस, वेअगसंतम्मि ठाणाणि ।।34।।
तिविगप्प-पगइ-ठाणेहिं, जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु ।
भंगा पउंजिअव्वा, जत्थ जहा संभवो भवइ ।।35।।

तेरससु जीवसंखेवएसु, नाणंतराय तिविगप्पो ।
इक्कम्मि ति दुविगप्पो, करणं पइ इत्थ अविगप्पो ।।36।।
तेरे नव चउ पणगं, नव संतेगम्मि भंगमिक्कारा ।
वेअणि-आउय-गोए, विभज्ज मोहं परं वुच्छं ।।37।।
पज्जत्तगसन्निअरे, अट्ठ चउक्कं च वेयणिअभंगा ।
सत्त य तिगं च गोए, पत्तेअं जीवठाणेसु ।।38।।
पज्जत्ताऽपज्जत्तग, समणे पज्जत्तअमण सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसगं, नवगं पणगं च आउस्स ।।39।।
अट्ठसु पंचसु एगे, एग दुगं दस य मोहबंधगए ।
तिग चउ नव उदयगए, तिग तिग पन्नरस संतम्मि ।।40।।
पण दुग पणगं पण चउ, पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पण छप्पणगं छच्छ-प्पणगं अट्ठऽट्ठ दसगं ति ।।41।।
सत्तेव अपज्जत्ता, सामी सुहुमा य बायरा चेव ।
विगलिंदिआउ तिन्नि उ, तह य असन्नी सन्नी अ ।।42।।
नाणंतराय तिविहमवि, दससु दो हुंति दोसु ठाणेसु ।
मिच्छासाणे बीए, नव चउ पण नव य संतंसा ।।43।।
मिस्साइ निअट्टीओ छच्चउ पण नव य संतकम्मंसा ।
चउबंध तिगे चउ पण, नवंस दुसु जुअल छस्संता ।।44।।
उवसंते चउ पण नव, खीणे चउरुदय छच्च चउ संता ।
वेअणि-आउअ-गोए विभज्ज मोहं परं वुच्छं ।।45।।
चउ छस्सु दुन्नि सत्तसु एगे चउगुणिसु वेअणियभंगा ।
गोए पण चउ दो तिसु एगट्ठसु दुन्नि इक्कंमि ।।46।।
अट्ठच्छाहिगवीसा, सोलस वीसं च बारस छ दोसु ।
दो चउसु तीसु इक्कं, मिच्छाइसु आउए भंगा ।।47।।
गुणठाणएसु अट्ठसु इक्किक्कं मोहबंधठाणं तु ।
पंच अनिअट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ।।48।।
सत्ताइ दस उ मिच्छे, सासायणमीसए नवुक्कोसा ।
छाई नव उ अविरए, देसे पंचाइ अट्ठेव ।।49।।
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि ।
अनिअट्टिबायरे पुण, इक्को व दुवे व उदयंसा ।।50।।
एगं सुहुमसरागो, वेएइ अवेअगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं, पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ।।51।।
इक्क छडिक्कारिक्का-रसेव इक्कारसेव नव तिन्नि ।
एए चउवीसगया, बार दुगे पंच इक्कम्मि ।।52।।
बारस-पणसट्ठि सया, उदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
चुलसीई सत्तुत्तरि, पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।53।।

अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य, चउरो अ हुंति चउवीसा ।
मिच्छाइअपुव्वंता, बारस पणगं च अनिअट्टी ।।54।।
जोगोवओगलेसाइएहिं, गुणिआ हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे, हवंति ते तत्थ गुणकारा ।।55।।
अट्ठट्ठी बत्तीसं, बत्तीसं सट्ठिमेव बावन्ना ।
चोआलं दोसु वीसा, विअ मिच्छमाईसु सामन्नं ।।56।।
तिन्नेगे एगेगं तिग, मीसे पंच चउसु तिग पुव्वे ।
इक्कार बायरम्मी, सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ।।57।।
छन्नव छक्कं तिग सत्त दुगं, दुग तिग दुगंतिअट्ठ चऊ ।
दुग छच्चउ दुग पण चउ, चउ दुग चउ पणग एगचऊ ।।58।।
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ, छउमत्थ-केवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ, अट्ठ चउ दु छक्कमुदयंसा ।।59।।
चउ पणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य बाणउई ।
बत्तीसुत्तरछायाल-सया, मिच्छस्स बन्धविही ।।60।।
अट्ठ सया चउसट्ठी, बत्तीससयाइं सासणे भेआ ।
अट्ठावीसाईसुं, सव्वाणऽट्ठहिग छन्नउई ।।61।।
इगचत्तिगार बत्तीस छसय इगतीसिगारनवनउई,
सतरिगसि गुतीसचउद, इगार चउसट्ठि मिच्छुदया ।।62।।
बत्तीस दुन्नि अट्ठ य, बासीइसया य पंच नव उदया ।
बारहिआ तेवीसा, बावन्निक्कारस सया य ।।63।।
दो छक्कऽट्ठ चउक्कं पण नव इक्कार छक्कगं उदया ।
नेरइआइसु सता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ।।64।।
इग विगलिंदिअ सगले, पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण छक्किक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ।।65।।
इअ कम्मपगइ-ठाणाणि सुट्ठु बंधुदय-संतकम्माणं ।
गइआइएहिं अट्ठसु, चउप्पयारेण नेआणि ।।66।।
उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मुत्तूण य इगयालं सेसाणं सव्वपयडीणं ।।67।।
नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्ज मिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेआऽऽउआणि नवनाम उच्चं च ।।68।।
तित्थयराहारग-विरहिआउ अज्जेइ सव्वपयडीओ ।
मिच्छत्तवेअगो सासणो वि गुणवीससेसाओ ।।69।।
छायालसेस मीसो, अविरयसम्मो तिआलपरिसेसा ।
तेवन्न देसविरओ, विरओ सगवन्नसेसाओ ।।70।।
इगुणट्ठि-मप्पमत्तो, बंधइ देवाउअस्स इअरो वि ।
अट्ठावन्नमपुव्वो, छप्पन्नं वावि छव्वीसं ।।71।।

बावीसा एगूणं, बंधइ अट्ठारसंत-मनिअट्टी ।
सत्तरस सुहुमसरागो सायममोहो सजोगुत्ति ।।72।।
एसो उ बंधसामित्त-ओहो गइआइएसु वि तहेव ।
ओहाओ साहिज्जइ, जत्थ जहा पगइसब्भावो ।।73।।
तित्थयर-देवनिरयाउअं च तिसु तिसु गईसु बोधव्वं ।
अवसेसा पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गईसु ।।74।।
पढमकसायचउक्कं, दंसणतिग सत्तगा वि उवसंता ।
अविरयसम्मत्ताओ, जाव निअट्टित्ति नायव्वा ।।75।।
सत्तऽट्ठ नव य पनरस, सोलस अट्ठारसेव गुणवीसा ।
एगाहि दु चउवीसा, पणवीसा बायरे जाण ।।76।।
सत्तावीसं सुहुमे, अट्ठावीसं च मोहपयडीओ ।
उवसंतवीअराए, उवसंता हुंति नायव्वा ।।77।।
पढमकसायचउक्कं, इत्तो मिच्छत्त-मीस-सम्मत्तं ।
अविरय सम्मे देसे, पमत्ति अपमत्ति खीअंति ।।78।।
अनियट्टिबायरे थीण गिद्धितिग-निरयतिरिअनामाओ ।
संखिज्जइमे सेसे तप्पाउग्गाउ खीअंति ।।79।।
इत्तो हणइ कसाय-दुगंपि पच्छा नपुंसगं इत्थिं ।
तो नोकसायछक्कं, छुहइ संजलणकोहंमि ।।80।।
पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणं च छुहइ मायाए ।
मायं च छुहइ लोहे, लोहं सुहुमंपि तो हणइ ।।81।।
खीणकसायदुचरिमे, निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
आवरणमंतराए, छउमत्थो चरमसमयम्मि ।।82।।
देवगइसहगयाओ, दुचरम समयभविअम्मि खीअंति ।
सविवागेअरनामा नीआगोअं पि तत्थेव ।।83।।
अन्नयर-वेअणीअं मणुआउअ मुच्चगोअ नव नामे ।
वेएइ अजोगिजिणो, उक्कोस जहन्न मिक्कारा ।।84।।
मणुअगइ जाइ तस बायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं ।
जसकित्ती तित्थयरं, नामस्स हवंति नव एआ ।।85।।
तच्चाणुपुव्विसहिआ, तेरस भवसिद्धिअस्स चरमम्मि ।
संतंसगमुक्कोसं, जहन्नयं बारस हवंति ।।86।।
मणुअगइसहगयाओ, भवखित्तविवाग जिअविवागाओ ।
वेअणिअन्नयरुच्चं, चरम-समयंमि खीअंति ।।87।।
अह सुइअसयलजगसिहर-मरुअनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।
अनिहणमव्वाबाहं, तिरयणसारं अणुहवंति ।।88।।
दुरहिगम-निउण-परमत्थ-रुईर-बहुभंगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरिअव्वा, बंधोदयसंतकम्माणं ।।89।।
जो जत्थ अपडिपुन्नो, अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ।
तं खमिऊण बहुसुआ, पूरेऊणं परिकहंतु ।।90।।
गाहग्गं सयरीए, चंदमहत्तर-मयाणुसारीए ।
टीगाइ निअमिआणं, एगूणा होइ नउईओ ।।91।।

श्री चन्द्रमहत्तराचार्य विरचित ''सप्ततिका'' नामक

छठा-कर्मग्रन्थ

सिद्धपएहिं महत्थं, बन्धोदयसंतपयडिठाणाणं ।
वुच्छं सुण संखेवं, नीसंदं दिट्ठिवायस्स ।।1।।

–: शब्दार्थ :–

सिद्धपएहिं=सिद्धपद वाले ग्रन्थों से,	**वुच्छं**=कहूँगा,
महत्थं=महान् अर्थ वाले,	**सुण**=सुनो,
बंधोदयसंतपयडिठाणाणं=बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के स्थानों को,	**संखेव**=संक्षेप में,
	नीसंदं=निस्यन्द रूप, बिन्दु रूप,
	दिट्ठिवायस्स=दृष्टिवाद अंग का,

गाथार्थ :–सिद्धपद वाले ग्रन्थों के आधार से बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के स्थानों को संक्षेप में कहूंगा, जिसे सुनो । यह संक्षेप कथन महान् अर्थवाला और दृष्टिवाद अंग रूपी महार्णव के निस्यन्द रूप-एक बिन्दु के समान है ।

विवेचन :–तारक तीर्थंकर परमात्मा के मुख से त्रिपदी का श्रवण कर गणधर भगवंत द्वादशांगी की रचना करते हैं । उसी द्वादशांगी के बारहवें अंग के रूप में दृष्टिवाद प्रसिद्ध है ।

इस दृष्टिवाद के प्रणेता सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने से उनके वचन में कहीं झूठ को स्थान नहीं है । ग्रन्थकार महर्षि प्रस्तुत ग्रन्थ में दृष्टिवाद के ही झरने के रूप में प्रसिद्ध महा अर्थवाले पदार्थों का निरूपण कर रहे हैं ।

सिद्धपद के दो अर्थ है–

1) इस **ग्रंथ** के सभी पद सर्वज्ञ कथित वचनानुसार होने से उनमें शंका का कोई स्थान नहीं है । अर्थात् जो वचन सिद्ध अर्थात् शुद्ध-सत्य ही है ।

सिद्धपद कर्म प्रकृति आदि प्राभृतों का वाचक है । दृष्टिवाद महासागर समान है । उसके परिकर्म, सूत्र, प्रथम अनुयोग, पूर्वगत और चूलिका आदि पाँच भेद हैं ।

पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं । दूसरे पूर्व का नाम आग्रायणीय पूर्व है । उसके मुख्य चौदह अधिकार हैं, जिन्हें वस्तु कहते हैं । उनमें पाँचवी वस्तु के बीस अवान्तर अधिकार हैं, उनमें चौथे प्राभृत का नाम

कर्म-प्रकृति है, उस कर्मप्रकृति के आधार पर इस सप्ततिका नामक कर्मग्रन्थ की रचना की गई है।

2) सिद्धपद का दूसरा अर्थ गुणस्थानक व जीवस्थान भी होता है, इनका आधार लिये बिना कर्मप्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता का वर्णन नहीं हो सकता !

`सप्ततिका' नामक इस कर्मग्रंथ में सिर्फ 70 गाथाएं हैं, (भाष्य आदि की गाथाओं के साथ 91 गाथाएं है) परंतु इनमें गंभीर अर्थ रहे हुए हैं। इसीलिए इस गाथा में महत्थं शब्द का प्रयोग किया गया है।

इस ग्रंथ में कर्म के बंध, उदय और सत्ता के प्रकृतिस्थान बतलाए गए हैं।

(1) बंध : लोह और अग्नि के न्याय से अर्थात् जिस प्रकार आग में लोहे के गोले को तपाने पर अग्नि लोहे के गोले में व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि हेतुओं का सेवन करने पर कर्म के परमाणु आत्मा के प्रदेशों के साथ एकमेक हो जाते हैं, उसी को कर्म का बंध कहते हैं।

(2) उदय : कर्म के परमाणु जब अपना फल देने के लिए तैयार होते हैं, उसी को कर्म का उदय कहते हैं।

(3) सत्ता : कर्म के बंध के बाद जब तक उदय द्वारा उस कर्म की निर्जरा नहीं होती है, तब तक वह कर्म आत्मा के साथ ही लगा रहता है। जितने काल तक वह कर्म आत्मा के साथ लगा रहता है, उस काल को सत्ता काल कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में `स्थान' शब्द समुदायवाची है, अतः गाथा में आए प्रकृति स्थान से दो तीन आदि प्रकृतियों के समुदाय का ग्रहण होता है।

`सुण' अर्थात् ध्यान पूर्वक सुनो।

कइ बंधंतो वेयइ ? कइ कइ वा संतपयडिठाणाणि ?
मूलुत्तरपगईसुं, भंगविगप्पा मुणेअव्वा ॥2॥

–: शब्दार्थ :–

कइ=कितनी प्रकृतियों का,
बंधंतो=बंध करने वाला,
वेयइ=वेदन करता है,
कइ-कइ=कितनी-कितनी,
वा=अथवा,
संतपयडिठाणाणि=प्रकृतियों का सत्तास्थान,
मुलूत्तरपगईसुं=मूल और उत्तर प्रकृतियों के विषय में,
भंगविगप्पा=भंगों के विकल्प,
मुणेअव्वा=जानना चाहिए।

गाथार्थ :–कितनी प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियों का वेदन होता है तथा कितनी प्रकृतियों का बंध और वेदन करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियों की सत्ता होती है ? तो मूल और उत्तर प्रकृतियों के विषय में अनेक भंग-विकल्प जानना चाहिए ।

विवेचन :–शिष्य का प्रश्न है– कितनी प्रकृतियों के बंध में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है ?

इसका समाधान देते हुए कहते हैं कि मूल और उत्तर प्रकृतियों के विषय में अनेक भंग (विकल्प) बताए गए हैं ।

बंध स्थान, उसके स्वामी और उनका काल :

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ आठ हैं ।

मूल प्रकृतियों में कुल चार बंधस्थान होते हैं –

1. आठ प्रकृतिक 2. सात प्रकृतिक 3. छह प्रकृतिक 4. एक प्रकृतिक । आठ प्रकृतिक में सभी आठों कर्मों का बंध होता है ।

सात प्रकृतिक में आयुष्य सिवाय सात का बंध होता है । छह प्रकृतिक में आयुष्य और मोहनीय सिवाय छह का बंध होता है । एक प्रकृतिक में सिर्फ शाता वेदनीय का बंध होता है ।

तीसरे मिश्र गुणस्थानक को छोड़ सातवें गुणस्थानक तक आयुष्य का बंध होता है, अतः तीसरे गुणस्थानक को छोड़ छह गुणस्थानक वाले आठ प्रकृतिक बंध के स्वामी हैं ।

मोहनीय का बंध नौवें गुणस्थानक तक होता है, अतः नौवें गुणस्थानक तक सात प्रकृतिक बंध के स्वामी हैं ।

आयुष्य व मोहनीय को छोड़ सिर्फ छह प्रकृतियों का बंध दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में होता है ।

सिर्फ वेदनीय कर्म का बंध 11, 12, व 13 वें गुणस्थानक में होता है ।

बंध स्थानों का काल :

आयुष्य कर्म का जघन्य व उत्कृष्ट बंध काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आठ प्रकृतिक बंध स्थान का काल जघन्य व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

सात प्रकृतियों के बंध का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल छह मास और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष का त्रिभाग अधिक तैंतीस सागरोपम है ।

छह प्रकृति का जघन्य व उत्कृष्ट बंध काल अन्तर्मुहूर्त है । एक प्रकृति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ न्यून एक पूर्व करोड वर्ष है ।

उदय स्थान : उदय की अपेक्षा से तीन भंग होते हैं-1. आठ प्रकृति का उदय, 2. सात प्रकृति का उदय और 3. चार प्रकृति का उदय ।

मोहनीय कर्म का उदय हो तो आठों कर्मों का उदय होता है । आठ कर्मों का उदय 10वें गुणस्थानक तक होता है ।

मोहनीय को छोड़ सात कर्मों का उदय उपशांतमोह व क्षीणमोह गुण-स्थानक में होता है ।

चार अघाती कर्मों का उदय सयोगी-अयोगी गुणस्थानक में है ।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान के तीन विकल्प 1. अनादि-अनंत 2. अनादि सांत और 3. सादि-सांत ।

अभव्यों के अनादि-अनंत, भव्यों के अनादि-सांत और उपशांत मोह से पतित जीवों की अपेक्षा सादि-सांत होता है ।

सादि-सांत भंग में आठ प्रकृति के उदय का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपार्ध पुद्गल परावर्त काल है ।

सात प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

चार प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट काल कुछ न्यून एक करोड पूर्व वर्ष है ।

सत्ता स्थान : स्वामी व काल :

सत्ता के प्रकृतिक स्थान तीन है-आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक व चार प्रकृतिक (1) ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की सत्ता (2) मोहनीय को छोड़ सात कर्मों की सत्ता (3) घाती कर्मों को छोड़ चार अघाती कर्मों की सत्ता ।

स्वामी : (1) 1 से 11 गुणस्थानक तक आठ कर्मों की सत्ता होती है ।

(2) 12 वें क्षीणमोह गुणस्थानक में मोहनीय को छोड़ सात कर्मों की सत्ता होती है ।

(3) सयोगी व अयोगी गुणस्थानक में चार अघाती कर्मों की सत्ता होती है ।

काल :

1. आठ प्रकृतिक सत्ता स्थान का काल अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनंत है तथा भव्य जीवों की अपेक्षा अनादि सांत है ।

2. सात प्रकृतिक सत्ता स्थान क्षीणमोह गुणस्थानक में और जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

3. चार प्रकृतिक सत्ता स्थान 13 वें और 14 वें गुणस्थानक में हैं ।

चार का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व वर्ष है ।

अट्ठविहसत्तछब्बंधएसु अट्ठेव उदयसंतंसा ।
एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबंधम्मि ।।3।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठविहसत्तछब्बंधएसु=अष्टविध, सप्तविध, षड्विध बंध के समय,	**तिविगप्पो**=तीन विकल्प,
अट्ठेव=आठों कर्म की,	**एगविगप्पो**=एक विकल्प
उदयसंतंसा=उदय और सत्ता,	**अबंधम्मि**=अबन्ध दशा में, बंध न होने पर ।
एगविहे=एकविध बंध के समय,	

गाथार्थ :–आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध होने के समय उदय और सत्ता आठों कर्म की होती है । एकविध (एक का) बंध होते समय उदय व सत्ता की अपेक्षा तीन विकल्प होते हैं तथा बंध न होने पर उदय और सत्ता की अपेक्षा एक ही विकल्प होता है ।

विवेचन :–इस गाथा में बंध, उदय व सत्ता के संबंध भंगों का कथन किया गया है ।

(1) तीसरे मिश्र गुणस्थानक को छोड़ सातवें अप्रमत्त गुणस्थानक तक

आठ कर्मों का बंध हो सकता है, उस समय आठों कर्मों का बंध और आठों कर्मों की सत्ता होती है ।

(2) नौवें गुणस्थानक का जीव आयुष्य को छोड़ सात कर्मों का बंध करता हैं, परंतु उदय व सत्ता आठ कर्मों की होती है ।

(3) दसवें गुणस्थानक में छह कर्मों का बंध होता है, परंतु उदय व सत्ता आठ कर्मों की होती है ।

मिश्र गुणस्थानक में आयुष्य का बंध नहीं होता है, अतः वहाँ आठ का बंध नहीं, किंतु आठ कर्मों का उदय व सत्ता है, शेष 7 वें गुणस्थानक तक आठ कर्मों का बंध, उदय व सत्ता है ।

सात प्रकृतिक बंध व आठ का उदय व सत्ता एक से नौवें गुणस्थानक तक है, इस भंग का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से छह माह व अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि का त्रिभाग अधिक तैंतीस सागरोपम है ।

तीसरा भंग सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में होता है, जहाँ छह का बंध व आठ का उदय और सत्ता है । इसका काल जघन्य से एक समय व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

एक वेदनीय कर्म के बंध में तीन विकल्प होते हैं–

(1) एक का बंध, सात का उदय व आठ की सत्ता : यह भंग उपशांत मोह गुणस्थानक में होता है । उपशांतमोह में मोहनीय सिवाय सात का उदय व आठ की सत्ता होती है ।

(2) एक का बंध, सात का उदय व सात की सत्ता : यह भंग क्षीणमोह गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

(3) एक का बंध, चार का उदय व चार की सत्ता : यह भंग सयोगी गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट देशोनपूर्व करोड़ वर्ष है ।

अबंध दशा में एक ही विकल्प है-अयोगी गुणस्थानक में किसी कर्म का बंध नहीं होता है । किंतु वहाँ चार का उदय व चार की सत्ता होती है ।

सत्तट्ठबंध अट्ठुदय, संत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगम्मि पंच भंगा, दो भंगा हुंति केवलिणो ।।4।।

–: शब्दार्थ :–

सत्तट्ठबंध=सात और आठ का बंध,	**पंचभंगा**=पाँच, भंग,
अट्ठुदय संत=आठ का उदय, आठ की सत्ता,	**दो भंगा**=दो भंग,
तेरससु=तेरह में,	**हुंति**=होते हैं,
जीवठाणेसु=जीव स्थानों में,	**केवलिणो**=केवली के
एगम्मि=एक (पर्याप्त संज्ञी) जीवस्थान में,	

गाथार्थ :–एक से तेरह जीवस्थानों में सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता ये दो-दो भंग होते हैं । एक-संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में आदि के पाँच भंग तथा केवलज्ञानी को अन्त के दो भंग होते हैं ।

विवेचन :–जीवस्थान के 14 भेद हैं–

1. अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय	2. पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय
3. अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	**4. पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय**
5. अपर्याप्त बेइन्द्रिय	6. पर्याप्त बेइन्द्रिय
7. अपर्याप्त त्रीन्द्रिय	**8. पर्याप्त त्रीन्द्रिय**
9. अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय	10. पर्याप्त चतुरिन्द्रिय
11. अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय	**12. पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय**
13. अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय	14. पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय

इनमें से प्रथम तेरह जीवस्थानों में 2-2 भंग होते हैं–

1 सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय व आठ प्रकृतिक सत्ता ।

2 आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय व आठ प्रकृतिक सत्ता ।

इन तेरह स्थानों में दर्शन व चारित्र मोहनीय की उपशमना व क्षपणा

नहीं होती है। अतः प्रायः प्रथम ही गुणस्थानक होता है, कुछ जीवों को दूसरा भी गुणस्थानक हो सकता है।

आयुष्य का बंध न हो तब सात प्रकृतिक बंध व आयुष्य के बंध समय आठ प्रकृतिक बंध, उदय व सत्ता का भंग सिद्ध होता है।

पहले भंग का काल जीवस्थान के काल के बराबर होता है व दूसरे भंग का काल जघन्य व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

चौदहवें जीवस्थान पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में पाँच भंग होते हैं।

1. आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता

2. सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता

3. छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता

4. एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता

5. एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय, सात प्रकृतिक सत्ता

इन पाँच भंगों में पहला भंग अनिवृत्ति गुणस्थानक तक, दूसरा भंग अप्रमत्त गुणस्थानक तक, तीसरा भंग उपशम-क्षपक श्रेणी में सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक तक, चौथा भंग उपशांत मोह गुणस्थानक तक तथा पाँचवाँ भंग क्षीणमोह गुणस्थानक तक होता है।

यद्यपि केवलज्ञानी वीतराग भी संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं फिर भी उनके क्षायोपशमिक ज्ञान का अभाव होने से उन्हें संज्ञी न गिनकर, उनके स्वतंत्र दो भंग बतलाए हैं।

(1) एक प्रकृतिक बंध, चार का उदय एवं चार की सत्ता यह भंग सयोगी गुणस्थानक में होता है, जहाँ एक वेदनीय का बंध व अघाती चार का उदय एवं चार की सत्ता होती है।

(2) बंध का सर्वथा अभाव, चार का उदय और चार की सत्ता।

यह भंग अयोगी गुणस्थानक में होता है।

अट्ठसु एगविगप्पो, छस्सुवि गुणसंनिएसु दुविगप्पा ।
पत्तेअं पत्तेअं, बंधोदयसंतकम्माणं ।।5।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठसु=आठ गुणस्थानकों में,	**दुविगप्पो**=दो विकल्प,
एगविगप्पा=एक विकल्प,	**पत्तेअं-पत्तेअं**=प्रत्येक के,
छस्सु=छह में,	**बंधोदयसंतकम्माणं**=बंध, उदय
वि=और,	और सत्ता प्रकृतिस्थानों के ।
गुणसंनिएसु=गुणस्थानकों में,	

गाथार्थ :–आठ गुणस्थानकों में प्रत्येक का बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों का एक-एक भंग होता है और छह गुणस्थानकों में प्रत्येक के दो-दो भंग होते है ।

विवेचन :–आत्मा के विकास के चौदह गुणस्थानक हैं–

1. मिथ्यात्व **2. सास्वादन** 3. मिश्र **4. अविरत सम्यग्दृष्टि**
5. देशविरति **6. सर्वविरति** 7. अप्रमत्त **8. अपूर्वकरण**
9. अनिवृत्तिकरण **10. सूक्ष्मसंपराय** 11. उपशांतमोह
12. क्षीणमोह 13. सयोगी **14. अयोगी**

इन चौदह में से प्रथम बारह गुणस्थानक मोहनीय के क्षय, क्षयोपशम व उपशम के निमित्त से होते हैं ।

अंतिम दो सयोगी और अयोगी गुणस्थानक योग और योग के अभाव के निमित्त से होते हैं ।

मिश्र, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसंपराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी इन आठ गुणस्थानकों में बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा एक ही विकल्प होता है ।

तीसरे आठवें व नौवें गुणस्थानक में सात का बंध, आठ का उदय व आठ की सत्ता का एक ही भंग होता है ।

10 वें गुणस्थानक में छह का बंध, आठ का उदय व आठ की सत्ता का एक ही विकल्प होता है ।

उपशांतमोह गुणस्थानक में एक का बंध, सात का उदय व आठ की

सत्ता का एक ही भंग होता है ।

12 वें गुणस्थानक में 1 का बंध, 7 का उदय व 7 की सत्ता का एक ही भंग होता है ।

13 वें गुणस्थानक में 1 का बंध, चार का उदय व चार की सत्ता का एक ही भंग होता है ।

14 वें गुणस्थानक में बंध का अभाव, चार का उदय व चार की सत्ता का एक ही भंग होता है ।

शेष छह गुणस्थानकों में दो-दो विकल्प होते हैं । पहले, दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें में

(1) आठ का बंध, आठ का उदय व आठ की सत्ता

(2) सात का बंध, आठ का उदय व आठ की सत्ता

पहला भंग आयुष्य बंध के समय व दूसरा भंग आयुष्य बंध के अभाव समय में होता है ।

कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ

पंच-नव-दुन्नि-अट्ठा-वीसा चउरो तहेव बायाला ।
दुन्नि अ पंच य भणिया, पयडीओ आणुपुव्वीए ।।6।।

–: शब्दार्थ :–

पंच=पांच,	**दुन्नि**=दो,
नव=नौ,	**पंच**=पाँच,
दुन्नि=दो,	**य**=तथा,
अट्ठावीसा=अट्ठाईस,	**भणिया**=कही गई है,
चउरो=चार,	**पयडीओ**=प्रकृतियाँ
तहेव=तथा,	**आणुपुव्वीए**=अनुक्रम से ।
बायाला=बयालीस,	

गाथार्थ :–आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ क्रमशः पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो तथा पाँच कही गई हैं ।

विवेचन :–कर्मों के मुख्य आठ भेद हैं, परंतु बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा कुछ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों में भेद है ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयुष्य गोत्र और अंतराय इन छह कर्मों की बंध, उदय और उदीरणा में उत्तरप्रकृतियाँ एक समान ही हैं ।

ज्ञानावरणीय की उत्तरप्रकृतियाँ 5 हैं, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, आयुष्य की 4, गोत्र की 2 तथा अंतराय की 5 हैं ।

मोहनीय कर्म की बंध में उत्तर प्रकृतियाँ 26 हैं तथा उदय व सत्ता में 28 हैं ।

नाम कर्म की बंध में 42 उदय में 67 तथा सत्ता में 93 अथवा 103 हैं ।

इस अपेक्षा आठ कर्मों की बंध में उत्तरप्रकृतियाँ 120 हैं, उदय में 122 हैं तथा सत्ता में 158 हैं ।

उत्तर प्रकृतियों के संवेद्य भंग ज्ञानावरण, अन्तराय कर्म

बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमे वि उदय संतंसा हुंति पंचेव ।।7।।

–: शब्दार्थ :–

बंधोदयसंतंसा=बंध, उदय और सत्ता रूप अंग,	**बंधोवरमे**=बंध के अभाव में,
नाणावरणंतराइए=ज्ञानावरण और अंतराय कर्म में,	**वि**=भी,
पंच=पाँच,	**उदयसंतंसा**=उदय और सत्ता,
	हुंति=होती हैं,
	पंचेव=पाँच की ।

गाथार्थ :–ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म में बंध, उदय और सत्ता रूप अंश पाँच प्रकृतियों के होते हैं । बंध के अभाव में भी उदय और सत्ता पाँच प्रकृतिरुप ही होते हैं ।

विवेचन :–ज्ञानावरणीय की पाँच व अंतराय की पाँच, इन दश प्रकृतियों का बंधविच्छेद 10 वें गुणस्थानक के अंत में तथा उदय व सत्ता का विच्छेद 12 वें गुणस्थानक के अंत में होता है ।

इनके दो विकल्प होते हैं–

(1) पाँच प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता का एक भंग । यह भंग 1 से 10 वें गुणस्थानक तक होता है ।

(2) पाँच प्रकृतिक उदय व पाँच प्रकृतिक सत्ता का दूसरा भंग 11 वें व 12 वें गुणस्थानक में होता है ।

पहले भंग में अनादि-अनंत, अनादि-सांत और सादि-सांत ये तीन विकल्प होते हैं । अनादि-अनंत अभव्य को, अनादि-सांत भव्य को और सादि-सांत-उपशांतमोह से पतित जीवों को होता है ।

पाँच प्रकृतिक उदय व सत्ता का जघन्य काल एक समय व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

ज्ञानावरण व अंतराय के संवेद्य भंग

भंग	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक	जीव-स्थान	काल	
						जघन्य	उत्कृष्ट
1	5	5	5	1 से 10	14	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध पुद्गल-परावर्त
2	0	5	5	11 वाँ 12 वाँ	1 संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त

दर्शनावरण कर्म

बंधस्स य संतस्स य, पगइट्ठाणाइ तिण्णि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइ दुवे चउ पणगं दंसणावरणे ।।8।।

–: शब्दार्थ :–

बंधस्स=बंध के,
य=और,
संतस्स=सत्ता के,
य=और,
पगइट्ठाणाइ=प्रकृतिस्थान,
तिण्णि=तीन
तुल्लाइं=समान,
उदयट्ठाणाइ=उदयस्थान,
दुवे=दो,
चउ=चार,
पणगं=पाँच,
दंसणावरणे=दर्शनावरण कर्म में ।

गाथार्थ :–दर्शनावरणीय कर्म के बंध और सत्ता के तीन प्रकृतिस्थान एक समान होते हैं । उदयस्थान चार तथा पाँच प्रकृतिक इस प्रकार दो होते है ।

विवेचन :–दर्शनावरणीय कर्म के 9 भेद हैं । पाँच निद्राएँ और चार दर्शनावरण ।

इस कर्म के तीन बंधस्थान हैं । (1) नौ प्रकृतिक (2) छह प्रकृतिक और (3) चार प्रकृतिक ।

पहले भंग में सभी का बंध होता है ।

दूसरे भंग छह प्रकृतिक में थीणद्धित्रिक को छोड़कर तीसरे भंग में चार प्रकृति में पाँच निद्राओं को छोड शेष चार ।

1. नौ प्रकृतिक बंध पहले-दूसरे गुणस्थानक में होता है ।

2. छह प्रकृतिक बंध तीसरे से लेकर आठवें गुणस्थानक के पहले भाग तक ।

3. चार प्रकृतिक बंध आठवें के दूसरे भाग से 10 वें गुणस्थानक तक ।

नौ प्रकृतिबंध के अनादि-अनंत, अनादि-सांत व सादि-सांत तीन विकल्प होते हैं ।

अनादि-अनंत भंग अभव्य को, अनादि-सांत भव्य को और सादि-सांत-सम्यक्त्व से पतित को होता है, जिसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्त काल है ।

छह प्रकृति का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल 132 सागरोपम होता है ।

1. उपशम या क्षपकश्रेणी पर चढ़कर अपूर्वकरण के प्रथम भाग में रहता है तब तक अन्तर्मुहूर्त तक छह प्रकृति का बंध ।

2. उपशम सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व में जाए तब अन्तर्मुहूर्त तक छह प्रकृति का बंध ।

जो जीव सम्यक्त्व प्राप्तकर तुरंत ही उपशम-क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हुए अपूर्वकरण के प्रथम भाग से आगे चढ़ते हैं, वह जीव अन्तर्मुहूर्त तक छह प्रकृति का जघन्य बंध करता है ।

जो जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्तकर पुनः मिथ्यात्व में चला जाता है, वह भी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक छह प्रकृति बंध करता है ।

मध्य में मिश्र गुणस्थानक से अंतरित होकर सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल 132 सागरोपम होने से छह प्रकृतिक उत्कृष्ट काल 132 सागरोपम है ।

चार प्रकृतिक का जघन्य बंध एक समय व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

चार प्रकृतिक का बंधकर जो जीव मरकर दूसरे समय में देव बन जाय तो जघन्य बंध एक समय का हुआ और उपशम व क्षपक श्रेणी का संपूर्ण काल अन्तर्मुहूर्त का होने से उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त का होता है ।

सत्ता

उपशांत मोह तक नौ प्रकृति की सत्ता होती है । अनिवृत्ति बादर के दूसरे भाग से क्षीणमोह के उपांत्य समय तक छह की सत्ता होती है ।

क्षीणमोह के अंतिम समय में चार की सत्ता होती है ।

नौ प्रकृतिक सत्तास्थान के दो विकल्प अनादि अनंत व अनंत सांत हैं ।

अनादि-अनंत अभव्य की अपेक्षा से व अनादि सांत भव्य की अपेक्षा होता है ।

छह प्रकृति का सत्तास्थान जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

चार प्रकृति का सत्तास्थान जघन्य व उत्कृष्ट से एक समय का है, क्योंकि यह स्थान क्षीणमोह के अंतिम समय में होता है ।

दर्शनावरणीय के चार प्रकृतिक व पाँच प्रकृतिक दो उदयस्थान हैं ।

पाँच निद्राओं में एक काल में एक ही निद्रा का उदय होता है ।

चार का उदय स्थान क्षीणमोह तक होता है । चार दर्शनावरण में एक निद्रा जुड़ने पर पाँच का उदय होता है, अतः किसी भी निद्रा का उदय होने पर पाँच का उदय कहलाता है ।

बीआवरणे नवबंधए(गे)सु, चउ पंच उदय नव संता ।
छच्चउबंधे चेवं, चउबन्धुदए छलंसा य ।।9।।
उवरयबंधे चउ पण, नवंस चउरुदय छच्च चउसंता ।
वेअणिआउयगोए, विभज्ज मोहं परं वुच्छं ।।10।।

–: शब्दार्थ :–

बीआवरणे=दूसरे आवरण-दर्शनावरण में,
नवबंधए(गे)सु=नौ के बंध के समय,
चउपंच=चार या पाँच का,
उदय=उदय,
नवसंता=नौ प्रकृतियों की सत्ता,
छच्चउबंधे=छह और चार के बंध में,
चेवं=पूर्वोक्त प्रकार से उदय और सत्ता,
चउबंधुदए=चार के बंध और चार के उदय में,
छलंसा=छह की सत्ता,
य=और,
उवरयबंधे=बंध का विच्छेद होने पर,
चउपण=चार अथवा पाँच का उदय,
नवंस=नौ की सत्ता,
चउरुदय=चार का उदय,
छ=छह,
च=और,
चउसंता=चार की सत्ता,
वेअणि=वेदनीय,
आउय=आयुष्य,
गोए=गोत्र,
विभज्ज=विभागकर,
मोहं=मोह को,
परं=बाद में,
वुच्छं=कहेंगे ।

गाथार्थ :–दर्शनावरण की नौ प्रकृतियों के बंध समय चार या पाँच प्रकृतियों का उदय तथा नौ प्रकृतियों की सत्ता होती है । छह और चार प्रकृतियों के बंध समय उदय और सत्ता पूर्ववत् होती है । चार प्रकृतियों का बंध और उदय रहते छह प्रकृतियों की सत्ता होती है एवं बंधविच्छेद हो जाने पर चार या पाँच प्रकृतियों का उदय रहते नौ की सत्ता होती है । चार प्रकृतियों का उदय रहने पर छह और चार की सत्ता होती है ।

वेदनीय, आयुष्य, गोत्र तथा मोह का विभाग कर आगे कहेंगे ।

विवेचन :–पहले व दूसरे गुणस्थानक में दर्शनावरणीय की 9 प्रकृतियों का बंध, चार या पाँच का उदय व नौ की सत्ता होती है ।

दर्शनावरणीय की चार प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं, उनमें निद्रादि पाँच में से एक को जोड़ने पर पाँच का उदय होता है ।

उदय की अपेक्षा दो भंग -

1. नौ का बंध, चार का उदय, नौ की सत्ता ।
2. नौ का बंध, पाँच का उदय, नौ की सत्ता ।

मिश्र गुणस्थानक से उपशामक अपूर्वकरण के पहले भाग तक दो भंग -

1. छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय - नौ प्रकृतिक सत्ता
2. छह प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय - नौ प्रकृतिक सत्ता

उपशामक अपूर्वकरण के दूसरे भाग से सूक्ष्मसंपराय तक दो भंग -

1. चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय - नौ प्रकृतिक सत्ता
2. चार प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय - नौ प्रकृतिक सत्ता

क्षपकश्रेणी की विशेषता

क्षपकश्रेणी में निद्रा व प्रचला का उदय नहीं होता है, अतः उसे दो भंग ही होते हैं–

1. छह का बंध, चार का उदय, नौ की सत्ता (अपूर्वकरण के पहले भाग तक)

2. चार का बंध, चार का उदय, नौ की सत्ता (अनिवृत्तिबादर के संख्यात भागों तक)

क्षपक जीवों को अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय हो जाने से आगे छह की ही सत्ता रहती है ।

अनिवृत्तिबादर से सूक्ष्म संपराय के अंतिम समय तक -

चार का बंध, चार का उदय व छह की सत्ता रहती है ।

उदय व सत्ता की अपेक्षा दो भंग :- (उपशामक को)

1. चार का उदय, नौ की सत्ता ।
2. पांच का उदय, नौ की सत्ता ।

उपशांतमोह गुणस्थानक में नौ की सत्ता होती है, परंतु उदय चार या पाँच का होता है ।

क्षपक को क्षीणमोहगुणस्थानक में :

1. क्षपकश्रेणी में नौवें गुणस्थानक में स्त्यानर्द्धित्रिक व क्षीणमोह के

उपांत्य में निद्राद्विक का भी क्षय हो जाने से

1. चार का उदय - छह की सत्ता
2. चार का उदय - चार की सत्ता - ये दो भंग होते हैं ।

दर्शनावरण के बंध-उदय व सत्ता के संवेद्य भंग

क्रम	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	9	4	4	1, 2,
2.	9	5	9	1,2
3.	6	4	9	3, 4, 5, 6, 7, 8
4.	6	5	9	3, 4, 5, 6, 7, 8
5.	4	4	9	8, 9, 10[3]
6.	4	5	9	8, 9, 10 उपशमश्रेणि
7.	4	4	6	9, 10 क्षपक
8.	4	5	6	9, 10 मतान्तर से [1]
9.	0	4	9	11 उपशामक
10.	0	5	9	11 उपशामक
11.	0	4	6	12 द्विचरम समय पर्यन्त
12.	0	5	6	मतान्तर से
13.	0	4	4	12 चरम समय में

मनुष्य आयु के संवेद्य भंग : इसके भी 9 भंग है-

1. अबंध काल : (1) मनुष्य आयु का उदय व मनुष्य आयु की सत्ता ।

बंधकाल में : (2) नरकायु का बंध-मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य नरकायु की सत्ता ।

(3) तिर्यंच आयु का बंध, मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य - तिर्यंच आयु की सत्ता ।

(4) देव आयु का बंध, मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य देवायु की सत्ता ।

बंध काल के बाद :

(1) मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य - मनुष्य आयु की सत्ता ।

(2) मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य - नरकायु की सत्ता ।

(3) मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य - तिर्यंच आयु की सत्ता ।

(4) मनुष्य आयु का उदय और मनुष्य - देवायु की सत्ता ।

गोत्र कर्म के संवेद्य भेग :

गोत्र कर्म के दो भेद हैं-उच्च गोत्र और नीच गोत्र । दोनों परस्पर विरुद्ध प्रकृतियाँ हैं, अतः एक समय में एक का ही बंध और एक का ही उदय होता है । परंतु दोनों की सत्ता एक साथ में हो सकती है ।

गोत्र कर्म के सात भंग :

1. नीच गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय, नीच गोत्र की सत्ता ।

2. नीच गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय, नीच-उच्च गोत्र की सत्ता ।

3. नीच गोत्र का बंध, उच्च गोत्र का उदय, उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।

4. उच्च गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय, उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।

5. उच्च गोत्र का बंध, उच्च गोत्र का उदय, उच्च नीच गोत्र की सत्ता ।

6. उच्च गोत्र का उदय, उच्च-नीच गोत्र की सत्ता ।

7. उच्च गोत्र का उदय - उच्च गोत्र की सत्ता ।

नरक आयुष्य के संवेद्य भंग

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	अबंधकाल	0	नरक	नरक	1, 2, 3, 4
2.	बंधकाल	तिर्यंच	नरक	न.ति.	1, 2
3.	बंधकाल	मनुष्य	नरक	न.म.	1, 2, 4
4.	उप. बंधकाल	0	नरक	न. ति.	1, 2, 3, 4
5.	उप. बंधकाल	0	नरक	न. म.	1, 2, 3, 4

देवायु के संवेद्य भंग

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	अबंधकाल	0	देव	देव	1, 2, 3, 4
2.	बंधकाल	तिर्यंच	देव	तिर्यंच, देव	1, 2
3.	बंधकाल	मनुष्य	देव	देव, मनुष्य	1, 2, 4
4.	उप. बंधकाल	0	देव	देव, तिर्यंच	1, 2, 3, 4
5.	उप. बंधकाल	0	देव	देव, मनुष्य	1, 2, 3, 4

तिर्यंचगति के भंग

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	अबंध	0	तिर्यंच	तिर्यंच	1, 2, 3, 4, 5
2.	बंध	नरक	तिर्यंच	न.ति.	1
3.	बंधकाल	तिर्यंच	तिर्यंच	तिर्यंच ति.	1, 2,
4.	बंधकाल	मनुष्य	तिर्यंच	म.ति.	1, 2,
5.	बंधकाल	देव	तिर्यंच	देव.ति.	1, 2, 4, 5
6.	उप.बंध	0	तिर्यंच	ति.न.	1, 2, 3, 4, 5
7.	उप.बंध	0	तिर्यंच	तिर्यंच ति.	1, 2, 3, 4, 5
8.	उप.बंध	0	तिर्यंच	ति.म.	1, 2, 3, 4, 5
9.	उप.बंध	0	तिर्यंच	ति.दे.	1, 2, 3, 4, 5

मनुष्यगति के संवेद्य भंग

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	अबंध	0	मनुष्य	मनुष्य	सभी चौदह गुण.
2.	अबन्धकाल	नरक	मनुष्य	नरक मनुष्य	1
3.	अबन्धकाल	तिर्यंच	मनुष्य	म.तिर्यंच	1, 2,
4.	अबन्धकाल	मनुष्य	मनुष्य	म.म.	1, 2,
5.	अबन्धकाल	देव	मनुष्य	म.दे	1, 2, 4, 5, 6, 7
6.	उप. बन्ध	0	मनुष्य	म.न.	1, 2, 3, 4, 5, 6,7
7.	उप.बंध	0	मनुष्य	म. ति.	1, 2, 3, 4, 5 6,7
8.	उप.बंध	0	मनुष्य	म.म.	1, 2, 3, 4, 5, 6,7
9.	उप.बंध	0	मनुष्य	म.दे.	1 से 11 गुण तक

गोअंमि सत्त भंगा, अट्ठ य भंगा हवंति वेअणिए ।
पण नव नव पण भंगा, आउचउक्के वि कमसो उ ।।11।।

–: शब्दार्थ :–

गोअंमि=गोत्र कर्म के विषय में,	**पण नव नव पण भंगा**=पाँच, नौ, नौ, तथा पाँच भंग,
सत्त भंगा=सात भंग,	**आउचउक्केवि**=आयुष्य चतुष्क के विषय में,
अट्ठ=आठ,	**कमसो**=क्रमशः,
भंगा=भंग,	**उ**=और,
इवंति=होते हैं,	
वेअणिए=वेदनीय कर्म के विषय में,	

गाथार्थ :–गोत्र कर्म के विषय में सात भंग, वेदनीय कर्म के विषय में आठ भंग, चार आयुष्य के विषय में क्रमशः पाँच, नौ, नौ तथा पाँच भंग होते है ।

विवेचन :–वेदनीय कर्म के दो भेद हैं-साता और असाता ।

दोनों का बंध और उदय एक साथ में नहीं होता है ।

वेदनीय के संवेद्य भंग :

1. असाता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता ।

2. असाता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता ।

3. साता का बंध, साता का उदय और दोनों की सत्ता ।

4. साता का बंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता ।

इनमें पहले दो भंग पहले गुणस्थानक से छठे गुणस्थानक तक होते हैं । उसके बाद असाता का बंध नहीं होता है ।

तीसरा व चौथा भंग पहले से तेरहवें गुणस्थानक तक होता है ।

अयोगी गुणस्थानक में :-

14 वें गुणस्थानक में साता-असाता के बंध का अभाव होता है । सिर्फ उदय व सत्ता के चार भंग होते हैं–

1. असाता का उदय - दोनों की सत्ता

2. साता का उदय - दोनों की सत्ता

3. असाता का उदय - असाता की सत्ता

4. साता का उदय - साता की सत्ता

इनमें पहले दो भंग 14 वें गुणस्थानक के द्विचरम समय में होते हैं- क्योंकि वहाँ दोनों की सत्ता होती है ।

तीसरा-चौथा भंग चरम समय में होता है, वहाँ साता के क्षयवाले को तीसरा भंग व असाता के क्षयवाले को चौथा भंग होता है ।

वेदनीय कर्म के भंग

भंग क्रम	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थानक
1.	अ०	अ०	सा० असा०2	1, 2, 3, 4, 5, 6.
2.	अ०	सा०	2	1, 2, 3, 4, 5, 6.
3.	सा०	अ०	2	1 से 13 तक
4.	सा०	सा०	2	1 से 13 तक
5.	0	असा०	2	14 द्विचरम समय पर्यन्त
6.	0	सा०	2	14 द्विचरम समय पर्यन्त
7.	0	अ०	अ०	14 चरम समय में
8.	0	सा०	सा०	14 चरम समय में

आयुष्य के संवेद्य भंग :

एक भव में एक ही आयुष्य का उदय और आगामी एक ही आयुष्य का बंध होता है ।

आगामी भव के आयुष्य बंध के पहले एक ही आयुष्य की सत्ता और आगामी भव के आयुष्य बंध के बाद दो आयुष्य की सत्ता होती है ।

आयुष्य कर्म की तीन अवस्थाएँ होती हैं–

1. आगामी भव के आयुष्य बंध की पूर्व अवस्था ।

2. आगामी भव के आयुष्य बंध की अवस्था ।

3. आगामी भव के आयुष्य बंध के बाद की अवस्था ।

नरकायु के संवेद्य भंग :–

1. अबंध काल : नारकियों को अबंध काल में नरक आयु का उदय और नरक आयु की सत्ता रहती है । नारकों को एक से चार ही गुणस्थानक होते हैं ।

2. बंध काल : इसमें दो भंग होते हैं :

1. तिर्यंच आयु का बंध - नरक आयु का उदय तथा तिर्यंच-नरक आयु की सत्ता ।

2. मनुष्य आयु का बंध, नरकायु का उदय तथा मनुष्य-नरकायु की सत्ता, पहला भंग पहले दो गुणस्थानक में तथा दूसरा भंग पहले, दूसरे व चौथे गुणस्थानक में होता है ।

3. उपरत बंध काल : 1. नरकायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता । 2. नरकायु का उदय और नरक-मनुष्य आयु की सत्ता । नारकों में ये दो भंग चार गुणस्थानों में संभव है ।

इस प्रकार नरक में कुल पाँच भंग हुए ।

देवायु के संवेद्य भंग :

नारक की भाँति देव भी मनुष्य व तिर्यंच दो ही आयुष्य का बंध करते हैं-देव व नारक का नहीं !

उनके भी 5 भंग होते हैं –

1. अबंध काल में : 1. देवायु का उदय और देवायु की सत्ता

2. बंध काल में : 2. तिर्यंच आयु का बंध, देवायु का उदय और तिर्यंच व देव आयु की सत्ता ।

3. मनुष्य आयु का बंध, देवायु का उदय और देव-मनुष्यायु की सत्ता ।

3. बंधकाल के बाद : 4. देवायु का उदय व तिर्यंच-देव आयु की सत्ता ।

5. देवायु का उदय और मनुष्य - देवायु की सत्ता ।

तिर्यंच आयु के संवेद्य भंग :

तिर्यंच को 1 से 5 गुणस्थानक होते हैं और उसके 9 भंग होते हैं–

अबंध काल में : 1. तिर्यंच आयु का बंध व तिर्यंच आयु की सत्ता ।

बंध काल में : 2. नरक आयु का बंध, तिर्यंच आयु का उदय, नरक तिर्यंच आयु की सत्ता ।

3. तिर्यंच आयु का बंध, तिर्यंच आयु का उदय, तिर्यंच-तिर्यंच आयु की सत्ता ।

4. मनुष्य आयु का बंध, तिर्यंच आयु का उदय और मनुष्य-तिर्यंच आयु की सत्ता ।

5. देव आयु का बंध, तिर्यंच आयु का उदय और देव-तिर्यंच आयु की सत्ता ।

बंधकाल के बाद : 6. तिर्यंचायु का उदय–नरक-तिर्यंचायु की सत्ता ।

7. तिर्यंच आयु का उदय - तिर्यंच तिर्यंचायु की सत्ता ।

8. तिर्यंच आयु का उदय - नरक-तिर्यंचायु की सत्ता ।

9. तिर्यंच आयु का उदय - देव-तिर्यंच आयु की सत्ता ।

मोहनीय कर्म

बावीस इक्कवीसा, सत्तरसं तेरसेव नव पंच ।
चउ तिग दुगं च इक्कं, बंधट्ठाणाणि मोहस्स ।।12।।

–: शब्दार्थ :–

बावीस=बाईस,	**तिगं**=तीन,
इक्कवीसा=इक्कीस,	**दुगं**=दो,
सत्तरसं=सत्रह,	**च**=और,
तेरसेव=तेरह,	**इक्कं**=एक प्रकृतिक,
नव=नौ,	**बंधट्ठाणाणि**=बंध स्थान,
पंच=पाँच,	**मोहस्स**=मोहनीय कर्म के
चउ=चार,	

गाथार्थ :–मोहनीय कर्म के बाईस प्रकृतिक, इक्कीस प्रकृतिक, सत्रह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक, पाँच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दस बंधस्थान है ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियाँ हैं परंतु उसमें बंध योग्य 26 ही हैं, क्योंकि समकित व मिश्र मोहनीय का बंध नहीं होता है ।

26 प्रकृतियों में कुछ परस्पर विरोधी होने से उनका बंध एक साथ में नहीं होता है ।

उदा. 1. तीन वेद में से एक समय में एक का ही बंध होता है ।

2. रति-अरति व हास्य-भय में से भी एक-एक का ही बंध होता है ।

अतः मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट से 22 प्रकृतियों का एक साथ में बंध होता है, वह बंध मिथ्यात्व गुणस्थानक में होता है ।

दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व का बंधविच्छेद हो जाने से 21 का ही बंध होता है ।

तीसरे-चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चतुष्क का बंधविच्छेद होने से 17 का ही बंध होता है ।

पाँचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंधविच्छेद होने से 13 का ही बंध होता है ।

छठे, सातवें व आठवें गुणस्थानक में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंध-विच्छेद होने से नौ का ही बंध होता है ।

आठवें गुणस्थानक के अंत में हास्य, रति, भय व जुगुप्सा का बंध-विच्छेद होने से नौवें गुणस्थानक के प्रथम भाग में 5 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

नौवें के दूसरे भाग में पुरुष वेद का भी विच्छेद हो जाने से 4 का बंध ।

नौवें के तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध का बंधविच्छेद होने से तीन का बंध ।

नौवें के चौथे भाग में संज्वलन मान का बंधविच्छेद होने से दो का बंध । नौवें के पाँचवें भाग में संज्वलन माया का बंधविच्छेद होने से एक का बंध होता है ।

दसवें गुणस्थानक में लोभ के बंध का भी अभाव होने से वहाँ एक प्रकृति का भी बंध नहीं होता है ।

इस प्रकार मोहनीय की 22 प्रकृतियों के कुल 10 बंधस्थान हैं ।

मोहनीय कर्म के बंध स्थान

बन्धस्थान	गुणस्थानक	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
22 प्रकृति	पहला	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपा.पुद्गल
21 प्र.	दूसरा	एक समय	छह आवली
17 प्र.	3, 4 था.	अन्तर्मुहूर्त	साधिक 33 सागर
16 प्र.	5 वाँ	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि
9 प्र.	6, 7, 8 वाँ	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि
5 प्र.	नौवें का पहला भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
4 प्र.	नौवें का दूसरा भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
3 प्र.	नौवें का तीसरा भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
2 प्र.	नौवें का चौथा भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
1 प्र.	नौवें का पाँचवाँ भाग	एक समय	अन्तर्मुहूर्त

एगं व दो व चउरो, एत्तो एगाहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे, उदयट्ठाणाणि नव हुंति ।।13।।

–: शब्दार्थ :–

एगं=एक,
व=और,
दो=दो,
व=और,
चउरो=चार,
एत्तो=इससे आगे,
एगाहिया=एक-एक प्रकृति अधिक,
दस=दस तक,
उक्कोसा=उत्कृष्ट से,
ओहेण=सामान्य से,
मोहणिज्जे=मोहनीय कर्म में,
उदयट्ठाणाणि=उदयस्थान,
नव=नौ,
हुंति=होते है ।

गाथार्थ :–एक, दो और चार से आगे एक-एक प्रकृति अधिक उत्कृष्ट दस प्रकृति तक के नौ उदयस्थान मोहनीय कर्म के सामान्य से होते हैं ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म के 9 उदयस्थान है ।

गुणस्थानक के पश्चानुपूर्वी क्रम से मोहनीय के उदय स्थान बताते हैं ।

दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में सिर्फ 1 प्रकृति संज्वलन लोभ का उदय होता है ।

नौवें गुणस्थानक में एक वेद का उदय बढने से दो प्रकृति का बंध होता है ।

हास्य-रति अथवा शोक-अरति एक युगल के जोड़ने पर चार का उदय होता है ।

इन चार में भय को जोड़ने पर पाँच का उदय और जुगुप्सा को जोड़ने पर छह का उदय होता है ।

इस प्रकार चार, पाँच व छह प्रकृतियों का उदय छठे, सातवें व आठवें गुणस्थानक में होता है ।

प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क में से एक प्रकृति जोड़ने पर पाँचवें गुणस्थानक में सात प्रकृति का उदय होता है ।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क की एक प्रकृति जोड़ने पर चौथे-तीसरे गुणस्थानक में आठ प्रकृति का उदय होता है ।

अनंतानुबंधी चतुष्क की एक प्रकृति को जोड़ने पर दूसरे गुणस्थानक में 9 प्रकृति का उदय होता है ।

मिथ्यात्व को जोड़ने पर पहले गुणस्थानक में 10 प्रकृतियों का उदय होता है ।

अट्ठ य सत्त य छच्चउ तिग दुग एगाहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस, इत्तो पंचाइ एगूणा ।।14।।
संत्तस्स पयडिठाणाणि ताणि मोहस्स हुंति पन्नरस ।
बन्धोदयसंते पुण भंगविगप्पा बहू जाण ।।15।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठ य सत्त य छच्चउ तिग दुग एगाहिया=आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक,	**वीसा**=बीस,
भवे=होते हैं,	**तेरस**=तेरह,
	बारिक्कारस=बारह और ग्यारह प्रकृति का,

इत्तो=इसके बाद,	**पन्नरस**=पन्द्रह
पंचाइ=पाँच प्रकृति से लेकर,	**बंधोदयसंते**=बंध, उदय और सत्ता स्थान,
एगूणा=एक-एक प्रकृति न्यून,	**पुण**=तथा,
संतस्स=सत्ता के,	**भंगविगप्पा**=भंगविकल्प,
पयडिठाणाणि=प्रकृतिस्थान,	**बहू**=अनेक,
ताणि=वे,	**जाण**=जानो ।
मोहस्स=मोहनीय कर्म के,	
हुंति=होते हैं,	

गाथार्थ :–मोहनीय कर्म के बीस के बाद क्रमशः आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक संख्या वाले तथा तेरह, बारह, ग्यारह और इसके बाद पाँच से लेकर एक-एक प्रकृति से कम, इस प्रकार सत्ता प्रकृतियों के पन्द्रह स्थान होते है । इन बंधस्थानों, उदयस्थानों और सत्तास्थानों की अपेक्षा भंगों के अनेक विकल्प होते हैं ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म के 28, 27, 26, 24, 23, 22, 21, 13, 12, 11, 5, 4, 3, 2 और 1 प्रकृति के कुल 15 सत्तास्थान हैं ।

28 प्रकृतिक सत्तास्थान 1 से 11 वें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल 132 सागरोपम से कुछ अधिक है ।

सम्यक्त्व मोहनीय की उद्वेलना होने पर 27 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, जिसका काल पल्योपम का असंख्यातवा भाग प्रमाण है । यह स्थान मिथ्यादृष्टि व मिश्र गुणस्थानक में होता है ।

27 प्रकृतिक सत्तास्थान में से मिश्रमोहनीय को घटाने पर 26 प्रकृतिक सत्तास्थान रहता है, यह भी मिथ्यादृष्टि को होता है । इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग न्यून अपार्ध पुद्गल परावर्त काल है ।

अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजना होने पर 24 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । यह सत्तास्थान तीसरे से ग्यारहवें गुणस्थानक में होता है । जघन्य-काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल 132 सागरोपम है ।

24 प्रकृतिक सत्तास्थान में से मिथ्यात्व का क्षय होने पर 23 प्रकृतिक

सत्तास्थान होता है, यह चौथे से सातवें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

23 प्रकृतिक में से मिश्रमोहनीय के क्षय होने पर 22 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । यह भी चौथे से सातवें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

22 में से समकित मोहनीय का क्षय होने पर 21 प्रकृतिक सत्तास्थान रहता है । यह चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट काल साधिक 33 सागरोपम है ।

21 प्रकृतिक सत्तास्थान में से अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क व प्रत्याख्यानावरण चतुष्क इन आठ का क्षय हो जाने पर 13 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, यह स्थान क्षपकश्रेणी में 9 वें गुणस्थानक में होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

13 प्रकृतिक सत्तास्थान में नपुंसक वेद का क्षय होने पर 12 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । यह भी नौवें गुणस्थानक में होता है । इसका भी जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

(नपुंसक वेद के उदय वाला क्षपकश्रेणी चढ़ता है तो वह नपुंसक वेद के साथ स्त्रीवेद का भी क्षय कर देता है, अतः उस जीव को 12 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है ।)

नपुंसक वेद के क्षय से बारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त करने वाले को स्त्रीवेद का क्षय होने पर 11 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । यह नौवें गुणस्थानक में होता है । जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

11 प्रकृतिक सत्तास्थान में से छह नोकषायों का क्षय होने पर पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल दो समय कम दो आवलिका प्रमाण है ।

फिर पुरुषवेद का क्षय होने पर 4 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

फिर संज्वलन क्रोध का क्षय होने पर 3 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

फिर संज्वलन मान का क्षय होने पर 2 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

फिर संज्वलन माया का क्षय होने पर 1 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

ये सभी सत्तास्थान नौवें गुणस्थानक में होते हैं । जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

एक प्रकृतिक सत्तास्थान नौवें व दसवें गुणस्थानक में होता है । जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो ।
नवबंधगे वि दुण्णि उ इक्किक्कमओ परं भंगा ।।16।।

–: शब्दार्थ :–

छ=छह,	**नवबंधगे**=नौ के बन्धस्थान के,
ब्बावीसे=बाईस के बन्धस्थान के,	**वि**=भी
चउ=चार,	**दुण्णि उ**=दो विकल्प,
इगवीसे=इक्कीस के बन्धस्थान के,	**इक्किक्क**=एक-एक,
सत्तरस=सत्रह के, बन्धस्थान के	**मओ**=इससे,
तेरसे=तेरह के बंधस्थान के,	**परं**=आगे,
दो-दो=दो-दो,	**भंगा**=भंग ।

गाथार्थ :–बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान के छह, इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के चार, सत्रह और तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के दो-दो, नौ प्रकृतिक बंधस्थान के भी दो भंग हैं । इसके आगे पाँच प्रकृतिक आदि बंधस्थानों में से प्रत्येक का एक-एक भंग है ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म के जो 10 बंधस्थान हैं, उनके क्रमशः 6 + 4 + 2 + 2 + 2 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1 = 21 विकल्प होते हैं ।

22 प्रकृतिक बंध के छह भंग :

22 प्रकृतिक बंध में मिथ्यात्व सोलह कषाय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति युगल तथा शोक अरति युगल में से एक युगल तथा भय व जुगुप्सा का ग्रहण होता है ।

हास्य-रति अथवा शोक-अरति इन दो युगलों में से एक समय में एक युगल होने से दो भंग हुए ।

तीन वेदों में से 1-1 वेद होने से 3-3 भंग होते हैं अतः कुल 2 x 3 = 6 भंग हुए ।

21 प्रकृतिक बंध में चार भंग :–

नपुंसक वेद का बंध पहले गुणस्थानक में होता है । दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व का उदय नहीं होता है ।

स्त्री वेद या पुरुष वेद का उदय होने से दो भंग तथा हास्य-रति व शोक-अरति युगल में से एक युगल का उदय होने से दो भंग ।

इस प्रकार कुल चार भंग हुए ।

17 प्रकृतिक बंध में दो भंग –

21 में से अनंतानुबंधी चार घटाने पर 17 प्रकृतिक बंध तीसरे व चौथे गुणस्थानक में होता है ।

हास्य-रति व शोक-अरति इन दो में से 1-1 युगल होने से कुल दो भंग हुए ।

13 प्रकृतिक में दो भंग :–

अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क कम होने पर 13 प्रकृतिक बंध होता है । यहाँ पुरुषवेद का ही बंध होता हैं, अतः हास्यरति व शोक-अरति युगल के दो ही भंग होते हैं ।

9 प्रकृतिक बंध में 1 भंग :

13 में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क कम करने पर 9 प्रकृतिक बंध होता है । यह बंधस्थान 6-7 व आठवें गुणस्थानक में होता है । अरति-शोक का बंध प्रमत्त संयत तक ही होता है । अतः छठे गुणस्थानक में दो भंग व सातवें-आठवें में एक ही भंग होता है ।

5 प्रकृतिक बंध में 1 भंग :

हास्य-रति, भय-जुगुप्सा इन चार को घटाने पर 5 का ही बंध होता है ।

5-4-3-2 व 1 प्रकृतिक बंध में विरोधी प्रकृति नहीं होने से वहाँ 1-1 ही भंग होता है ।

मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में उदयस्थान

दस बावीसे नव इग वीसे सत्ताइ उदयकम्मंसा ।
छाईनव सत्तरसे, तेरे पंचाइ अट्ठेव ।।17।।
चत्तारिआइ नवबंधएसु, उक्कोस सत्त मुदयंसा ।
पंचविहबंधगे पुण, उदओ दुण्हं मुणेअव्वो ।।18।।
इत्तो चउबंधाई इक्किक्कुदया हवंति सव्वे वि ।
बंधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा हुज्जा ।।19।।

–: शब्दार्थ :–

दस=दस पर्यन्त,
बावीसे=बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में,
नव=नौ तक,
इग वीसे =इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान में,
सत्ताइ=सात से लेकर,
उदयकम्मंसा=उदयस्थान,
छाईनव=छह से नौ तक,
सत्तरसे=सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान में,
तेरे=तेरह प्रकृतिक बंधस्थान में,
पंचाइ=पाँच से लेकर,
अट्ठेव=आठ तक,
चत्तारिआइ=चार से लेकर,
नवबंधएसु=नौ प्रकृतिक बंधस्थानों में,
मुक्कोस=उत्कृष्ट,
सत्त=सात तक,
मुदयंसा=उदयस्थान,
पंचविहबंधगे=पाँच प्रकृतिक बंधस्थान में,
पुण=तथा,
उदओ=उदय,
दुण्हं=दो प्रकृति का,
मुणेअव्वो=जानना चाहिए,
इत्तो=इसके बाद,
चउबंधाई=चार आदि प्रकृतिक बंधस्थानों में,
इक्किक्कुदया=एक-एक प्रकृति के उदय वाले,
हवंति=होते हैं,
सव्वेवि=सभी,
बंधोवरमे=बंध के अभाव में,
वि=भी,
तहा=उसी प्रकार,
उदयाभावे=उदय के अभाव में,
वि=भी,
वा=विकल्प,
हुज्जा=होते हैं ।

गाथार्थ :–बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में सात से लेकर दस तक, इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान में सात से लेकर नौ तक, सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान में छह से लेकर नौ तक और तेरह प्रकृतिक बंधस्थान में पाँच से लेकर आठ तक–

नौ प्रकृतिक बंधस्थान में चार से लेकर उत्कृष्ट सात प्रकृतियों तक के चार उदयस्थान होते हैं तथा पाँच प्रकृतिक बंधस्थान में दो प्रकृतियों का उदय जानना चाहिए ।

इसके बाद (पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के बाद) चार आदि (4, 3, 2, 1) प्रकृतिक बंधस्थानों में एक प्रकृति का उदय होता है । बंध के अभाव में भी इसी प्रकार एक प्रकृति का उदय होता है । उदय के अभाव में भी मोहनीय की सत्ता विकल्प से होती है ।

विवेचन :–बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक व दस प्रकृतिक– ये चार उदयस्थान हैं ।

7 का उदय (1) मिथ्यात्व (2) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि चार में से एक (3) प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि में से एक (4) संज्वलन क्रोध आदि में से एक (5-6) हास्य रति अथवा शोक-अरति (7) तीनों वेद में से एक वेद ।

8 का उदय : इन सात प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा और अनंतानुबंधी क्रोध आदि तीन में से एक को जोड़ने पर आठ का उदय होता है ।

9 का उदय : 7 के उदय में भय-जुगुप्सा, भय व अनंतानुबंधी क्रोध आदि अथवा जुगुप्सा व अनंतानुबंधी को जोड़ने पर 9 का उदय होता है ।

10 का उदय : 7 के उदय में भय, जुगुप्सा व अनंतानुबंधी इन तीनों को जोड़ने पर 10 का उदय होता है ।

21 प्रकृतिक बंधस्थान में सात, आठ व नौ प्रकृतिक के तीन उदय-स्थान हैं ।

7 का उदय : 1 से 4 अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण व संज्वलन क्रोधादि में से एक ही जाति के चार कषाय का उदय, 5-तीन वेदों में से एक व 6-7-हास्य-रति व शोक-अरति में से एक युगल का उदय !

8 व 9 प्रकृति का उदय : 7 प्रकृतियों में भय या जुगुप्सा को जोड़ने पर 8 का उदय तथा भय व जुगुप्सा दोनों को जोड़ने पर 9 का उदय होता है ।

17 प्रकृतिक बंधस्थान में छह प्रकृतिक, सात, आठ व नौ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं ।

17 प्रकृति का बंध तीसरे-चौथे गुणस्थानक में होता है ।

7 का उदय : 1-3 अनंतानुबंधी को छोड़ तीन क्रोधादि 4 तीन वेदों में से एक वेद 5-6 हास्य रति तथा शोक-अरति में से एक युगल, 7 मिश्र मोहनीय ।

8 व 9 का उदय : उपर्युक्त 7 में भय या जुगुप्सा को जोड़ने पर 8 का उदय तथा दोनों को जोड़ने पर 9 का उदय होता है ।

13 प्रकृतिक बंधस्थान में 5, 6, 7 व 8 प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं ।

9 प्रकृतिक बंधस्थान में : तेरह प्रकृतियों में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क को कम करने पर 9 प्रकृति का बंध होता है । यह स्थान छठे, सातवें व आठवें गुणस्थानक में होता है ।

यहाँ 4 से 7 प्रकृति का उदय होता है ।

4 प्रकृति का उदय : (1) संज्वलन चतुष्क में से 1 क्रोध आदि (2) तीन वेद में से एक वेद 3, (4) हास्य-रति अथवा शोक-अरति में से एक युगल का उदय ।

5 प्रकृति का उदय : उपर्युक्त 4 में भय अथवा जुगुप्सा अथवा समकित मोहनीय में से 1 को जोड़ने पर पाँच का उदय होता है ।

6 का उदय : उपर्युक्त 4 में भय-जुगुप्सा, भय व समकित मोहनीय, या जुगुप्सा व समकित मोहनीय - इन तीन में से 1 युगल जोडने पर छह का उदय होता है ।

7 का उदय : उपर्युक्त 4 में भय, जुगुप्सा व समकित मोहनीय जोडने पर 7 का उदय होता है ।

5 प्रकृतिक बंध में 2 का उदय : (1) चार संज्वलन में से एक कषाय (2) तीन वेदों में से 1 वेद ।

यह भंग नौवें गुणस्थानक के पहले भाग में होता है ।

4 प्रकृतिक बंध में 1 का उदय : पुरुषवेद का विच्छेद होने पर 4 प्रकृतिक बंध में चार संज्वलन में से 1 का उदय होने से 1 ही भंग होता है ।

3 प्रकृतिक बंध में 1 का उदय : यहाँ संज्वलन मान आदि तीन में से 1 का उदय होता है ।

2 प्रकृतिक बंध में 1 का उदय : संज्वलन मान का बंधविच्छेद होने पर दो का ही बंध व 1 का उदय होता है ।

1 प्रकृतिक बंध में 1 का उदय : संज्वलन माया का बंधविच्छेद होने पर संज्वलन लोभ का ही बंध व एक का ही उदय होता है ।

बंध के अभाव में 1 का उदय : सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में मोहनीय का संपूर्ण बंधविच्छेद होने पर भी सूक्ष्म लोभ-संज्वलन लोभ का उदय होता है ।

इक्कग छक्किक्कारस दस सत्त चउक्क इक्कगं चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगिक्कंमिक्कारा ।।20।।

–: शब्दार्थ :–

इक्कग=एक,	**एए**=ये भंग,
छक्किक्कारस=छह, ग्यारह,	**चउवीसगया**=चौबीस की संख्या वाले होते हैं,
दस=दस,	**चउवीस**=चौबीस,
सत्त=सात,	**दुगि**=दो के उदय होने पर,
चउक्क=चार,	**क्कंमिक्कारा**=एक के उदय में ग्यारह भंग ।
इक्कगं=एक,	
चेव=निश्चय से,	

गाथार्थ :–दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में क्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक, इतने चौबीस विकल्प रूप भंग होते हैं तथा दो प्रकृतिक, उदयस्थान में चौबीस और एक प्रकृतिक उदयस्थान में ग्यारह भंग होते हैं ।

विवेचन :–गाथा में दस प्रकृतिक आदि प्रत्येक उदयस्थानों में चौबीस विकल्प रूप भंगों की संख्या बतलाई है । यद्यपि पहले दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में कहाँ कितनी भंगों की चौबीसी होती हैं, बतलाये हैं, लेकिन यहाँ उनकी कुल (सम्पूर्ण) संख्या इस कारण बतलाई है कि जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि मोहनीय कर्म के सब उदयस्थानों में सब भंगों की चौबीसी कितनी हैं और फुटकर भंग कितने होते हैं ।

दस प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की एक चौबीसी होती है–इसका कारण यह है कि दस प्रकृतिक उदयस्थान में प्रकृतिविकल्प नहीं होते हैं । इसीलिए एक चौबीसी बतलाई है ।

नौ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल छह चौबीसी होती हैं । वे इस प्रकार हैं-बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान हैं, उनकी तीन चौबीसी होती हैं । इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसकी एक चौबीसी, मिश्र गुणस्थानक में सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की एक चौबीसी और चौथे गुणस्थानक में सत्रह प्रकृतिक बंध के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की एक चौबीसी । इस प्रकार नौ प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की कुल छह चौबीसी हुई ।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की ग्यारह चौबीसी होती हैं–वे इस प्रकार हैं-बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं, उसके भंगों की तीन चौबीसी, इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान में जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं उसके भंगों की दो चौबीसी, मिश्र गुणस्थानक में सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की दो चौबीसी, चौथे गुणस्थानक में जो सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान हैं, उसमें आठ प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की कुल तीन चौबीसी और पाँचवें गुणस्थानक में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के समय आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की एक चौबीसी । इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल ग्यारह चौबीसी हुईं ।

सात प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल दस चौबीसी होती हैं । वे इस प्रकार हैं-बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसकी एक चौबीसी । इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसके भंगों की एक चौबीसी, मिश्र गुणस्थानक में सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के समय होने वाले सात प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की एक चौबीसी, चौथे गुणस्थानक में जो सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान हैं, उसके सात प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की तीन चौबीसी, तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की

तीन चौबीसी और नौ प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की एक चौबीसी होती है । इस प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल दस चौबीसी होती हैं ।

छह प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल सात चौबीसी इस प्रकार होती हैं-अविरत सम्यग्दृष्टि के सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की एक चौबीसी, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक बंधस्थान में जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की तीन-तीन चौबीसी होती हैं । इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की कुल सात चौबीसी हुईं ।

पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल चार चौबीसी होती हैं । वे इस प्रकार हैं-तेरह प्रकृतिक बंधस्थान में जो पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगों की एक चौबीसी और नौ प्रकृतिक बंधस्थान में जो पाँच प्रकृतिक उदयस्थान हैं, उसके भङ्गों की कुल तीन चौबीसी होती हैं । इस प्रकार पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में भङ्गों की कुल चार चौबीसी होती हैं ।

नौ प्रकृतिक बंधस्थान के समय चार प्रकृतिक उदय के भङ्गों की एक चौबीसी होती है ।

इस प्रकार दस से लेकर चार पर्यन्त उदयस्थानों के भंगों की कुल संख्या 1 + 6 + 11 + 10 + 7 + 4 + 1 = 40 चौबीसी होती हैं ।

पाँच प्रकृतिक बंध के समय दो प्रकृतिक उदय के बारह भंग होते हैं और चार प्रकृतिक बंध के समय भी दो प्रकृतिक उदय संभव हैं, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है, अतः इस प्रकार दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह भंग हुए । जिससे दो प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों की एक चौबीसी होती है तथा चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बंधस्थान के तथा अबन्ध के समय एक प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमशः चार, तीन, दो, एक और एक भंग होते हैं । इनका जोड़ ग्यारह है । अतः एक प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ग्यारह भंग होते हैं ।

दो प्रकृतिक उदयस्थान में चौबीस भंग होते हैं । इसलिए यह कथन अन्य आचार्यों के अभिप्रायानुसार किया गया है । स्वमत से तो दो प्रकृतिक उदय- स्थान में बारह ही भंग होते हैं ।

बंधस्थान में उदयस्थानों के संवेद्य भंग

गुणस्थानक	बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग
पहला	22	6	7, 8, 9, 10	8 चौबीसी
दूसरा	21	4	7, 8, 9	4 चौबीसी
तीसरा	17	2	7, 8, 9	4 चौबीसी
चौथा	17	2	6, 7, 8, 9	8 चौबीसी
पाँचवाँ	13	2	5, 6, 7, 8	8 चौबीसी
6 से 8	9	2	4, 5, 6, 7	8 चौबीसी
नौवाँ	5	1	2	12 भंग
नौवाँ	4	1	2	12 भंग
नौवाँ	4	1	1	4 भंग
नौवाँ	3	1	1	3 भंग
नौवाँ	2	1	1	2 भंग
नौवाँ	1	1	1	1 भंग
दसवाँ	0	0	1	1 भंग

नवतेसीइसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
अउणुत्तरिसीयाला पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।21।।

–: शब्दार्थ :–

नवतेसीइसएहिं=नौ सौ तिरासी,
उदयविगप्पेहिं=उदयविकल्पों से,
मोहिआ=मोहित हुए,
जीवा=जीव,
अउणुत्तरिसीयाला=उनहत्तर सौ सैंतालीस,
पयविंदसएहिं=पदों के समूह,
विन्नेआ=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–संसारी जीव नौसौ तिरासी उदयविकल्पों से और उनहत्तर सौ सैंतालीस पद समुदायों से मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

विवेचन :–इस गाथा में उदयविकल्प 983 और पदवृन्द 6947 कहे हैं । इसका कारण यह है-चार प्रकृतिक बंध के संक्रम के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यदि इस मतान्तर को मुख्यता न दी जाये और उनके मत से दो प्रकृतिक उदयस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दों को छोड़ दिया जाये तो क्रमशः उनकी संख्या 983 और 6947 होती है ।

यहाँ मोहनीय कर्म के उदयविकल्प दो प्रकार से बताये हैं, एक 995 और दूसरे 983 । इनमें से 995 उदयविकल्पों में दो प्रकृतिक उदयस्थान के 24 भंग तथा 983 उदयविकल्पों में दो प्रकृतिक उदयस्थान के 12 भंग लिये हैं । **पंचसंग्रह सप्ततिका** में भी ये उदयविकल्प बतलाये हैं, किन्तु वहाँ तीन प्रकार से बतलाये हैं । पहले प्रकार में यहाँ वाले 995 दूसरे में यहाँ वाले 983 प्रकार से कुछ अन्तर पड़ जाता है । इसका कारण यह है कि यहाँ एक प्रकृतिक उदय के बन्धाबन्ध की अपेक्षा ग्यारह भंग लिये हैं और पंचसंग्रह सप्ततिका में उदय की अपेक्षा प्रकृति भेद से चार भंग लिये हैं, जिससे 983 में से 7 घटा देने पर कुल 976 उदय-विकल्प रह जाते हैं । तीसरे प्रकार से उदय-विकल्प गिनाते हुए गुणस्थानकभेद से उनकी संख्या 1265 कर दी है ।

इसी प्रकार यहाँ मोहनीय के पदवृन्द दो प्रकार से बतलाये हैं–6971 और 6947 । जब चार प्रकृतिक बन्ध के समय कुछ काल तक दो प्रकृतिक उदय होता है, तब इस मत को स्वीकार कर लेने पर 6971 पदवृन्द होते हैं और इस मत को छोड़ने पर 6947 पदवृन्द होते हैं ।

ऊपर जो कथन किया गया है, उसमें जो संख्याओं का अन्तर दिखता है, वह विवक्षाभेदकृत है, मान्यताभेद नहीं है ।

इस प्रकार से स्वमत और मतान्तर तथा अन्य कर्मग्रन्थिकों के मतों से उदयविकल्पों और प्रकृतिविकल्पों के भंगों का कथन करने के बाद अब उदयस्थानों के काल का निर्देश करते हैं ।

दस आदि जितने उदयस्थान और उनके भंग बतलाये हैं, उनका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

इन सब उदयस्थानों का जघन्यकाल एक समय इस प्रकार समझना चाहिए कि जब कोई जीव किसी विवक्षित उदयस्थान में या उसके किसी एक

विवक्षित भंग में एक समय तक रहकर दूसरे समय में मर कर या परिवर्तन क्रम से किसी अन्य गुणस्थानक को प्राप्त होता है तब उसके गुणस्थानक में भेद हो जाता है, बन्धस्थान भी बदल जाता है और गुणस्थानक के अनुसार उसके उदयस्थान और उसके भंगों में भी अन्तर पड़ जाता है । अतः सब उदयस्थानों और उनके सब भंगों का जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । मोहनीय कर्म के उदयविकल्पों और पदविकल्पों का विवरण इस प्रकार है–

उदयस्थान	चौबीसी संख्या	चौबीसी के कुल भंगों की संख्या	उदय-पद	पदविकल्प
दस के उदय में	1	24	10	240
नौ के उदय में	6	144	54	1296
आठ के उदय में	11	264	88	2112
सात के उदय में	10	240	70	1680
छह के उदय में	7	168	42	1008
पाँच के उदय में	4	96	20	480
चार के उदय में	1	24	4	96
दो के उदय में	0	सिर्फ 12 भंग	0	24
एक के उदय में	0	सिर्फ 11 भंग	0	11
कुल योग	40	983	288	6947
मतान्तर से दो के उदय में	1	24 (12 भंग पूर्व में मिलने से, यहाँ सिर्फ 12 भंग लेना)	2	48 (24 भंग पहले के लिये अतः यहाँ 24 भंग लेना)
	41	995	290	6971

इस प्रकार से बन्धस्थानों का उदयस्थानों के साथ परस्पर संवेद्य ।

अन्य मत से उदयभंगों की एवं पदवृन्दों की संख्या

नवपंचाणउअसएउदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
अउणत्तरि एगुत्तरि पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।22।।

–: शब्दार्थ :–

नवपंचाणउअसए=नौ सौ पंचानवै,	**अउणत्तरि एगुत्तरि**=उनहत्तर सौ इकहत्तर,
उदयविगप्पेहिं=उदयविकल्पों से,	**पयविंदसएहिं**=पदवृन्दों सहित,
मोहिआ=मोहित हुए,	**विन्नेआ**=जानना चाहिए ।
जीवा=जीव,	

गाथार्थ :–समस्त संसारी जीवों को नौ सौ पंचानवै उदयविकल्पों तथा उनहत्तर सौ इकहत्तर पदवृन्दों से मोहित जानना चाहिए ।

विवेचन :–पूर्व में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंगों और उन उदयस्थानों के भंगों की कहाँ कितनी चौबीसी होती हैं, यह बतलाया गया है । अब इस गाथा में उनकी कुल संख्या एवं उनके पदवृन्दों को स्पष्ट किया जा रहा है ।

प्रत्येक चौबीसी में चौबीस भंग होते हैं और पहले जो उदयस्थानों की चौबीसी बतलाई हैं, उनकी कुल संख्या इकतालीस है । अतः इकतालीस को चौबीस में गुणित करने पर कुल संख्या नौ-सौ चौरासी प्राप्त होती है– 41 x 24 = 984 । इस संख्या में एक प्रकृतिक उदयस्थान के भंग सम्मिलित नहीं हैं । वे भंग ग्यारह हैं । अतः उन ग्यारह भंगों को मिलाने पर भंगों की कुल संख्या नौ सौ पंचानवै होती है । इन भंगों में से किसी-न-किसी एक भंग का उदय दसवें गुणस्थानक तक के जीवों के अवश्य होता है । यहाँ दसवें सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थानक तक के जीवों को ही ग्रहण करने का कारण यह है कि मोहनीय कर्म का उदय वहीं तक पाया जाता है । यद्यपि ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानकवर्ती जीव का जब स्व-स्थान से पतन होता है तब उसको भी मोहनीय कर्म का उदय हो जाता है, लेकिन कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त के लिए मोहनीय कर्म का उदय न रहने से

उसका ग्रहण नहीं करके दसवें गुणस्थानक तक के जीवों को उक्त नौसौ पंचानवै भंगों में से यथासंभव किसी न किसी एक भंग से मोहित होना कहा गया है ।

मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि प्रत्येक प्रकृति को पद कहते हैं और उनके समुदाय का नाम पदवृन्द है । इसी का दूसरा नाम प्रकृतिविकल्प भी है । अर्थात् दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में जितनी प्रकृतियों का ग्रहण किया गया है, वे सब पद हैं और उनके भेद से जितने भंग होंगे, वे सब पदवृन्द या प्रकृतिविकल्प कहलाते हैं । यहाँ उनके कुल भेद 6971 बतलाये हैं । जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अतः उसकी दस प्रकृतियाँ हुईं ।

नौ प्रकृतिक उदयस्थान छह हैं अतः उनकी 9 x 6 = 54 प्रकृतियाँ हुई ।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह हैं अतः उनकी अठासी प्रकृतियाँ हुईं ।

सात प्रकृतिक उदयस्थान दस हैं अतः उनकी सत्तर प्रकृतियाँ हुईं ।

छह प्रकृतिक उदयस्थान सात हैं अतः उनकी बयालीस प्रकृतियाँ हुईं ।

पाँच प्रकृतिक उदयस्थान चार हैं, अतः उनकी बीस प्रकृतियाँ हुईं ।

चार प्रकृतिक उदयस्थान के एक होने से उसकी चार प्रकृतियाँ हुईं और

दो प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसकी दो प्रकृतियाँ हुईं । इन सब प्रकृतियों को मिलाने पर 10 + 54 + 88 + 70 + 42 + 20 +4 + 2 = कुल जोड़ 290 होता है ।

उक्त 290 प्रकृतियों में से प्रत्येक में चौबीस-चौबीस भंग प्राप्त होते हैं अतः 290 को 24 से गुणित करने पर कुल 6960 होते हैं । इस संख्या में एक प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भंग सम्मिलित नहीं हैं । अतः उन ग्यारह भंगों के मिलाने पर कुल संख्या 6971 हो जाती है ।

तिन्नेव य बावीसे, इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे ।
छच्चेव तेर-नव-बंधएसु पंचेव ठाणाणि ।।23।।
पंचविह चउविहेसुं छ छक्क सेसेसु जाण पंचेव ।
पत्तेअं पत्तेअं चत्तारि य बंधवुच्छेए ।।24।।

–: शब्दार्थ :–

तिन्नेव=तीन सत्तास्थान,
य=और,
बावीसे=बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान में,
इगवीसे=इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान में,
अट्ठवीस=अट्ठाईस का सत्तास्थान,
सत्तरसे=सत्रह के बन्धस्थान में,
छच्चेव=छह का,
तेर-नव-बंधएसु=तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थान में,
पंचेव=पाँच ही,
ठाणाणि=सत्तास्थान ।

पंचविह=पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान में,
चउविहेसुं=चार प्रकृतिक बन्धस्थान में,
छ छक्क=छह-छह,
सेसेसु=बाकी के बन्धस्थानों में,
जाण=जानो,
पंचेव=पाँच ही,
पत्तेअं-पत्तेअं=प्रत्येक में, (एक-एक में),
चत्तारि=चार,
य=और,
बंधवुच्छेए=बन्ध का विच्छेद होने पर भी ।

गाथार्थ :–बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान में तीन, इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान में अट्ठाईस प्रकृति वाला एक, सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान में छह, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक बन्धस्थान में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं ।

पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बन्धस्थानों में छह-छह सत्तास्थान तथा शेष रहे बंधस्थानों में से प्रत्येक के पाँच-पाँच सत्तास्थान जानना चाहिए और बन्ध का विच्छेद हो जाने पर चार सत्तास्थान होते हैं ।

विवेचन :–बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय तीन सत्तास्थान होते हैं 28, 27 और 26 प्रकृतिक । जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–बाईस प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव को होता है और उसके उदयस्थान चार होते हैं-7, 8, 9 और 10 प्रकृतिक । इनमें से 7 प्रकृतिक उदयस्थान के समय

28 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योंकि सात प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय के बिना ही होता है और मिथ्यात्व में अनन्तानुबन्धी के उदय का अभाव उसी जीव को होता है, जिसने पहले सम्यग्दृष्टि रहते अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना की और कालान्तर में परिणामवश मिथ्यात्व में जाकर मिथ्यात्व के निमित्त से पुनः अनन्तानुबन्धी के बन्ध का प्रारम्भ किया हो। उसके एक आवलीका प्रमाण काल तक अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं होता है। किन्तु ऐसे जीव के नियम से अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है। जिससे सात प्रकृतिक उदयस्थान में एक अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान ही होता है।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भी उक्त तीनों सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार का होता है-1. अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित और 2. अनन्तानुबन्धी के उदय से सहित। इनमें से जो अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित वाला आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमें एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही प्राप्त होता है।

इसका स्पष्टीकरण सात प्रकृतिक उदयस्थान के प्रसंग में ऊपर किया गया है तथा जो अनन्तानुबन्धी के उदय सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमें उक्त तीनों ही सत्तास्थान बन जाते हैं। वे इस प्रकार हैं–1. जब तक सम्यक्त्व की उद्वेलना नहीं होती तब तक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। 2. सम्यक्त्व की उद्वेलना हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और 3. मिश्र की उद्वेलना हो जाने पर छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को भी होता है।

नौ प्रकृतिक उदयस्थान भी अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित और अनन्तानुबन्धी के उदय से सहित होता है। अनन्तानुबन्धी के उदय से रहित नौ प्रकृतिक उदयस्थान में तो एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है, किन्तु जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय सहित है उसमें तीनों सत्तास्थान पूर्वोक्त प्रकार से बन जाते हैं।

दस प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुबन्धी के उदय वाले को ही होता है। अन्यथा दस प्रकृतिक उदयस्थान ही नहीं बनता है। अतः उसमें 28, 27 और 26 प्रकृतिक तीनों सत्तास्थान प्राप्त हो जाते हैं।

इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय सत्तास्थान एक अट्ठाईस प्रकृतिक ही होता है–इसका कारण यह है कि इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान सास्वादन

सम्यग्दृष्टि को ही होता है और सास्वादन सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व से च्युत हुए जीव को होता है, किन्तु ऐसे जीव के दर्शनमोहनीय के तीनों भेदों की सत्ता अवश्य पाई जाती है, क्योंकि यह जीव सम्यक्त्व गुण के निमित्त से मिथ्यात्व के तीन भाग कर देता है, जिन्हें क्रमशः मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व कहते हैं। अतः इसके दर्शन मोहनीय के उक्त तीनों भेदों की सत्ता नियम से पाई जाती है। यहाँ उदयस्थान सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन होते हैं। अतः इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय तीन उदयस्थानों के रहते हुए एक अट्ठाईस प्रकृतिक ही सत्तास्थान होता है।

सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान के समय छह सत्तास्थान होते हैं–जो 28, 27, 26, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक होते हैं। सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान मिश्रदृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानकों में होता है।

इनमें से मिश्रदृष्टि जीवों के 7, 8 और 9 प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान होते हैं और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के चार उदयस्थान होते हैं-6, 7, 8 और 9 प्रकृतिक। इनमें से छह प्रकृतिक उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों को ही प्राप्त होता है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समय होता है तथा जिसने अनन्तानुबंधी की उद्वेलना की उस औपशमिक अविरत सम्यग्दृष्टि के चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शन मोहत्रिक इन सात प्रकृतियों के क्षय होने पर ही उसकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान में 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

मिश्रदृष्टि जीवों के सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 27 और 24 ये तीन सत्तास्थान होते हैं। इनमें से अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला जो जीव मिश्र को प्राप्त होता है, उसके अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, किन्तु जिस मिथ्यादृष्टि ने सम्यक्त्व की उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त कर लिया किन्तु अभी मिश्र की उद्वेलना नहीं की, वह यदि मिथ्यात्व से निवृत्त होकर परिणामों के निमित्त से मिश्र गुणस्थानक को प्राप्त होता है तो उस मिश्रदृष्टि जीव के सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा सम्यग्दृष्टि रहते हुए जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की है, वह यदि

परिणामवशात् मिश्रदृष्टि गुणस्थानक को प्राप्त करता है तो उसके चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। ऐसा जीव चारों गतियों में पाया जाता है। क्योंकि चारों गतियों का सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करता है।

अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के सात प्रकृतिक उदयस्थान रहते 28, 24, 23, 22 और 21, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इनमें से 28 और 24 प्रकृतिक तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के होते हैं, किन्तु यह विशेषता है कि 24 प्रकृतिक सत्तास्थान, जिसने अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना कर दी है, उसको होता है। 23 और 22 प्रकृतिक सत्तास्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होते हैं। क्योंकि आठ वर्ष या इससे अधिक आयु वाला जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपणा के लिए उद्यत होता है, उसके अनन्तानुबंधी चतुष्क और मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर 23 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और फिर उसी के मिश्रमोहनीय का क्षय हो जाने पर 22 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह 22 प्रकृतिक सत्ता वाला जीव सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते समय जब उसके अन्तिम भाग में रहता है और कदाचित् उसने पहले परभव सम्बन्धी आयु का बंध कर लिया हो तो मर कर चारों गतियों में उत्पन्न होता है।

इस प्रकार 22 प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गतियों में प्राप्त होता है किन्तु 21 प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को ही प्राप्त होता है। क्योंकि अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक, इन सात प्रकृतियों का क्षय होने पर ही क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है।

इसी प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी मिश्रदृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के क्रमशः पूर्वोक्त तीन और पाँच सत्तास्थान होते हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी इसी प्रकार जानना चाहिए, लेकिन इतनी विशेषता है कि अविरतों के नौ प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होता है और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के 28, 24, 23 और 22 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान पाये जाते हैं, अतः यहाँ भी उक्त चार सत्तास्थान होते हैं।

तेरह और नौ प्रकृतिक बंधस्थान के रहते पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं—वे पाँच सत्तास्थान 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक होते हैं। पहले तेरह प्रकृतिक बंधस्थान सत्तास्थानों को स्पष्ट करते हैं।

तेरह प्रकृतियों का बंध देशविरतों को होता है और देशविरत दो प्रकार के होते हैं-तिर्यंच और मनुष्य । तिर्यंच देशविरतों के चारों ही उदयस्थानों में 28 और 24 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । 28 प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि, इन दोनों प्रकार के ही तिर्यंच देशविरतों के होता है । उसमें भी जो प्रथम उपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के समय ही देशविरत गुणस्थानक को प्राप्त कर लेता है, उसी देशविरत गुणस्थानक के उपशम सम्यक्त्व के रहते हुए 28 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । क्योंकि अन्तरकरण काल में विद्यमान कोई भी औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत गुणस्थानक को प्राप्त करता है और कोई मनुष्य सर्वविरत गुणस्थानक को भी प्राप्त करता है, ऐसा नियम है ।

अन्तरकरण में स्थित कोई उपशम सम्यग्दृष्टि जीव देशविरति को प्राप्त होता है और कोई प्रमत्तसंयम और अप्रमत्तभाव को भी प्राप्त होता है, परन्तु सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव इनमें से किसी को भी प्राप्त नहीं होता है ।

इस प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को देशविरति गुणस्थानक की प्राप्ति के बारे में बताया कि वह कैसे प्राप्त होता है । किन्तु वेदक सम्यक्त्व के साथ देशविरति होने में कोई विशेष बाधा नहीं है । जिससे देशविरति गुणस्थानक में वेदक सम्यग्दृष्टि के 28 प्रकृतिक सत्तास्थान बन ही जाता है । किन्तु 24 प्रकृतिक सत्तास्थान अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाले तिर्यंचों को होता है और वे वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं । क्योंकि तिर्यंचगति में औपशमिक सम्यग्दृष्टि के 24 प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति संभव नहीं है । इन दो सत्तास्थानों के अतिरिक्त तिर्यंच देशविरत को शेष 23 आदि सब सत्तास्थान नहीं होते हैं, क्योंकि वे क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीवों को ही होते हैं और तिर्यंच क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं करते हैं । इसे तो केवल मनुष्य ही उत्पन्न करते हैं ।

जो देशविरत मनुष्य हैं, उनके पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । छह प्रकृतिक और सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते प्रत्येक में 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं । आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24, 23 और 22 प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं ।

नौ प्रकृतिक बंधस्थान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों के होता है। इनके 4, 5, 6 और 7 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि यह उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि को ही प्राप्त होता है। पाँच प्रकृतिक और छह प्रकृतिक उदयस्थान के रहते पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि ये उदयस्थान तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों- औपशमिक, क्षायिक और वेदक को संभव हैं। किन्तु सात प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टियों के संभव होने से यहाँ 21 प्रकृतिक सत्तास्थान संभव न होकर शेष चार ही सत्तास्थान होते हैं।

पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बंधस्थान में छह-छह सत्तास्थान होते हैं। लेकिन दोनों के सत्तास्थानों की प्रकृतियों की संख्या में अन्तर है।

सर्वप्रथम पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के सत्तास्थानों को बतलाते है। पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के छह सत्तास्थानों की संख्या इस प्रकार हैं–28, 24, 21, 13,12 और 11।

पाँच प्रकृतिक बंधस्थान उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी में अनिवृत्तिबादर जीवों के पुरुषवेद के बंधकाल तक होता है और पुरुषवेद के बंध के समय तक छह नोकषायों की सत्ता पाई जाती है, अतः पाँच प्रकृतिक बंधस्थान में पाँच आदि सत्तास्थान नहीं पाये जाते हैं। अब रहे शेष सत्तास्थानों में उपशमश्रेणि की अपेक्षा यहाँ 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान पाये जाते हैं। 28 और 24 प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि को उपशमश्रेणि में और 21 प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि को उपशमश्रेणि में पाया जाता है। क्षपकश्रेणी में भी जब तक आठ कषायों का क्षय नहीं होता तब तक 21 प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। अर्थात् उपशमश्रेणी की अपेक्षा 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। लेकिन इतनी विशेषता है कि 28 और 24 प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को ही उपशम श्रेणि में होते हैं, किन्तु 21 प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को उपशमश्रेणी में भी होता है और क्षपकश्रेणी में भी आठ कषायों के क्षय न होने तक पाया जाता है।

क्षपकश्रेणि में 13, 12 और 11 प्रकृतिक सत्तास्थान तो होते ही हैं और उनके साथ 21 प्रकृतिक सत्तास्थान को और मिला देने पर क्षपकश्रेणि में 21, 13, 12 और 11 ये चार सत्तास्थान होते हैं। आठ कषायों के क्षय न होने तक 21 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और आठ कषायों के क्षय हो जाने पर 13 प्रकृतिक सत्तास्थान। इसमें से नपुंसक वेद का क्षय हो जाने पर 12 प्रकृतिक तथा बारह प्रकृतिक सत्तास्थान में से स्त्रीवेद का क्षय हो जाने पर 11 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थान में 28, 24, 21, 13, 12 और 11 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं।

चार प्रकृतिक बन्धस्थान में 28, 24, 21, 11, 5 और 4 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। चार प्रकृतिक बन्धस्थान भी उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि दोनों में होता है। उपशमश्रेणि में पाये जाने वाले 28, 24 और 21 प्रकृतिक सत्तास्थानों का पहले जो स्पष्टीकरण किया गया, वैसा यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

अब रहा क्षपकश्रेणि का विचार, सो उसके लिए यह नियम है कि जो जीव नपुंसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है, वह नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्षय एक साथ करता है और इसके साथ ही पुरुषवेद का बन्धविच्छेद हो जाता है। तदनन्तर इसके पुरुषवेद और हास्यादि षट्क का एक साथ क्षय होता है। यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है तो वह जीव पहले नपुंसक वेद का क्षय करता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल में स्त्रीवेद का क्षय करता है, फिर पुरुषवेद और हास्यादि षट्क का एकसाथ क्षय होता है। किन्तु इसके भी स्त्रीवेद की क्षपणा के समय पुरुषवेद का बंधविच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीव के या तो स्त्रीवेद की क्षपणा के अन्तिम समय में या स्त्रीवेद और नपुंसकवेद की क्षपणा के अंतिम समय में पुरुषवेद का बन्धविच्छेद हो जाता है, जिससे इस जीव के चार प्रकृतिक बंधस्थान में वेद के उदय के बिना एक प्रकृति का उदय रहते ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है तथा यह जीव पुरुषवेद और हास्यादि षट्क का क्षय एक साथ करता है। अतः इसके पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त न होकर चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। किन्तु जो जीव पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है, उसके छह

नोकषायों के क्षय होने के समय ही पुरुषवेद का बंधविच्छेद होता है, जिससे उसके चार प्रकृतिक बंधस्थान में ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता किन्तु पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। इसके यह सत्तास्थान दो समय कम दो आवली काल तक रहकर, अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है।

इस प्रकार चार प्रकृतिक बंधस्थान में 28, 24, 21, 11, 5 और 4 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं, यह सिद्ध हुआ।

तीन, दो और एक प्रकृतिक बंधस्थानों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं-जिनका स्पष्टीकरण करते हैं।

तीन प्रकृतिक बंधस्थान के पाँच सत्तास्थान इस प्रकार हैं-28, 24, 21, 4 और 3 प्रकृतिक। यह तो सर्वत्र सुनिश्चित है कि उपशमश्रेणि की अपेक्षा प्रत्येक बंधस्थान में 28, 24 और 21 प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं, अतः शेष रहे 4 और 3 प्रकृतिक सत्तास्थान क्षपकश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिए। अतः अब क्षपकश्रेणि की अपेक्षा यहाँ विचार करना है।

इस सम्बन्ध में ऐसा नियम है कि संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति एक आवलिका प्रमाण शेष रहने पर बंध, उदय और उदीरणा, इन तीनों का एक साथ विच्छेद हो जाता है और तदनन्तर तीन प्रकृतिक बंध होता है, किन्तु उस समय संज्वलन क्रोध के एक आवलिका प्रमाण स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवलिका प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर अन्य सबका क्षय हो जाता है। यद्यपि यह भी दो समय कम दो आवलिका प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा किन्तु जब तक क्षय नहीं होता तब तक तीन प्रकृतिक बंधस्थान में चार प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है और इसके क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक बंधस्थान में तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है।

इस प्रकार तीन प्रकृतिक बंधस्थान में 28, 24, 21, 4 और 3 प्रकृतिक ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। द्विप्रकृतिक बंधस्थान में पाँच सत्तास्थान इस प्रकार हैं-28, 24, 21, 3 और 2 प्रकृतिक। संज्वलन मान की भी इसी प्रकार प्रथम स्थिति एक आवलिका प्रमाण शेष रहने पर बंध, उदय और उदीरणा, इन तीनों का एक साथ विच्छेद हो जाता है, उस समय दो प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है, पर उस समय संज्वलन मान के एक आवलिका प्रमाण प्रथम

स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवलिका प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर अन्य सब का क्षय हो जाता है। यद्यपि वह शेष सत्कर्म दो समय कम दो आवलिका प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा। किन्तु जब तक इसका क्षय नहीं हुआ, तब तक दो प्रकृतिक बंधस्थान में तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। पश्चात् इसके क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक बंधस्थान में दो प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

इस प्रकार दो प्रकृतिक बंधस्थान में 28, 24, 21, 3 और 2 प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं।

एक प्रकृतिक बंधस्थान में होने वाले पाँच सत्तास्थान इस प्रकार हैं-28, 24, 21, 2 और 1 प्रकृतिक। इनमें से 28, 24 और 21 प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझ लेना चाहिए। शेष 2 और 1 प्रकृतिक सत्तास्थानों का विवरण इस प्रकार है–कि इसी तरह संज्वलन माया की प्रथम स्थिति एक आवलिका प्रमाण शेष रहने पर बंध, उदय और उदीरणा का एकसाथ विच्छेद हो जाता है और उसके बाद एक प्रकृतिक बंध होता है, परन्तु उस समय संज्वलन माया के एक आवलिका प्रमाण प्रथम स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवलिका प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर शेष सबका क्षय हो जाता है। यद्यपि यह शेष सत्कर्म भी दो समय कम दो आवलिका प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा, किन्तु जब तक इसका क्षय नहीं हुआ तब तक एक प्रकृतिक बंधस्थान में दो प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है। पश्चात् इसका क्षय हो जाने पर एक प्रकृतिक बंधस्थान में सिर्फ एक संज्वलन लोभ की सत्ता रहती है।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बंधस्थान में 28, 24,21, 2 और 1 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। अब बंध के अभाव में भी विद्यमान सत्तास्थानों का विचार करते हैं। बंध के अभाव में चार सत्तास्थान होते हैं। वे चार सत्तास्थान इस प्रकार हैं-28, 24, 21 और 1 प्रकृतिक। बंध का अभाव दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में होता है, जो उपशमश्रेणी पर चढ़कर सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानक को प्राप्त होता है, यद्यपि उसको मोहनीयकर्म का बंध तो नहीं होता, किन्तु उसके 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान संभव हैं तथा जो क्षपकश्रेणि पर आरोहण करके सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक को प्राप्त करता है, उसके संज्वलन लोभ की सत्ता पाई जाती है। इसीलिए बंध के अभाव में 28, 24, 21 और 1 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान माने जाते हैं।

गुण-स्थान	बंध-स्थान	भंग	उदयस्थान		उदय चौबीसी		उदयभंग		उदयपद		उदय पद-वृन्द संख्या		सत्तास्थान	
				जोड़		जोड़		जोड़		जोड़		जोड़		
1.	22	6	7		1		24		7		168		1	28
			8	4	3	8	72	192	24	68	576	1632	3	28, 27, 26
			9		3		72		27		648		3	28, 27, 26
			10		1		24		10		240		3	28, 27, 26
2.	21	4	7		1		24		7		168		1	28
			8	3	2	4	48	96	16	32	384	768	1	28
			9		1		24		9		216		1	28
3-4.	17	2	6		1		24		6		144		3	28, 24, 21
			7	4	4	12	96		28		672		6	28, 27, 24
														23, 22, 21
			8		5		120	288	40	92	960	2208	6	28,27,24,23,22,21
			9		2		48		18		432		5	28,27,24,23,22
5.	13	2	5		1		24		5		120		3	28,24,21
			6	4	3	8	72	192	18	52	432	1248	5	28,24,23,22,21
			7		3		72		21		504		5	28,24,23,22,21
			8		1		24		8		192		4	28,24,23,22
6.	9	2	4		1		24		4		96		3	28,24,21
7.			5	4	3	8	72	192	15	44	360	1056	5	28,24,23,22,21
8.			6		3		72		18		432		5	28,24,23,22,21
			7		1		24		7		168		4	28,24,23,22

गुण-स्थान	बंध-स्थान	भंग	उदयस्थान		उदय चौबीसी		उदयभंग		उदयपद		उदय पद-वृन्द संख्या		सत्तास्थान	
				जोड़		जोड़		जोड़		जोड़		जोड़		
9.	5	1	2	1	x	x	12	12	x	x	24	24	6	28,24,21,13,12,11
9.	4	1	1	x	x	x	4	4	x	x	4	4	6	28,24,21,11,5,4
9.	3	1	1	x	x	x	3	3	x	x	3	3	5	28,24,21,4,3
9.	2	1	1	x	x	x	2	2	x	x	2	2	5	28,24,21,3,2
9.	1	1	1	x	x	x	1	1	x	x	1	1	5	28,24,21,2,1
10.	0	0	1	x	x	x	1	1	x		1	1	4	28,24,21,1
11.	0	x	0	x	x	x	x	x	x	x	x	x	3	28, 24, 21
कुल जोड़		21		25		40		983		288		6947	101	

नोट : जिन आचार्यों का मत है कि चार प्रकृतिक बंधस्थान में दो और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उनके मत से 12 उदयपद और 24 उदयपदवृन्द बढ़कर उनकी संख्या क्रम से 995 और 6971 हो जाती है ।

नामकर्म का कथन

दस-नव-पन्नरसाइं, बंधोदय सन्त पयडिठाणाणि ।
भणिआणि मोहणिज्जे, इत्तो नामं परं वुच्छं ।।25।।

–: शब्दार्थ :–

दस-नव-पन्नरसाइं=दस, नौ और पन्द्रह,	**मोहणिज्जे**=मोहनीय कर्म के,
बंधोदय सन्त पयडिठाणाणि=बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के स्थान,	**इत्तो**=इससे,
भणिआणि=कहे,	**नामं**=नामकर्म के,
	परं=आगे,
	वुच्छं=कहते हैं ।

गाथार्थ :–मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के स्थान क्रमशः दस, नौ और पन्द्रह कहे । अब आगे नामकर्म का कथन करते हैं ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म के बन्ध, उदय और सत्तास्थानों के कथन का उपसंहार करते हुए गाथा में संकेत किया गया है कि मोहनीय कर्म के बंधस्थान दस, उदयस्थान नौ और सत्तास्थान पन्द्रह होते हैं । जिनमें और जिनके संवेद्य भंगों का कथन किया जा चुका है । अब आगे की गाथा से नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता के संवेद्य भंगों का कथन प्रारम्भ करते हैं ।

नामकर्म के बंधस्थान

तेवीस पन्नवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीसमेगं बंधट्ठाणाणि नामस्स ।।26।।

–: शब्दार्थ :–

तेवीस=तेईस,	**तीसेगतीसं**=तीस इकतीस,
पन्नवीसा=पच्चीस,	**एगं**=एक,
छव्वीसा=छब्बीस,	**वंधट्ठाणाणि**=बंधस्थान,
अट्ठवीस=अट्ठाईस,	**णामस्स**=नामकर्म के ।
गुणतीसा=उनतीस,	

गाथार्थ :–नामकर्म के तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिक, ये आठ बंधस्थान होते हैं ।

विवेचन :–गाथा में नामकर्म के आठ बंधस्थान बताये हैं । वे बंधस्थान 1. तेईस प्रकृतिक, 2. पच्चीस प्रकृतिक, 3. छब्बीस प्रकृतिक, 4. अट्ठाईस प्रकृतिक, 5. उनतीस प्रकृतिक, 6. तीस प्रकृतिक, 7. इकतीस प्रकृतिक और 8. एक प्रकृतिक हैं ।

वैसे तो नामकर्म की उत्तरप्रकृतियाँ तिरानवै हैं । किन्तु इन सबका एक साथ किसी भी जीव को बंध नहीं होता है, इसलिए उनमें से कितनी प्रकृतियों का एक साथ बंध होता है, इसका विचार आठ बंधस्थानों के द्वारा किया गया है । इनमें भी कोई तिर्यंचगति के, कोई मनुष्यगति के, कोई देवगति के और कोई नरकगति के योग्य बंधस्थान हैं और इसमें भी इनके अनेक अवान्तर भेद हो जाते हैं । जिससे इन अवान्तर भेदों के साथ उनका विचार यहाँ करते हैं ।

तिर्यंच एकेन्द्रिय के योग्य बंधस्थान

तिर्यंचगति में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव होते हैं । तिर्यंचगति के योग्य बंध करने वाले जीवों के सामान्य से 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक पाँच बंधस्थान होते हैं । उनमें से भी एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के 23, 25 और 26 प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान होते हैं ।

उनमें से 23 प्रकृतिक बंधस्थान में तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडकसंस्थान, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात नाम, स्थावर नाम, सूक्ष्म और बादर में से कोई एक, अपर्याप्त नाम, प्रत्येक और साधारण इनमें से कोई एक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण, इन तेईस प्रकृतियों का बंध होता है । इन तेईस प्रकृतियों के समुदाय को तेईस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं और यह बंधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य को होता है ।

यहाँ चार भंग प्राप्त होते हैं । ऊपर बताया है कि बादर और सूक्ष्म में से किसी एक का तथा प्रत्येक और साधारण में से किसी एक का बंध होता है । अतः यदि किसी ने एक बार बादर के साथ प्रत्येक का और दूसरी बार बादर

के साथ साधारण का बंध किया । इसी प्रकार किसी ने एक बार सूक्ष्म के साथ साधारण का बंध किया और दूसरी बार सूक्ष्म के साथ प्रत्येक का बंध किया तो इस प्रकार तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में चार भंग हो जाते हैं ।

पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुंडकसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, स्थावर, बादर और सूक्ष्म में से कोई एक, पर्याप्त, प्रत्येक और साधारण में से कोई एक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, यश:कीर्ति और अपयश में से कोई एक, दुर्भग, अनादेय और निर्माण, इन पच्चीस प्रकृतियों का बंध होता है । इन पच्चीस प्रकृतियों के समुदाय को पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं । यह बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य और देव को होता है ।

इस बंधस्थान में बीस भंग होते हैं । वे इस प्रकार हैं-जब कोई जीव बादर, पर्याप्त और प्रत्येक का बंध करता है, तब उसके स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का तथा यश और अपयश में से किसी एक का बंध होने के कारण आठ भंग होते हैं तथा जब कोई जीव बादर, पर्याप्त और साधारण का बंध करता है, तब उसके यश का बन्ध न होकर अपयश का ही बंध होता है ।

सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त इन तीन में से किसी एक का भी बंध होते समय यश का बंध नहीं होता है । जिससे यहाँ यश और अपयश के निमित्त से बनने वाले भंग संभव नहीं हैं । अब रहे स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ, ये दो युगल । इनका विकल्प से बंध संभव है यानी स्थिर के साथ एक बार शुभ का, एक बार अशुभ का तथा इसी प्रकार अस्थिर के साथ भी एक शुभ का तथा एक बार अशुभ का बंध संभव है, अतः यहाँ कुल चार भंग होते हैं । जब कोई जीव सूक्ष्म और पर्याप्त का बंध करता है, तब उसके यश और अपयश इनमें से एक अपयश का ही बंध होता है किन्तु प्रत्येक और साधारण में से किसी एक का, स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का तथा शुभ और अशुभ में से किसी एक का बंध होने के कारण आठ भंग होते हैं । इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में 8 + 4 + 8 = 20 भंग होते हैं ।

छब्बीस प्रकृतियों के समुदाय को छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं। यह बंधस्थान पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के साथ बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य और देव को होता है। छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस, कार्मण शरीर, हुंडकसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, स्थावर, आतप और उद्योत में से कोई एक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यश और अपयश में से कोई एक तथा निर्माण।

इस बंधस्थान में सोलह भंग होते हैं। ये भंग आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति का, स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का तथा यश और अपयश में से किसी एक का बंध होने के कारण बनते हैं। आतप और उद्योत के साथ सूक्ष्म और साधारण का बंध नहीं होता है। इसलिए यहाँ सूक्ष्म और साधारण के निमित्त से प्राप्त होने वाले भंग नहीं कहे गये हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय प्रायोग्य 23, 25 और 26 प्रकृतिक, इन तीन बंधस्थानों के कुल भंग 4 + 20 + 16 = 40 होते हैं।

विकल त्रिक के बंधस्थान

द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले जीव के 25, 29 और 30 प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान होते हैं।

इनका विवरण इस प्रकार है–पच्चीस प्रकृतियों के समुदाय रूप बंधस्थान को पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं। इस स्थान के बंधक अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच होते हैं। पच्चीस प्रकृतियों के बंधस्थान की प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं–

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडकसंस्थान, सेवार्त संहनन, औदारिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण। यहाँ अपर्याप्त प्रकृति के साथ

केवल अशुभ प्रकृतियों का ही बंध होता है शुभ प्रकृतियों का नहीं, जिससे एक ही भंग होता है ।

उक्त पच्चीस प्रकृतियों में से अपर्याप्त को कम करके पराघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त और दुःस्वर, इन पाँच प्रकृतियों को मिला देने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है । ये उनतीस प्रकृतियाँ उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में होती हैं । यह बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव को होता है ।

इस बंधस्थान में स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश- अपयश इन तीनों युगलों में से प्रत्येक प्रकृति का विकल्प से बंध होता है, अतः आठ भङ्ग प्राप्त होते हैं ।

इन उनतीस प्रकृतियों में उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है । इस स्थान को भी पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाला मिथ्यादृष्टि ही बाँधता है । यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं । इस प्रकार 1 + 8 + 8 = 17 भङ्ग होते हैं ।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के भी पूर्वोक्त प्रकार से तीन-तीन बंधस्थान होते हैं ।

भङ्ग भी प्रत्येक के सत्रह-सत्रह हैं, अर्थात् त्रीन्द्रिय के सत्रह और चतुरिन्द्रिय के सत्रह (17) भङ्ग होते हैं । इस प्रकार से विकलत्रिक के इक्यावन (51) भङ्ग होते हैं ।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य बंध स्थान

तिर्यंचगति पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बन्ध करने वाले जीव के 25, 29 और 30 प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान होते हैं । इनमें से 25 प्रकृतिक बंधस्थान तो वही है जो द्वीन्द्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान बतलाये हैं । किन्तु वहाँ जो द्वीन्द्रियजाति कही है उसके स्थान पर पंचेन्द्रिय जाति कहना चाहिए । यहाँ एक भंग होता है ।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में उनतीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक

अंगोपांग, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहननों में से कोई एक संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर में से कोई एक, आदेय अनादेय में से कोई एक, यश-अपयश में से कोई एक तथा निर्माण। यह बंधस्थान पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। यदि इस बंधस्थान का बंधक सास्वादन सम्यग्दृष्टि होता है तो उसके आदि के पाँच संहननों में से किसी एक संहनन का तथा आदि के पाँच संस्थानों में से किसी एक संस्थान का बंध होता है। क्योंकि हुण्डकसंस्थान और सेवार्त संहनन को सास्वादन सम्यदृष्टि जीव नहीं बाँधता है–

इस उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में सामान्य से छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान का, छह संहननों में से किसी एक संहनन का, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति में से किसी एक विहायोगति का, स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का, सुभग और दुर्भग में से किसी एक का, सुस्वर और दुःस्वर में से किसी एक का, आदेय और अनादेय में से किसी एक का, यश और अपयश में से किसी एक का बंध होता है। अतः इन सब संख्याओं को गुणित कर देने पर–6 x 6 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 =4608 भंग प्राप्त होते हैं।

इस स्थान का बंधक सास्वादन सम्यग्दृष्टि भी होता है, किन्तु उसके पाँच संहनन और पाँच संस्थान का बंध होता है, इसलिए उसके 5 x 5 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 x 2 = 3200 भंग प्राप्त होते हैं। किन्तु इनका अन्तर्भाव पूर्वोक्त भंगों में ही हो जाने से इन्हें अलग से नहीं गिनाया है।

उक्त उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। जिस प्रकार उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में मिथ्यादृष्टि और सास्वादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा विशेषता है, उसी प्रकार यहाँ भी वही विशेषता समझना चाहिए। यहाँ भी सामान्य से 4608 भंग होते हैं–

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच के योग्य तीनों बन्धस्थानों के कुल भंग 4608 + 4608 + 1 = 9217 होते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उक्त 9217 भंगों में एकेन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के 40, द्वीन्द्रिय के योग्य बन्धस्थानों के 17, त्रीन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के 17 और चतुरिन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के 17 भंग और चतुरिन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के 17 भंग मिलाने पर तिर्यंचगति सम्बन्धी बंधस्थानों के कुल भंग 9217 + 40 + 17 + 17 + 17 = 9308 होते हैं ।

मनुष्यगति के योग्य बंधस्थान

मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के 25, 29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थान होते हैं ।

पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान वही है जो अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य बंध करने वाले जीवों को बतलाया है । किन्तु इतनी विशेषता समझना चाहिए कि यहाँ तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी और द्वीन्द्रिय के स्थान पर मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और पंचेन्द्रिय कहना चाहिए ।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान तीन प्रकार का है-एक मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा दूसरा सास्वादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा और तीसरा मिश्रदृष्टि या अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा । इनमें से मिथ्यादृष्टि और सास्वादन सम्यग्दृष्टि के तिर्यंचप्रायोग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान बताया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए, किन्तु यहाँ तिर्यंचगतिप्रायोग्य प्रकृतियों के बदले मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों को मिला देना चाहिए ।

तीसरे प्रकार के उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में-मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्त्र संस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश और अपयश में से कोई एक तथा निर्माण, इन उनतीस प्रकृतियों का बंध होता है । इन तीनों प्रकार के उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में सामान्य से 4608 भंग होते हैं । यद्यपि गुणस्थानक के भेद से यहाँ

भंगों में येद होता है किन्तु गुणस्थानक भेद की विवक्षा न करके यहाँ 4608 भंग कहे गये हैं ।

उक्त उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में तीर्थंकर नाम को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है । इस बंधस्थान में स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का तथा यश और अपयश में से किसी एक का बंध होने से इन सब संख्याओं को गुणित करने पर 2 x 2 x 2 = 8 भंग प्राप्त होते हैं । अर्थात् तीस प्रकृतिक बंधस्थान के आठ भंग होते हैं ।

इस प्रकार मनुष्यगति के योग्य 25, 29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थानों में कुल भंग 1 + 4608 + 8 = 4617 होते हैं–

देवगति के योग्य बंधस्थान

देवगति के योग्य प्रकृतियों के बंधक जीवों के 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये चार बंधस्थान होते हैं–

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में–देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, सुभग, आदेय, सुस्वर, यश और अपयश में से कोई एक तथा निर्माण, इन अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध होता है । इसीलिए इनके समुदाय को एक बंधस्थान कहते हैं । यह बंधस्थान देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि, सास्वादन सम्यग्दृष्टि, मिश्रदृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और सर्वविरत जीवों को होता है ।

इस बंधस्थान में स्थिर और अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का तथा यश:कीर्ति और अपयश में से किसी एक का बंध होता है । अतः उक्त संख्याओं को परस्पर गुणित करने पर 2 x 2 x 2 = 8 भंग प्राप्त होते हैं ।

उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है । तीर्थंकर प्रकृति का बंध अविरत सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानकों में होता है । जिससे यह बंधस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि

आदि जीवों के ही बनता है। यहाँ भी 28 प्रकृतिक बंधस्थान के समान ही आठ भंग होते हैं।

तीस प्रकृतियों के समुदाय को तीस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं। इस बंधस्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्त्र संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश और निर्माण। इसका बंधक अप्रमत्तसंयत या अपूर्वकरण गुणस्थानकवर्ती को जानना चाहिए। इस स्थान में सब शुभ कर्मों का बंध होता है, अतः यहाँ एक ही भंग होता है।

तीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक तीर्थंकर नाम को मिला देने पर इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भंग होता है। इस प्रकार देवगति के योग्य बंधस्थानों में 8 + 8 + 1 + 1 = 18 भंग होते हैं।

नरकगति के बन्धस्थान

नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के एक अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इसमें अट्ठाईस प्रकृतियाँ होती हैं, अतः उनका समुदाय रूप एक बंधस्थान है। यह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि को ही होता है। इसमें सब अशुभ प्रकृतियों का ही बंध होने से यहाँ एक ही भंग होता है। अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-नरकगति, नरकानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुड संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अपयश और निर्माण।

इन तेईस आदि उपर्युक्त बंधस्थानों के अतिरिक्त एक और बंधस्थान है जो देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाने पर अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानकों में होता है। इस एक प्रकृतिक बंधस्थान में सिर्फ यश नामकर्म का बंध होता है।

बंधस्थान में भंग

चउ पणवीसा सोलस, नव बाणउईसया य अडयाला ।
एयालुत्तर छायाल सया, इक्किक्क बंधविही ।।27।।

–: शब्दार्थ :–

चउ=चार,	**अडयाला**=अड़तालीस,
पणवीसा=पच्चीस,	**एयालुत्तर छायाल सया**=छियालीस सौ एकतालीस,
सोलस=सोलह,	**इक्किक्क**=एक-एक,
नव=नौ,	**बंधविही**=बंध के प्रकार, भंग ।
बाणउईसया=बानवैसौ,	
य=और,	

गाथार्थ :–तेईस प्रकृतिक आदि बंधस्थानों में क्रम में चार, पच्चीस, सोलह, नौ, बानवैसौ अड़तालीस, छियालीस सौ इकतालीस, एक और एक भंग होते हैं ।

विवेचन :–पहला बंधस्थान तेईस प्रकृतिक है । इस स्थान में चार भंग होते हैं । क्योंकि यह स्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों के बाँधने वाले जीव को ही होता है, अन्यत्र तेईस प्रकृतिक बंधस्थान नहीं पाया जाता है । इसके चार भंग पहले बता आये हैं । अतः तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में वे ही चार भंग जानने चाहिए ।

पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में कुल पच्चीस भंग होते हैं । क्योंकि एकेन्द्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के बीस भंग होते हैं तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य पच्चीस प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के एक-एक भंग होते हैं । अतः पूर्वोक्त बीस भंगों में इन पाँच भंगों को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में कुल पच्चीस भंग होते हैं ।

छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान के कुल सोलह भंग हैं । क्योंकि यह एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के ही होता है और एकेन्द्रिय प्रायोग्य छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान में पहले सोलह भंग बताये हैं,

अतः वे ही सोलह भंग इस छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान में जानना चाहिए ।

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में कुल नौ भंग होते हैं । क्योंकि देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के 28 प्रकृतिक बंधस्थान के आठ भंग होते हैं और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग । यह स्थान देव और नारक के सिवाय अन्य जीवों को किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं होता है । अतः इसके कुल नौ भंग होते हैं ।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के 9248 भंग होते हैं । इसका कारण यह है कि तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के 4608 भंग होते हैं तथा मनुष्यगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के 4608 भंग हैं और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के योग्य एवं तीर्थंकर नाम सहित देवगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के आठ-आठ भंग होते हैं । इस प्रकार उक्त सब भंगों को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भंग 4608 + 4608 + 8 + 8 + 8 + 8 = 9248 होते हैं ।

तीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भंग 4641 होते हैं । क्योंकि तिर्यंचगति के योग्य तीस प्रकृतिक बंध करने वाले के 4608 भंग होते हैं तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य तीस प्रकृति का बंध करने वाले जीवों के आठ-आठ भंग हैं और आहारक के साथ देवगति के योग्य तीस प्रकृति का बन्ध करने वाले के एक भंग होता है । इस प्रकार उक्त भंगों को मिलाने पर तीस प्रकृतिक बन्धस्थान के कुल भंग 4608 + 8 + 8 + 8 + 8 + 1 = 4641 होते हैं ।

इकतीस प्रकृतिक और एक प्रकृतिक बन्धस्थान का एक-एक भंग होता है ।

इस प्रकार से इन सब बन्धस्थानों के भंग 13945 होते हैं । वे इस तरह समझना चाहिए–4 + 25 + 16 + 9 + 9248 + 4641 + 1 + 1 = 13945 ।

क्रम	बंधस्थान	भंग 13945	आगामी भवप्रायोग्य	बंधक
1.	23	4	अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य 4	तिर्यंच, मनुष्य 4
2.	25	25	एकेन्द्रिय 20, द्वीन्द्रिय 1, त्रीन्द्रिय 1, चतुरिन्द्रिय 1, पंचेन्द्रिय तिर्यंच 1, मनुष्य 1	तिर्यंच, मनुष्य 25, देव 8
3.	26	16	पर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य 16	तिर्यंच, मनुष्य व देव 16
4.	28	9	देवगति प्रायोग्य 8, नरकगति प्रायोग्य 1	पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य 9
5.	29	9248	द्वीन्द्रिय 8, त्रीन्द्रिय 8, च. 8, पं० ति. 4608, मनुष्य 4608, देव 8	तिर्यंच 9240, मनुष्य 9248, देव 9216, ना. 9216
6.	30	4641	द्वी. 8, त्री. 8, च. 8, पं.ति. 4608, मनुष्य 8, देव 1	तिर्यंच 4632, मनुष्य 4633, देव 4616, ना. 4616
7.	31	1	देव प्रायोग्य 1	मनुष्य 1
8.	1	1	अप्रायोग्य 1	मनुष्य 1

नामकर्म के उदय स्थान

वीसिगवीसा चउवीसगा उ, एगाहिआ य इगतीसा ।
उदयट्ठाणाणि भवे, नव अट्ठ य हुंति नामस्स ।।28।।

–: शब्दार्थ :–

वीसिगवीसा=बीस और इक्कीस का,	**उदयट्ठाणाणि**=उदयस्थान,
चउवीसगा उ=चौबीस से लेकर,	**भवे**=होते हैं,
एगाहिआ=एक-एक अधिक,	**नव अट्ठय**=नौ और आठ प्रकृति का,
य=और,	**हुंति**=होते हैं,
इगतीसा=इकतीस तक,	**नामस्स**=नामकर्म के ।

गाथार्थ :–नामकर्म के बीस, इक्कीस और चौबीस से लेकर एक, एक प्रकृति अधिक इकतीस तक तथा आठ और नौ प्रकृतिक, ये बारह उदयस्थान होते हैं ।

विवेचन :–इस गाथा में नामकर्म के उदयस्थान बतलाये हैं । वे उदयस्थान बारह हैं । जिनकी प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है–20, 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29 30, 31, 8 और 9 ।

नामकर्म के जो बारह उदयस्थान कहे हैं, उनमें से एकेन्द्रिय जीव के 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं । यहाँ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्ण चतुष्क और निर्माण ये बारह प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा ध्रुव हैं । क्योंकि तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानक तक इनका उदय नियम से सबको होता है । इन ध्रुवोदया बारह प्रकृतियों में तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति, बादर-सूक्ष्म में से कोई एक, पर्याप्त-अपर्याप्त में से कोई एक, दुर्भग, अनदिय तथा यश, अपयश में से कोई एक, इन नौ प्रकृतियों के मिला देने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह उदयस्थान भव के अपान्तराल में विद्यमान एकेन्द्रिय को होता है ।

इस उदयस्थान में पाँच भंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं-बादर पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त, इन चारों भंगों को अपयश

के साथ कहना चाहिए जिससे चार भंग होते हैं तथा बादर पर्याप्त को यश के साथ कहने पर एक भंग और होता है। इस प्रकार कुल पाँच भंग होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त 21 प्रकृतियों में विकल्परूप तीन युगल होने के कारण 2 x 2 x 2 = 8 भंग होते हैं। किन्तु सूक्ष्म और अपर्याप्त के साथ यश:कीर्ति का उदय नहीं होता है, जिससे तीन भंग कम हो जाते हैं। भव के अपान्तराल में पर्याप्तियों का प्रारम्भ ही नहीं होता, फिर भी पर्याप्त नामकर्म का उदय पहले समय से ही हो जाता है और इसलिए अपान्तराल में विद्यमान ऐसा जीव लब्धि से पर्याप्तक ही होता है, क्योंकि उसके आगे पर्याप्तियों की पूर्ति नियम से होती है।

इन इक्कीस प्रकृतियों में औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण इनमें से कोई एक, इन चार प्रकृतियों को मिलाने पर तथा तिर्यंचानुपूर्वी प्रकृति को कम कर देने से शरीरस्थ एकेन्द्रिय जीव के चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्वोक्त पाँच भंगों को प्रत्येक और साधारण से गुणा कर देने पर दस भंग होते हैं तथा वायुकायिक जीव के वैक्रिय शरीर को करते समय औदारिक शरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर का उदय होता है, अत: इसके वैक्रिय शरीर के साथ भी चौबीस प्रकृतियों का उदय और इसके केवल बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और अपयश ये प्रकृतियाँ ही कहना चाहिए, इसलिए इसकी अपेक्षा एक भंग हुआ। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव के साधारण और यश का उदय नहीं होता अत: वायुकायिक को इनकी अपेक्षा भंग नहीं बताये हैं। इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान में कुल ग्यारह भंग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने के बाद 24 प्रकृतिक उदयस्थान के साथ पराघात प्रकृति को मिला देने पर 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ बादर के प्रत्येक और साधारण तथा यश और अपयश के निमित्त से चार भंग होते हैं तथा सूक्ष्म के प्रत्येक और साधारण की अपेक्षा अपयश के साथ दो भंग होते हैं। जिससे छह भंग तो ये हुए तथा वैक्रिय शरीर को करने वाला बादर वायुकायिक जीव जब शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाता है, तब उसके 24 प्रकृतियों में पराघात के मिलाने पर पच्चीस प्रकृतियों का उदय होता है। इसलिए एक भंग इसका होता है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान में सब मिलकर सात भंग होते हैं।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त 25 प्रकृतियों में उच्छ्वास के मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी पूर्व के समान छह भंग होते हैं । अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जिस जीव के उच्छ्वास का उदय न होकर आतप और उद्योत में से किसी एक का उदय होता है, उसको छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी छह भंग होते हैं । वे इस प्रकार हैं–आतप और उद्योत का उदय बादर के ही होता है, सूक्ष्म के नहीं, अतः इनमें से उद्योत सहित बादर के प्रत्येक और साधारण तथा यश और अपयश इनकी अपेक्षा चार भंग हुए तथा आतप सहित प्रत्येक के यश और अपयश इनकी अपेक्षा दो भंग हुए । इस प्रकार कुल छह भंग हुए । आतप का उदय बादर पृथ्वीकायिक के ही होता है, किन्तु उद्योत का उदय वनस्पतिकायिक के भी होता है और बादर वायुकायिक के वैक्रिय शरीर को करते समय उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर 25 प्रकृतियों में उच्छ्वास को मिलाने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । अतः यह एक भंग हुआ । इतनी विशेषता समझना चाहिए कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के आतप, उद्योत और यश का उदय नहीं होता है । इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में कुल 13 भंग होते हैं ।

उक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त जीव के आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी छह भंग होते हैं, जिनका स्पष्टीकरण आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के साथ छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में किया जा चुका है ।

इस प्रकार एकेन्द्रिय के पाँच उदयस्थानों के कुल भंग 5 + 11 + 7 + 13 + 6 = 42 होते हैं ।

एकेन्द्रिय के जो 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक पाँच उदयस्थान बतलाये हैं उनमें क्रमशः 5, 11, 7, 13 और 6 भंग होते हैं और उनका कुल जोड़ 42 होता है ।

विकलत्रिक और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के उदयस्थान

द्वीन्द्रिय जीवों के 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं ।

पहले जो नामकर्म की बारह ध्रुवोदय प्रकृतियाँ बतलाये हैं, उनमें तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त में से कोई एक, दुर्भग, अनादेय तथा यश और अपयश में से कोई एक, इन नौ प्रकृतियों को मिलाने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान भव के अपान्तराल में विद्यमान जीव के होता है। यहाँ तीन भंग होते हैं, क्योंकि अपर्याप्त के एक अपयश का उदय होता है, अतः एक भंग हुआ तथा पर्याप्त के यश और अपयश के विकल्प से इन दोनों का उदय होता है अतः दो भंग हुए। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में कुल तीन भंग हुए।

इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुंडकसंस्थान, सेवार्तसंहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर शरीरस्थ द्वीन्द्रिय जीव के छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के भंगों के समान तीन भंग होते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के अप्रशस्त विहायोगति और पराघात इन दो प्रकृतियों के मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ यश और अपयश की अपेक्षा दो भंग होते हैं। इसके अपर्याप्त नाम का उदय न होने से उसकी अपेक्षा भंग नहीं कहे हैं।

अनन्तर श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त 28 प्रकृतिक उदयस्थान में उच्छ्वास प्रकृतिक के मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी यश और अपयश की अपेक्षा दो भंग होते हैं अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उद्योत का उदय होने पर उच्छ्वास के बिना 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी यश और अपयश की अपेक्षा दो भंग हो जाते हैं। इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान में कुल चार भंग होते हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 29 प्रकृतियों में सुस्वर और दुःस्वर इनमें से किसी एक के मिला देने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर सुस्वर और दुःस्वर तथा यश और अपयश के विकल्प से चार भंग होते हैं अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वर का उदय न होकर यदि उसके स्थान पर उद्योत का उदय हो गया

तो भी 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ यश और अपयश के विकल्प से दो ही भंग होते हैं । इस प्रकार तीस प्रकृतिक उदयस्थान में छह भंग होते हैं ।

अनन्तर स्वर सहित 30 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत के मिलाने पर इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ सुस्वर और दुःस्वर तथा यश और अपयश के विकल्प से चार भंग होते हैं ।

इस प्रकार द्वीन्द्रिय जीवों के छह उदयस्थानों (21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक) में क्रमशः 3 + 3 + 2 + 4 + 6 + 4 कुल 22 भंग होते हैं । इसी प्रकार से त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में से प्रत्येक के छह-छह उदयस्थान और उनके भंग घटित कर लेना चाहिए । अर्थात् द्वीन्द्रिय की तरह ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी प्रकृतिक उदयस्थान तथा उनमें से प्रत्येक के भंग समझना चाहिए, लेकिन इतनी विशेषता कर लेना चाहिए कि द्वीन्द्रिय जाति के स्थान पर त्रीन्द्रिय के लिए त्रीन्द्रिय जाति और चतुरिन्द्रिय के लिए चतुरिन्द्रिय जाति का उल्लेख कर लेवें ।

कुल मिलाकर विकलत्रिकों के 66 भंग होते हैं ।

तिर्यंच पंचेन्द्रियों के उदयस्थान

तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं ।

इन छह उदयस्थानों में से 21 प्रकृतिक उदयस्थान नामकर्म की बारह ध्रुवोदया प्रकृतियों के साथ तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त में से कोई एक, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय और अनादेय में से कोई एक, यश और अपयश में से कोई एक, इन नौ प्रकृतियों को मिलाने से बनता है । यह उदयस्थान अपान्तराल में विद्यमान तिर्यंच पंचेन्द्रिय को होता है । इसके नौ भंग होते हैं । क्योंकि पर्याप्त नामकर्म के उदय में सुभग और दुर्भग में से किसी एक का, आदेय और अनादेय में से किसी एक का तथा यश और अपयश में से किसी एक का उदय होने से 2 x 2 x 2 = 8 भंग हुए तथा अपर्याप्त नामकर्म के उदय में दुर्भग, अनादेय और अपयश इन तीन अशुभ प्रकृतियों का ही उदय होने से एक भंग होता है ।

इस प्रकार 21 प्रकृतिक उदयस्थान में कुल नौ भंग होते हैं ।

शरीरस्थ तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । उक्त 21 प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर यह 26 प्रकृतिक उदयस्थान बनता है ।

इस 26 प्रकृतिक उदयस्थान के भंग 289 होते हैं । क्योंकि पर्याप्त के छह संस्थान, छह संहनन और सुभग आदि तीन युगलों की संख्या को परस्पर गुणित करने पर 6 x 6 x 2 x 2 x 2 = 288 भंग होते हैं तथा अपर्याप्त के हुंडकसंस्थान, सेवार्त संहनन, दुर्भग, अनादेय और अपयश का ही उदय होता है अतः यह एक भंग हुआ । इस प्रकार 26 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल 289 भंग होते हैं ।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के इस छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक इस प्रकार इन दो प्रकृतियों के मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसके भङ्ग 576 होते हैं । क्योंकि पूर्व में पर्याप्त के जो 288 भङ्ग बतलाये हैं । उनको प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति से गुणित करने पर 288 x 2 = 576 होते हैं ।

उक्त 28 प्रकृतिक उदयस्थान में उच्छ्वास को मिला देने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसके भी पहले के समान 576 भंग होते हैं । अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास का उदय नहीं होता है, इसलिए उसके स्थान पर उद्योत को मिलाने पर भी 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसके भी 576 भंग होते है । इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग 576 + 576 = 1152 होते हैं ।

उक्त 29 प्रकृतिक उदयस्थान में भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के सुस्वर और दुःस्वर में से किसी एक को मिलाने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसके 1152 भंग होते हैं । क्योंकि पहले 29 प्रकृतिक स्थान के उच्छ्वास की अपेक्षा 576 भंग बतलाये हैं, उन्हें स्वरद्विक से गुणित करने पर 1152 भंग होते हैं अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के जो 29 प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है, उसमें उद्योत को मिलाने पर 30 प्रकृतिक

उदयस्थान होता है। इसके पहले की तरह 576 भंग होते हैं। इस प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग 1728 प्राप्त होते हैं।

स्वर सहित 30 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत नाम को मिला देने पर 31 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके कुल भंग 1152 होते हैं। क्योंकि स्वर प्रकृति सहित 30 प्रकृतिक उदयस्थान के जो 1152 भंग कहे हैं, वे ही यहाँ प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय के छह उदयस्थान और उनके कुल भंग 9 + 289 + 576 + 1152 + 1728 + 1152 = 4906 होते हैं।

अब वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा बंधस्थान और उनके भंगों को बतालाते हैं।

वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं।

पहले जो तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 21 प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है, उसमें वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, समचतुरस्त्र संस्थान, उपघात और प्रत्येक इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस 25 प्रकृतिक उदयस्थान में सुभग और दुर्भग में से किसी एक का, आदेय और अनादेय में से किसी एक का तथा यश और अपयश में से किसी एक का उदय होने के कारण 2 x 2 x 2 = 8 भङ्ग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियों को 25 प्रकृतिक उदयस्थान में मिला देने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते हैं।

उक्त 27 प्रकृतिक उदयस्थान में प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास प्रकृति को मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आठ भंग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के यदि उद्योत का उदय हो तो भी 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यहाँ भी आठ भंग होते हैं। इस प्रकार 28 प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग होते हैं।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 28 प्रकृतियों में सुस्वर के मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 28 प्रकृतियों में उद्योत को मिलाने पर भी 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भंग होते हैं। इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल सोलह भंग होते हैं।

अनन्तर सुस्वर सहित 29 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिलाने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भंग होते हैं।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर को करने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के कुल उदयस्थान 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक और उनके कुल भंग 8 + 8 + 16 + 16 + 8 = 56 होते हैं। इन 56 भंगों को पहले के सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 4906 भंगों में मिलाने पर सब तिर्यंचों के कुल उदयस्थानों के 4962 भंग होते हैं।

मनुष्य गति की अपेक्षा उदयस्थान व भंग

सामान्य मनुष्य–सामान्य मनुष्यों के 21, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं। ये सब उदयस्थान तिर्यंच पंचेन्द्रियों के पूर्व में जिस प्रकार कथन कर आये हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के भी समझना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यों को तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का उदय कहना चाहिए और 29 व 30 प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत रहित कहना चाहिए, क्योंकि वैक्रिय और आहारक संयतों को छोड़कर शेष मनुष्यों के उद्योत का उदय नहीं होता है। इसलिए तिर्यंचों के जो 29 प्रकृतिक उदयस्थान में 1152 भंग कहे उनके स्थान पर मनुष्यों के कुल 576 भंग होते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचों के जो 30 प्रकृतिक उदयस्थान में 1728 भंग कहे, उनके स्थान पर मनुष्यों के कुल 1152 भंग प्राप्त होंगे।

इस प्रकार सामान्य मनुष्यों के पूर्वोक्त पाँच उदयस्थानों के कुल 9 + 289 + 576 + 576 + 1152 = 2602 भंग होते हैं।

वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्य–वैक्रिय शरीर को करने वाले मनुष्यों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं। बारह

ध्रुवोदय प्रकृतियों के साथ मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, उपघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय और अनादेय में से कोई एक तथा यश और अपयश में से कोई एक, इन तेरह प्रकृतियों को मिलाने पर 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ सुभग और दुर्भग का, आदेय और अनादेय का तथा यश और अपयश का उदय विकल्प से होता है। अतः 2 x 2 x 2 = 8 आठ भंग होते हैं। वैक्रिय शरीर को करने वाले देशविरत और संयतों के शुभ प्रकृतियों का उदय होता है।

उक्त 25 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी 25 प्रकृतिक उदयस्थान की तरह आठ भंग होते हैं।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास के मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं। अथवा उत्तर वैक्रिय शरीर को करने वाले संयतों के शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त 27 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। संयत जीवों के दुर्भग, अनादेय और अपयश इन तीन अशुभ प्रकृतियों का उदय न होने से इसका एक ही भंग होता है। इस प्रकार 28 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल नौ भंग होते हैं।

28 प्रकृतिक उदयस्थान में सुस्वर के मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं। अथवा संयतों के स्वर के स्थान पर उद्योत को मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका एक ही भंग होता है। इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल 9 भंग होते हैं।

सुस्वर सहित 29 प्रकृतिक उदयस्थान में संयतों के उद्योत नामकर्म को मिलाने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका सिर्फ एक भंग होता है।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते हैं और इन उदयस्थानों के क्रमशः 8 + 8 + 9 + 9 + 1 = कुल 35 भंग होते हैं।

आहारक संयत – आहारक संयतों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं ।

पहले मनुष्यगति के उदययोग्य 21 प्रकृतियाँ बतलाई गई हैं, उनमें आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने तथा मनुष्यानुपूर्वी को कम करने पर 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । आहारक शरीर के समय प्रशस्त प्रकृतियों का ही उदय होता है, क्योंकि आहारक संयतों के अप्रशस्त प्रकृतियों–दुर्भग, दुस्वर और अपयश प्रकृति का उदय नहीं होता है । इसलिए यहाँ एक ही भंग होता है ।

अनन्तर उक्त 25 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों के मिला देने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी एक ही भङ्ग होता है ।

27 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास नाम को मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक ही भंग होता है । अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त 27 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक भंग होता है । इस प्रकार 28 प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग हुए ।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 28 प्रकृतिक उदयस्थान में सुस्वर के मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका एक भंग है । अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के सुस्वर के स्थान पर उद्योत नाम को मिलाने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक भंग है । इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग होते हैं ।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वरसहित 29 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिलाने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक भंग होता है ।

इस प्रकार आहारक संयतों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं और इन पाँच उदयस्थानों के क्रमशः 1 + 1 + 2 + 2 +1 = 7 भंग होते हैं ।

केवलज्ञानी–केवली जीवों के 20, 21, 26, 27, 18, 29, 30, 31, 9 और 8 प्रकृतिक ये दस उदयस्थान होते हैं ।

नामकर्म की बारह ध्रुवोदया प्रकृतियों में मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश इन आठ प्रकृतियों के मिलाने से 20 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका एक भंग होता है । यह उदयस्थान समुद्घातगत अतीर्थ केवली के कार्मण काययोग के समय होता है ।

उक्त 20 प्रकृतिक उदयस्थान में तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर 21 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह उदयस्थान समुद्घातगत तीर्थंकर केवली के कार्मणकाययोग के समय होता है । इसका भी एक भंग है ।

20 प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रऋषभनाराच संहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियों के मिलाने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान हौता है । यह अतीर्थंकर केवली के औदारिकमिश्र काययोग के समय होता है । इसके छह संस्थानों की अपेक्षा छह भंग होते हैं ।

26 प्रकृतिक उदयस्थान में तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह स्थान तीर्थंकर केवली के औदारिक मिश्र काययोग के समय होता है । इस उदयस्थान में समचतुरस्त्र संस्थान का ही उदय होने से एक ही भंग होता है ।

पूर्वोक्त 26 प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक तथा सुस्वर और दुःस्वर में से कोई एक, इन चार प्रकृतियों के मिलाने से 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह स्थान अतीर्थंकर सयोगि केवली के औदारिक काययोग के समय होता है । यहाँ छह संस्थान, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति तथा सुस्वर और दुस्वर की अपेक्षा 6 x 2 x 2 = 24 भंग होते हैं ।

30 प्रकृतिक उदयस्थान में तीर्थंकर प्रकृतिक को मिला देने पर 31 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह तीर्थंकर सयोगिकेवली के औदारिक काययोग के समय होता है तथा तीर्थंकर केवली जब वाक्योग का निरोध करते हैं तब उनके स्वर का उदय नहीं रहता है, जिससे पूर्वोक्त 31 प्रकृतिक उदयस्थान में से एक प्रकृति को निकाल देने पर तीर्थंकर केवली के 30

प्रकृतिक उदयस्थान होता है । जब उच्छ्वास का निरोध करते हैं तब उच्छ्वास का उदय नहीं रहता, अतः उच्छ्वास को घटा देने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । किन्तु अतीर्थंकर केवली के तीर्थंकर प्रकृतिक का उदय नहीं होता है अतः पूर्वोक्त 30 और 29 प्रकृतिक उदयस्थानों से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर अतीर्थंकर केवली के वचनयोग का निरोध होने पर 29 प्रकृतिक और उच्छ्वास का निरोध होने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । अतीर्थंकर केवली के इन दोनों उदयस्थानों में छह संस्थान और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति, इन दोनों की अपेक्षा 12 भंग होते हैं । किन्तु वे सामान्य मनुष्यों के उदयस्थानों में सम्भव होने से उनकी अलग से गिनती नहीं की है ।

9 प्रकृतिक उदयस्थान में मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश और तीर्थंकर, इन नौ प्रकृतियों का उदय होता है । यह नौ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थंकर केवली के अयोगिकेवली गुणस्थानक में प्राप्त होता है । इस उदयस्थान में से तीर्थंकर प्रकृति को घटा देने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह अयोगि केवली गुणस्थानक में अतीर्थंकर केवली के होता है ।

यहाँ केवली के उदयस्थानों में 20, 21, 27, 29, 30, 31, 9 और 8 इन आठ उदयस्थानों का एक-एक विशेष भंग होता है । अतः आठ भंग हुए । इनमें से 20 प्रकृतिक और 8 प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानों के दो भंग अतीर्थंकर केवली के होते हैं तथा शेष छह भंग तीर्थंकर केवली के होते हैं ।

इस प्रकार सब मनुष्यों के उदयस्थान सम्बन्धी कुल भंग 2602 + 35 + 7 + 8 = 2652 होते हैं ।

देवों के उदयस्थान और उनके भंग

देवों के 21, 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं ।

नामकर्म की ध्रुवोदया बारह प्रकृतियों में देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय और अनादेय में से कोई एक तथा यश और अपयश में से कोई एक, इन नौ प्रकृतियों के मिला देने पर 21 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । देवों के जो

दुर्भग, अनादेय और अपयश का उदय कहा है, व पिशाच आदि देवों की अपेक्षा समझना चाहिए। यहाँ सुभग और दुर्भग में से किसी एक, आदेय और अनादेय में से एक और यश और अपयश में से किसी एक का उदय होने से, इनकी अपेक्षा कुल 2 x 2 x 2 = 8 भङ्ग होते हैं।

इस 21 प्रकृतिक उदयस्थान में वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, उपघात, प्रत्येक और समचतुरस्त्र संस्थान, इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने और देवगत्यानुपूर्वी को निकाल देने पर शरीरस्थ देव के 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते हैं।

अनन्तर 25 प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवों के 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वानुसार आठ भंग होते हैं। देवों के अप्रशस्त विहायोगति का उदय नहीं होने से तन्निमित्तक भंग नहीं कहे हैं।

अनन्तर 27 प्रकृतिक उदयस्थान में प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवों के उच्छ्वास को मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त आठ भंग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवों के पूर्वोक्त 27 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं। इस प्रकार 28 प्रकृतिक उदयस्थान में कुल 16 भंग होते हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 28 प्रकृतिक उदयस्थान में सुस्वर को मिला देने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग पूर्ववत् जानना चाहिए। देवों के दुःस्वर प्रकृति का उदय नहीं होता है, अतः तन्निमित्तक भंग यहाँ नहीं कहे हैं। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित 28 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत नाम को मिला देने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। देवों के उद्योत नाम का उदय उत्तर विक्रिया करने के समय होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भंग होते हैं। इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग 16 हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवों के सुस्वर सहित 29 प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत को मिला देने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं।

इस प्रकार देवों के 21, 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं तथा उनमें क्रमशः 8 + 8 + 8 + 16 + 16 + 8 = 64 भंग होते हैं ।

नारकों के उदयस्थान और उनके भंग

नारकों के 21, 25, 27, 28 और 29 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं । यहाँ ध्रुवोदया बारह प्रकृतियों के साथ नरकगति, नरकानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और अपयश इन नौ प्रकृतियों को मिला देने पर 21 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । नारकों के सब अप्रशस्त प्रकृतियों का उदय है, अतः यहाँ एक भंग होता है ।

अनन्तर शरीरस्थ नारक के वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, हुंडक-संस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने और नरकानुपूर्वी के निकाल देने पर 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी एक भंग होता है ।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के 25 प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और अप्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियों को मिला देने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक भंग होता है ।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के 27 प्रकृतिक उदयस्थान में उच्छ्वास को मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी एक ही भंग होता है ।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के 28 प्रकृतिक उदयस्थान में दुःस्वर को मिला देने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसका भी एक भंग है ।

इस प्रकार नारकों के 21, 25, 27, 28 और 29 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं और इन पाँचों का एक-एक भंग होने से कुल पाँच भंग होते हैं । अब तक नामकर्म के एकेन्द्रिय से लेकर नारकों तक के जो उदयस्थान बताये गये हैं उनके कुल भंग 42 + 66 + 4962 + 2652 + 64 + 5 = 7791 होते हैं ।

प्रत्येक उदयस्थान के भंग

इक्क बिआलिक्कारस तित्तीसा छस्सयाणि तित्तीसा ।
बारस सत्तरस-सयाण-हिगाणि बिपंचसीईहिं ।।29।।
अउणत्तीसिक्कारस, सयाणिहिअ सतरसपंचसट्ठीहिं ।
इक्किक्कगं च वीसा, दट्ठुदयंतेसु उदयविही ।।30।।

–: शब्दार्थ :–

इक्क=एक,,	**अउणत्तीसिक्कारस सयाणिहिअ**= उनतीस सौ और ग्यारह सौ अधिक,
बिआलिक्कारस=बयालीस, ग्यारह,	**सतरसपंचसट्ठीहिं**=सत्रह और पैंसठ,
तित्तीसा=तैंतीस,	**इक्केक्कगं**=एक-एक,
छस्सयाणि=छह सौ,	**वीसादट्ठुदयंतेसु**=बीस प्रकृति के उदयस्थान से आठ प्रकृति के उदयस्थान तक,,
तित्तीसा=तैंतीस,	**उदयविही**=उदय के भंग ।
बारससत्तरस सयाणहिगाणि=बारह सौ और सत्रह सौ अधिक,	
बिपंचसीईहिं=दो और पचासी	

गाथार्थ :–बीस प्रकृति के उदयस्थान से लेकर आठ प्रकृति के उदयस्थान पर्यन्त अनुक्रम से 1, 42, 11, 33, 600, 33, 1202, 1785, 2917, 1165, 1 और 1 भंग होते हैं ।

विवेचन :–बीस प्रकृतिक उदयस्थान का एक भंग है । वह अतीर्थंकर केवली के होता है । 21 प्रकृतिक उदयस्थान के 42 भंग हैं । वे इस प्रकार समझना चाहिए–एकेन्द्रियों की अपेक्षा 5, विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 9, तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 9, मनुष्यों की अपेक्षा 9, तीर्थंकर की अपेक्षा 1, देवों की अपेक्षा 8 और नारकों की अपेक्षा 1 । इन सब का जोड़ 5 + 9 + 9 + 9 + 1 + 8 + 1 = 42 होता है ।

24 प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियों को होता है, अन्य को नहीं और 24 प्रकृतिक उदयस्थान में एकेन्द्रिय की अपेक्षा 11 भंग प्राप्त होते हैं । अतः 24 प्रकृतिक उदयस्थान में 11 भंग होते हैं ।

25 प्रकृतिक उदयस्थान के एकेन्द्रियों की अपेक्षा 7, वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 8, वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यों की अपेक्षा 8, आहारक संयतों की अपेक्षा 1, देवों की अपेक्षा 8 और नारकों की अपेक्षा 1 भंग बतलाये हैं। इन सबका जोड़ 7 + 8 + 8 + 1 + 8 + 1 = 33 होता है। अतः 25 प्रकृतिक उदयस्थान के 33 भंग होते हैं।

26 प्रकृतिक उदयस्थान के भंग 600 हैं। इनमें एकेन्द्रिय की अपेक्षा 13, विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 9, प्राकृत तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 289 और प्राकृत मनुष्यों की अपेक्षा 289 भंग होते हैं। इन सबका जोड़ 13 + 9 + 289 + 289 = 600 होता है। ये 600 भंग 26 प्रकृतिक उदयस्थान के हैं।

27 प्रकृतिक उदयस्थान के एकेन्द्रियों की अपेक्षा 6, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 8, वैक्रिय मनुष्यों की अपेक्षा 8, आहारक संयतों की अपेक्षा 1, केवलियों की अपेक्षा 1, देवों की अपेक्षा 8 और नारकों की अपेक्षा 1 भंग पहले बतलाये हैं। इनका कुल जोड़ 33 होता है। अतः 27 प्रकृतिक उदयस्थान के 33 भंग होते हैं।

28 प्रकृतिक उदयस्थान के विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 6, प्राकृत तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 576, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 16, प्राकृत मनुष्यों की अपेक्षा 576, वैक्रिय मनुष्यों की अपेक्षा 9, आहारकों की अपेक्षा 2, देवों की अपेक्षा 16 और नारकों की अपेक्षा 1 भंग बतलाए हैं। इनका कुल जोड़ 6 + 576 + 16 + 576 + 9 + 2 + 16 + 1 = 1202 होता है। अतः 28 प्रकृतिक उदयस्थान के 1202 भंग होते हैं।

29 प्रकृतिक उदयस्थान के भंग 1785 हैं। इसमें विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 12, तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 1152, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 16, मनुष्यों की अपेक्षा 576, वैक्रिय मनुष्यों की अपेक्षा 9, आहारक संयतों की अपेक्षा 2, तीर्थंकर की अपेक्षा 1, देवों की अपेक्षा 16 और नारकों की अपेक्षा 1 भंग है। इनका जोड़ 12 + 1152 + 16 + 576 + 9 + 2 + 1 + 16 + 1 = 1785 होता है। अतः 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग 1785 प्राप्त होते हैं।

30 प्रकृतिक उदयस्थान में विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 18, तिर्यंच पंचेन्द्रियों

की अपेक्षा 1728, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 8, मनुष्यों की अपेक्षा 1152, वैक्रिय मनुष्यों की अपेक्षा 1, आहारक संयतों की अपेक्षा 1, केवलियों की अपेक्षा 1 और देवों की अपेक्षा 8 भङ्ग पूर्व में बतला आये हैं। इनका जोड़ 18 + 1728 + 8 + 1152 + 1 + 1 +1 + 8 = 2917 होता है। अतः 30 प्रकृतिक उदयस्थान के 2917 भंग होते हैं।

31 प्रकृतिक उदयस्थान में विकलेन्द्रियों की अपेक्षा 12, तिर्यंच पंचेन्द्रियों की अपेक्षा 1152, तीर्थंकर की अपेक्षा 1 भङ्ग पूर्व में बतलाया है, और इनका कुल जोड़ 1165 है, अतः 31 प्रकृतिक उदयस्थान के 1165 भङ्ग कहे हैं।

9 प्रकृतिक उदयस्थान का तीर्थंकर की अपेक्षा 1 भंग होता है और 8 प्रकृतिक उदयस्थान का अतीर्थंकर की अपेक्षा 1 भंग होता है। इन दोनों को पूर्व में बतलाया जा चुका है। अतः 9 प्रकृतिक और 8 प्रकृतिक उदयस्थान का 1-1 भंग होता है।

इस प्रकार 20 प्रकृतिक आदि बारह उदयस्थानों के 1 + 42 + 11 + 33 + 600 + 33 + 1202 + 1785 + 2917 + 1165 + 1 + 1 = 7791 भंग होते हैं।

नामकर्म के उदयस्थानों के भंग व अन्य विशेषताओं सम्बन्धी विवरण इस प्रकार समझना चाहिए।

उदयस्थान	20	21	24	25	26	27	28	29	30	31	9	8	भंग संख्या
सर्वभंग	1	42	11	13	600	33	1202	1785	2917	1165	1	1	7791
एकेन्द्रिय	0	5	11	7	13	6	0	0	0	0	0	0	42
विकलेन्द्रिय	0	9	0	0	9	0	6	12	18	12	0	0	66
पंचे. तिर्यंच	0	9	0	0	289	0	576	1152	1728	1152	0	0	4906
मनुष्य	0	9	0	0	289	0	576	576	1152	0	0	0	2602
वैक्रिय तिर्यंच	0	0	0	8	0	8	16	16	8	0	0	0	56
वैक्रिय मनुष्य	0	0	0	8	0	8	8	8	0	0	0	0	32
देव	0	8	0	8	0	8	16	16	8	0	0	0	64
तीर्थंकर	0	1	0	0	0	1	0	1	1	1	1	0	6
केवली	1	0	0	0	(म.)6	0	(म.)6	(म.)6	(म.)6	0	0	1	2
वैक्रिय यति	0	0	0	0	0	0	1	1	1	0	0	0	3
आहारक	0	0	0	1	0	1	2	2	1	0	0	0	7
नारक	0	1	0	1	0	1	1	1	0	0	0	0	5
												योग	7791

नामकर्म के सत्तास्थान

ति दुनउई गुणनउई, अडसी छलसी असीइ गुणसीई ।
अट्ठ य छप्पन्नत्तरि, नव अट्ठ य नामसंताणि ।।31।।

–: शब्दार्थ :–

ति दुनउई=तेरानवै, बानवै,	**अट्ठ य छप्पन्नत्तरी**=अठहत्तर,
गुणनउई=नवासी,	छियत्तर, पचहत्तर,
अडसी छलसी=अठासी, छियासी,	**नव**=नौ,
असीइ=अस्सी,	**अट्ठ**=आठ,
गुणसीई=उन्यासी,	**य**=और,
	नामसंताणि=नामकर्म के सत्तास्थान ।

गाथार्थ :–नामकर्म के 93, 92, 89, 88, 86, 80, 79, 78, 76, 75, 9 और 8 प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं ।

विवेचन :–पहला सत्तास्थान 93 प्रकृतियों का बतलाया है । क्योंकि नामकर्म की सब उत्तर प्रकृतियाँ 93 हैं, अतः 93 प्रकृतिक सत्तास्थान में सब प्रकृतियों की सत्ता स्वीकार की गई है । इन 93 प्रकृतियों में से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर 92 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । 93 प्रकृतिक सत्तास्थान में से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन और आहारक बंधन, इन चार प्रकृतियों को कम कर देने पर 89 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इस 89 प्रकृतिक सत्तास्थान में से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर 88 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

उक्त 88 प्रकृतिक सत्तास्थान में से नरकगति और नरकानुपूर्वी की अथवा देवगति और देवानुपूर्वी की उद्‌वेलना हो जाने पर 86 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले 80 प्रकृतिक सत्तास्थान वाले जीव के नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय संघातन और वैक्रिय बंधन इन छह प्रकृतियों का बंध होने पर 86 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इस 86 प्रकृतिक सत्तास्थान में से

नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क, इन छह प्रकृतियों की उद्वेलना हो जाने पर 80 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा देवगति, देवानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन छह प्रकृतियों की उद्वेलना हो जाने पर 80 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसमें से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वेलना होने पर 78 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त सात सत्तास्थान अक्षपकों की अपेक्षा कहे हैं। अब क्षपकों की अपेक्षा सत्तास्थानों को बतलाते हैं।

जब क्षपक जीव 93 प्रकृतियों में से नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, जातिचतुष्क (एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति), स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन तेरह प्रकृतियों का क्षय कर देते हैं तब उनके 80 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। जब 92 प्रकृतियों में से इन तेरह प्रकृतियों का क्षय करते हैं, तब 79 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और जब 89 प्रकृतियों में से इन तेरह प्रकृतियों का क्षय करते हैं तब 76 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा जब 88 प्रकृतियों में से इन तेरह प्रकृतियों का क्षय कर देते हैं, तब 75 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

अब रहे 9 और 8 प्रकृतिक सत्तास्थान। सो ये दोनों अयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय में होते हैं। नौ प्रकृतिक सत्तास्थान में मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश और तीर्थंकर, ये नौ प्रकृतियाँ हैं और इनमें से तीर्थंकर प्रकृतिक को कम कर देने पर 8 प्रकृतिक, सत्तास्थान होता है।

नामकर्म के बंधस्थान आदि के परस्पर संवेद्य

अट्ठ य बारस बारस, बंधोदय संतपयडिठाणाणि।
ओहेणाएसेण य, जत्थ जहासंभवं विभजे ॥32॥

–: शब्दार्थ :–

अट्ठ=आठ,,
य=और,
बारस-बारस=बारह, बारह,
बंधोदयसंतपयडिठाणाणि=बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियों के स्थान,
ओहेण=ओघ, सामान्य से,

आएसेण=विशेष से, **य**=और, **जत्थ**=जहाँ,	**जहासंभवं**=यथासंभव, **विभजे**=विकल्प करना चाहिए ।

गाथार्थ :–नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थान क्रम से आठ, बारह और बारह होते हैं । उनके ओघ सामान्य और आदेश विशेष से जहाँ जितने स्थान सम्भव हैं, उतने विकल्प करना चाहिए ।

विवेचन :–संवेद्य भंगों को जानने के दो उपाय हैं-1. ओघ और 2. आदेश । ओघ सामान्य का पर्यायवाची है और आदेश विशेष का । यहाँ ओघ का यह अर्थ हुआ कि जिस प्ररूपणा में केवल यह बतलाया जाए कि अमुक बंधस्थान का बंध करने वाले जीव के अमुक उदयस्थान और अमुक सत्तास्थान होते हैं, इसको ओघ प्ररूपण कहते हैं । आदेश प्ररूपण में मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानक और गति आदि मार्गणाओं में बंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानों का विचार किया जाता है ।

ओघ से संवेद्य भङ्गों का विचार

नव पणगोदय संता, तेवीसे पन्नवीस छव्वीसे ।
अट्ठ चउरट्ठवीसे, नव सगि गुणतीस तीसम्मि ।।33।।

–: शब्दार्थ :–

नव पणग=नौ और पांच, **उदयसंता**=उदय और सत्ता स्थान, **तेवीसे**=तेईस, **पन्नवीस छव्वीसे**=पच्चीस और छब्बीस के बंधस्थान में, **अट्ठ**=आठ, **चउर**=चार,	**अट्ठवीसे**=अट्ठाईस के बंधस्थान में, **नव**=नौ, **सगि**=सात, **गुणतीस तीसम्मि**=उनतीस और तीस प्रकृतिक बंधस्थान में ।

एगेगमेगतीसे, एगे एगुदय अट्ठ संतम्मि ।
उवरयबंधे दस दस, वेअगसंतम्मि ठाणाणि ।।34।।

–: शब्दार्थ :–

एगेग=एक, एक,
मेगतीसे=इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में,
एगे=एक के बंधस्थान में,
एगुदय=एक उदयस्थान,
अट्ठ संतम्मि=आठ सत्तास्थान,
उवरयबंधे=बंध के अभाव में,
दस दस=दस-दस,
वेअग=उदय में,
संतम्मि=सत्ता में,
ठाणाणि=स्थान ।

भावार्थ :–तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ-नौ उदयस्थान और पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं । अट्ठाईस के बंधस्थान में आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं । उनतीस एवं तीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ उदयस्थान तथा सात सत्तास्थान होते हैं ।

इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान व एक सत्तास्थान होता है । एक प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं । बंध के अभाव में उदय और सत्ता के दस-दस स्थान जानना चाहिए ।

विवेचन :–तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानों में से प्रत्येक में नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं । तेईस प्रकृतिक बंधस्थान में अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियों का बंध होता है और इसको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य बाँधते हैं । इन तेईस प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के सामान्य से 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते हैं ।

इन उदयस्थानों को इस प्रकार घटित करना चाहिए– जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य बांधते हैं । इन तेईस प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के सामान्य से 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते हैं । इन उदयस्थानों को इस प्रकार घटित करना चाहिये-जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य तेईस प्रकृतियों का बंध कर रहा है, उसको भव

के अपान्तराल में तो 21 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । क्योंकि 21 प्रकृतियों के उदय में अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य 23 प्रकृतियों का बंध सम्भव है ।

24 प्रकृतिक उदयस्थान अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियों को होता है । क्योंकि वह उदयस्थान एकेन्द्रियों के सिवाय अन्यत्र नहीं पाया जाता है । 25 प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों के होता है । 26 प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को होता है । 27 प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियों और वैक्रिय शरीर को करने वाले तथा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । 28, 29, 30 प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के होते हैं तथा 31 प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के होता है । उक्त उदयस्थान वाले जीवों के सिवाय शेष जीव 23 प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं । अतः 23 प्रकृतिक बंधस्थान में उक्त 21 आदि प्रकृतिक 9 उदयस्थान होते हैं ।

23 प्रकृतियों को बाँधने वाले जीवों के पाँच सत्तास्थान हैं । उनमें ग्रहण की गई प्रकृतियों की संख्या इस प्रकार है-92, 88, 86, 80 और 78 । इनका स्पष्टीकरण यह है-21 प्रकृतियों के उदय वाले उक्त जीवों के तो सब सत्तास्थान पाये जाते हैं, केवल मनुष्यों के 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है, क्योंकि मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वेलना करने पर 78 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । किन्तु मनुष्यों के इन दो प्रकृतियों की उद्वेलना सम्भव नहीं है ।

24 प्रकृतिक उदयस्थान के समय भी पाँचों सत्तास्थान होते हैं । लेकिन वैक्रिय शरीर को करने वाले वायुकायिक जीवों के 24 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए 80 और 78 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नहीं होते हैं । क्योंकि इनके वैक्रियषट्क और मनुष्यद्विक की सत्ता नियम से है । ये जीव वैक्रिय शरीर का तो साक्षात् ही अनुभव कर रहे हैं । अतः इनके वैक्रियद्विक की उद्वेलना सम्भव नहीं है और इसके अभाव में देवद्विक और नरकद्विक की भी उद्वेलना सम्भव नहीं है, क्योंकि वैक्रियषट्क की उद्वेलना एक साथ ही होती है, यह

स्वाभाविक नियम है और वैक्रियषट्क की उद्वेलना हो जाने पर ही मनुष्यद्विक की उद्वेलना होती है, अन्यथा नहीं होती है ।

वैक्रियषट्क की उद्वेलना करने के अनन्तर ही यह जीव मनुष्यद्विक की उद्वेलना करता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि वैक्रिय शरीर को करने वाले वायुकायिक जीवों के 24 प्रकृतिक उदयस्थान रहते 92, 88 और 86 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान ही होते हैं किन्तु 80 और 78 प्रकृति वाले सत्तास्थान नहीं होते हैं ।

25 प्रकृतिक उदयस्थान के होते हुए भी उक्त पाँच सत्तास्थान होते हैं । किन्तु उनमें से 78 प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नहीं करने वाले वायुकायिक जीवों के तथा अग्निकायिक जीवों के ही होते हैं, अन्य को नहीं, क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को छोड़कर अन्य सब पर्याप्त जीव नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बंध करते हैं–

26 प्रकृतिक उदयस्थान में भी उक्त पाँच सत्तास्थान होते हैं । किन्तु यह विशेष है कि 78 प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नहीं करने वाले वायुकायिक जीवों को तथा अग्निकायिक जीवों को होता है तथा जिन पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में उक्त अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न हुए हैं, उनको भी जब तक मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बंध नहीं हुआ है, तब तक 78 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है ।

27 प्रकृतिक उदयस्थान में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि 27 प्रकृतिक उदयस्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को छोड़कर पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय और वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । परन्तु इनके मनुष्यद्विक की सत्ता होने से 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं पाया जाता है ।

28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक उदयस्थानों में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान नियम से होते हैं । क्योंकि 28, 29 और 30 प्रकृतियों का उदय पर्याप्त विकलेन्द्रियों, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को होता है और 31 प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त विकलेन्द्रियों और पंचेन्द्रिय

तिर्यंचों को होता है । परन्तु इन जीवों को मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता नियम से पाई जाती है । अतः उन उदयस्थानों में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता । इस प्रकार 23 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के यथायोग्य नौ उदयस्थानों की अपेक्षा चालीस सत्तास्थान होते हैं ।

25 और 26 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के भी उदयस्थान और सत्तास्थान इसी प्रकार जानने चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि पर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य 25 और 26 प्रकृतियों का बंध करने वाले देवों के 21, 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक उदयस्थानों में 92 और 88 प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान ही प्राप्त होते हैं । अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के योग्य 25 प्रकृतियों का बंध देव नहीं करते हैं । क्योंकि उक्त अपर्याप्त जीवों में देव उत्पन्न नहीं होते हैं । अतः सामान्य से 25 और 26 प्रकृतिक, इनमें से प्रत्येक बंधस्थान में नौ उदयस्थानों की अपेक्षा 40 सत्तास्थान होते हैं ।

23, 25 और 26 प्रकृतिक बंधस्थानों को बतलाने के बाद अब 28 प्रकृतिक बंधस्थान के उदय व सत्तास्थान बतलाते हैं । आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं । आठ उदयस्थान इस प्रकार की संख्या वाले हैं- 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक । 28 प्रकृतिक बंधस्थान के दो भेद हैं-1. देवगति-प्रायोग्य, 2. नरकगति-प्रायोग्य । इनमें से देवगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बन्ध होते समय नाना जीवों की अपेक्षा उपर्युक्त आठों ही उदयस्थान होते हैं और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध होते समय 30 और 31 प्रकृतिक, ये दो ही उदयस्थान होते हैं ।

उनमें से देवगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के 21 प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्यों के भव के अपान्तराल में रहते समय होता है । 25 प्रकृतिक उदयस्थान आहारक संयतों को और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचों को होता है । 26 प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि शरीरस्थ पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । 27 प्रकृतिक उदयस्थान आहारक संयतों को, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । 28

और 29 प्रकृतिक उदयस्थान क्रम से शरीर पर्याप्ति और प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों के तथा आहारक संयत, वैक्रिय संयत और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को होते हैं। 30 प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि या मिश्रदृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को तथा आहारक संयत और वैक्रिय संयतों को होता है। 31 प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होता है।

नरकगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध होते समय 30 प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों को होता है तथा 31 प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को होता है।

अब 28 प्रकृतिक बंधस्थान में सत्तास्थानों की अपेक्षा विचार करते हैं। 28 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के सामान्य से 92, 89, 88 और 86 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। उसमें भी जिसके 21 प्रकृतियों का उदय हो और देवगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध होता हो, उसके 92 और 88 ये दो ही सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि यहाँ तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती है। यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता मानें तो देवगति के योग्य 28 प्रकृतिक बंधस्थान नहीं बनता है।

25 प्रकृतियों का उदय रहते हुए 28 प्रकृतियों का बंध आहारक संयत और वैक्रिय शरीर को करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के होता है। अतः यहाँ भी सामान्य से 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो ही सत्तास्थान होते हैं। इनमें से आहारक संयतों को आहारकचतुष्क की सत्ता नियम से होती है, जिससे इनके 92 प्रकृतियों की ही सत्ता होगी। शेष जीवों के आहारकचतुष्क की सत्ता हो भी और न भी हो, जिससे इनके दोनों सत्तास्थान बन जाते हैं।

26, 27, 28 और 29 प्रकृतियों के उदय में भी ये दो 92 और 88 प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।

30 प्रकृतिक उदयस्थान में देवगति या नरकगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के सामान्य से 92, 89, 88 और 86 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इनमें से 92 और 88 प्रकृतिक सत्तास्थानों का विचार तो

पूर्ववत् है और शेष दो सत्तास्थानों के बारे में यह विशेषता जानना चाहिए कि किसी एक मनुष्य ने नरकायु का बंध करने के बाद वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया, अनन्तर मनुष्य पर्याय के अन्त में वह सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यादृष्टि हुआ, तब उसके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में तीर्थंकर प्रकृति का बंध न होकर 28 प्रकृतियों का ही बंध होता है और सत्ता में 89 प्रकृतियाँ ही प्राप्त होती हैं, जिससे यहाँ 89 प्रकृतियों की सत्ता बतलाई है ।

93 प्रकृतियों में से तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन 13 प्रकृतियों के बिना 80 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इस प्रकार 80 प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य होकर सब पर्याप्तियों की पूर्णता को प्राप्त हुआ और अनन्तर यदि वह विशुद्ध परिणाम वाला हुआ तो उसने देवगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध किया और इस प्रकार देवद्विक और वैक्रियचतुष्क की सत्ता प्राप्त की, अतः उसके 28 प्रकृतियों के बंध के समय 86 प्रकृतियों की सत्ता होती है और यदि वह जीव संक्लेश परिणाम वाला हुआ तो उसके नरकगति योग्य 28 प्रकृतियों का बंध होता है और इस प्रकार नरकद्विक और वैक्रियचतुष्क की सत्ता प्राप्त हो जाने के कारण भी 86 प्रकृतिक सत्तास्थान होता है । इस प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान में 28 प्रकृतियों का बंध होते समय 92, 86, 89 और 86 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं ।

31 प्रकृतिक उदयस्थान में 92, 88 और 86 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । यहाँ 89 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है । क्योंकि जिसके 28 प्रकृतियों का बंध और 31 प्रकृतियों का उदय है, वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही होगा और तिर्यंचों के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है, क्योंकि **तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला मनुष्य तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होता है ।** इसीलिए यहाँ 89 प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है ।

29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थानों में से प्रत्येक में 9 उदयस्थान और 7 सत्तास्थान होते हैं ।

29 प्रकृतिक बंधस्थान में 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये 9 उदयस्थान हैं तथा 93, 92, 89, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक,

ये 7 सत्तास्थान हैं । इनमें से पहले उदयस्थानों का स्पष्टीकरण करते हैं कि 21 प्रकृतियों का उदय तिर्यंच और मनुष्यों के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के और देव व नारकों को होता है । 24 प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियों को देव और नारकों के तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । 26 प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियों को तथा पर्याप्त और अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को होता है ।

27 प्रकृतियों का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियों को, देव और नारकों तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । 28 और 29 प्रकृतियों का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के तथा देव और नारकों के होता है । 30 प्रकृतियों का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को तथा उद्योत का वेदन करने वाले देवों को होता है और 31 प्रकृतियों का उदय उद्योत का वेदन करने वाले पर्याप्त विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रियों को होता है तथा देवगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के 21, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं । आहारक संयतों और वैक्रिय संयतों के 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं । वैक्रिय शरीर को करने वाले असंयत और संयतासंयत मनुष्यों के 30 के बिना 4 उदयस्थान होते हैं ।

मनुष्यों में संयतों को छोड़कर यदि अन्य मनुष्य वैक्रिय शरीर को करते हैं तो उनके उद्योत का उदय नहीं होता । अतः यहाँ 30 प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है । इस प्रकार 29 प्रकृतिक बंधस्थान में उदयस्थानों का विचार किया गया कि 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान हैं ।

अब सत्तास्थानों का विचार करते हैं । 29 प्रकृतिक बंधस्थान में 93, 92, 89, 88, 86, 80 और 78 प्रकृति वाले सात सत्तास्थान हैं । यदि विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों को 21

प्रकृतिक उदयस्थान होता है तो वहाँ 92, 88, 86, 80 और 78 ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार 24, 25 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में उक्त पाँच सत्तास्थान जानना चाहिए तथा 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, इन पाँच उदयस्थानों में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान होते हैं। इसका विचार जैसा 23 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों का किया हैं वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। मनुष्यगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के तथा मनुष्य व तिर्यंचगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले मनुष्यों के अपने-अपने योग्य उदयस्थानों में रहते हुए 78 प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार ही सत्तास्थान होते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले देव और नारकों के अपने-अपने उदयस्थानों में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं किन्तु मनुष्यगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले मिथ्यादृष्टि नारक के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहते हुए अपने पाँच उदयस्थानों में एक 89 प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि जो तीर्थंकर प्रकृति सहित हो वह यदि आहारकचतुष्क रहित होगा तो ही उसका मिथ्यात्व में जाना संभव है, क्योंकि **तीर्थंकर और आहारकचतुष्क इन दोनों की एक साथ सत्ता मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में नहीं पाये जाने का नियम है।** अतः 93 में से आहारक चतुष्क को निकाल देने पर उस नारक के 89 प्रकृतियों की ही सत्ता पाई जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य के 21 प्रकृतियों का उदय रहते हुए 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार 25, 26, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, इन छह उदयस्थानों में भी ये ही दो सत्तास्थान जानना चाहिए। किन्तु आहारक संयतों के अपने योग्य उदयस्थानों के रहते हुए 93 प्रकृतिक सत्तास्थान ही समझना चाहिए।

इस प्रकार सामान्य से 29 प्रकृतिक बंधस्थान में 21 प्रकृतियों के उदय में 7, चौबीस प्रकृतियों के उदय में 5, पच्चीस प्रकृतियों के उदय में 7, छब्बीस प्रकृतियों के उदय में 7, सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में 6, अट्ठाईस प्रकृतियों

के उदय में 6, उनतीस प्रकृतियों के उदय में 6, तीस प्रकृतियों के उदय में 6 और इकतीस प्रकृतियों के उदय में 4 सत्तास्थान होते हैं । इन सब का कुल जोड़ 7 + 5 + 7 + 7 + 6 + 6 + 6 + 6 + 4 = 54 होता है ।

अब तीस प्रकृतिक बंधस्थान का विचार करते हैं । जिस प्रकार तिर्यंचगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारकों के उदयस्थानों का विचार किया उसी प्रकार उद्योत सहित तिर्यंचगति के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध करने वाले एकेन्द्रियादिक के उदयस्थान और सत्तास्थानों का चिन्तन करना चाहिए । उसमें 30 प्रकृतियों को बाँधने वाले देवों के 21 प्रकृतिक उदयस्थान में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं तथा 21 प्रकृतियों के उदय से युक्त नारकों के 89 प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है, 93 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है । क्योंकि **तीर्थंकर और आहारक चतुष्क की सत्ता वाला जीव नारकों में उत्पन्न नहीं होता है ।**

इसी प्रकार 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक उदयस्थानों में भी समझना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि नारकों के 30 प्रकृतिक उदयस्थान नहीं है । क्योंकि 30 प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत प्रकृति के सद्भाव में पाया जाता है परन्तु नारकों के उद्योत का उदय नहीं पाया जाता है ।

इस प्रकार सामान्य से 30 प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के 21 प्रकृतियों के उदय में 7, चौबीस प्रकृतियों के उदय में 5, पच्चीस प्रकृतियों के उदय में 7, छब्बीस प्रकृतियों के उदय में 5, सत्ताईस प्रकृतियों के उदय में 6, अट्ठाईस प्रकृतियों के उदय में 6, उनतीस प्रकृतियों के उदय में 6, तीस प्रकृतियों के उदय में 6 और इकत्तीस प्रकृतियों के उदय में 4 सत्तास्थान होते हैं । जिनका कुल जोड़ 7 + 5 + 7 + 5 + 6 + 6 + 6 + 6 + 4 = 52 होता है ।

अब 31 प्रकृतिक बंधस्थान में उदयस्थान और सत्तास्थान का विचार करते हैं । 31 प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान और एक सत्तास्थान होता है । उदयस्थान 30 प्रकृतिक और सत्तास्थान 93 प्रकृतिक है । वह इस प्रकार समझना चाहिए कि तीर्थंकर और आहारक सहित देवगति योग्य 31 प्रकृतियों का बंध अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण, इन दो गुणस्थानकों में होता है । परन्तु

इनके न तो विक्रिय होती है और न आहारक समुद्घात ही होता है। इसलिए यहाँ 25 प्रकृतिक आदि उदयस्थान न होकर एक 30 प्रकृतिक उदयस्थान ही होता है। जोकि इनके आहारक और तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, इसलिए यहाँ एक 93 प्रकृतिक ही सत्तास्थान होता है। इस प्रकार 31 प्रकृतिक बंधस्थान में 30 प्रकृतिक उदयस्थान और 93 प्रकृतिक सत्तास्थान माना गया है।

अब एक प्रकृतिक बंधस्थान में उदयस्थान और सत्तास्थानों का विचार करते हैं। उदयस्थान एक है और सत्तास्थान आठ हैं। उदयस्थान 30 प्रकृतिक है और आठ सत्तास्थान 93, 92, 89, 88, 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–एक प्रकृतिक बंधस्थान में एक यश:कीर्ति प्रकृति का बंध होता है जो अपूर्वकरण गुणस्थानक के सातवें भाग से लेकर दसवें गुणस्थानक तक होता है। यह जीव अत्यन्त विशुद्ध होने के कारण वैक्रिय और आहारक समुद्घात को नहीं करता है, जिससे इसके 25 आदि प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होते किन्तु एक 30 प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है।

एक प्रकृतिक बंधस्थान में जो आठ सत्तास्थान बताये हैं, उनमें से आदि के चार 93, 92, 89 और 88 प्रकृतिक सत्तास्थान उपशमश्रेणि की अपेक्षा और अंतिम चार 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक सत्तास्थान क्षपकश्रेणि की अपेक्षा कहे हैं। परन्तु जब तक अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यंचद्विक, नरकद्विक, जातिचतुष्क, साधारण, आतप और उद्योत, इन तेरह प्रकृतियों का क्षय नहीं होता तब तक 93 आदि प्रकृतिक, प्रारम्भ के चार सत्तास्थान भी क्षपकश्रेणि में पाये जाते हैं।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बंधस्थान में एक 30 प्रकृतिक उदयस्थान तथा 93, 92, 89, 88, 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान समझना चाहिए।

अब उपरतबंध की स्थिति के उदयस्थानों और सत्तास्थानों का विचार करते हैं। बंध के अभाव में भी उदय एवं सत्ता स्थानों का विचार करने का कारण यह है कि नामकर्म का बंध दसवें गुणस्थानक तक होता है, आगे के चार गुणस्थानकों में नहीं, किन्तु उदय और सत्ता 14 वें गुणस्थानक तक होती है। फिर भी उसमें विविध दशाओं और जीवों की अपेक्षा अनेक उदयस्थान और सत्तास्थान पाये जाते हैं।

बंध के अभाव में भी दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान हैं । दस उदयस्थान 20, 21, 26, 27,28, 29, 30, 31, 9 और 8 प्रकृतिक संख्या वाले हैं तथा सत्तास्थान 93, 92, 89, 88, 80, 79, 76, 75, 9 और 8 प्रकृतिक संख्या वाले हैं ।

केवली को केवली-समुद्घात में 8 समय लगते हैं । इनमें से तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में कार्मण काययोग होता है । जिसमें पंचेन्द्रिय जाति, त्रसत्रिक, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति, मनुष्यगति और ध्रुवोदया 12 प्रकृतियाँ, इस प्रकार कुल मिलाकर 20 प्रकृतिक उदयस्थान होता है और तीर्थंकर के बिना 79 तथा तीर्थंकर और आहारक चतुष्क इन पाँच के बिना 75 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । यदि इस अवस्था में विद्यमान तीर्थंकर हुए तो उनके एक तीर्थंकर प्रकृति का उदय और सत्ता होने से 21 प्रकृतिक उदयस्थान तथा 80 तथा 76 प्रकृतिक सत्तास्थान होंगे ।

जब केवली समुद्घात के समय औदारिक मिश्र काययोग में रहते हैं तब उनके औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराच संहनन, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियों को पूर्वोक्त 20 प्रकृतियों में मिलाने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है तथा 79 और 75 प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं ।

यदि तीर्थंकर औदारिकमिश्र काययोग में हुए तो उनके तीर्थंकर प्रकृति उदय व सत्ता में मिल जाने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान तथा 80 और 76 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं ।

26 प्रकृतियों में पराघात, उच्छ्वास, शुभ और अशुभ विहायोगति में से कोई एक, तथा सुस्वर और दु:स्वर में से कोई एक, इन चार प्रकृतियों के मिला देने पर 30 प्रकृतिक उदयस्थान होता है जो औदारिक काययोग में विद्यमान सामान्य केवली तथा ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानक में प्राप्त होता है । अतएव 30 प्रकृतिक उदयस्थान में 93, 92, 89, 88, 79 और 75 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं । इनमें से आदि के चार सत्तास्थान उपशान्तमोह गुणस्थानक की अपेक्षा और अंत के दो सत्तास्थान क्षीणमोह और सयोगिकेवली की अपेक्षा बताये हैं । यदि इस 30 प्रकृतिक उदयस्थान में से

स्वर प्रकृति को निकालकर तीर्थंकर प्रकृति को मिलायें तो भी उक्त उदयस्थान प्राप्त होता है जो तीर्थंकर केवली के वचनयोग के निरोध करने पर होता है। किन्तु इसमें सत्तास्थान 80 और 76 प्रकृतिक, ये दो होते हैं। क्योंकि सामान्य केवली के जो 79 और 75 प्रकृतिक सत्तास्थान कह आये हैं उनमें तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से 80 और 76 प्रकृतिक ही सत्तास्थान प्राप्त होते हैं।

सामान्य केवली के जो 30 प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया गया है, उसमें तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने पर तीर्थंकर केवली के 31 प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उसी प्रकार 80 व 76 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि सामान्य केवली के 75 और 79 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान बतलाये हैं, उनमें तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने से 76 और 80 की संख्या होती है।

सामान्य केवली के जो 30 प्रकृतिक उदयस्थान बतलाये हैं, उसमें से वचनयोग के निरोध करने पर स्वर प्रकृति निकल जाती है, जिससे 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है अथवा तीर्थंकर केवली के जो 30 प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है उसमें से श्वासोच्छ्वास के निरोध करने पर उच्छ्वास प्रकृति के निकल जाने से 29 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इनमें से पहला उदयस्थान सामान्य केवली को और दूसरा उदयस्थान तीर्थंकर केवली को होता है। अतः पहले 29 प्रकृतिक उदयस्थान में 79 और 75 प्रकृतिक और दूसरे 29 प्रकृतिक उदयस्थान में 80 और 76 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं।

सामान्य केवली के वचनयोग के निरोध करने पर 29 प्रकृतिक उदयस्थान बताया गया है, उसमें से श्वासोच्छ्वास का निरोध करने पर उच्छ्वास प्रकृति के कम हो जाने से 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह सामान्य केवली के होता है अतः यहाँ सत्तास्थान 79 और 75 प्रकृतिक, ये दो होते हैं।

तीर्थंकर केवली के अयोगिकेवली गुणस्थानक में 9 प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उपान्त्य समय तक 80 और 76 तथा अन्तिम समय में 9 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। किन्तु सामान्य केवली की अपेक्षा अयोगि गुणस्थानक में 8 प्रकृतिक उदयस्थान होता है तथा उपान्त्य समय तक 79 व 75 और अन्तिम समय में 8 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से बंध के अभाव में दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान

होने का कथन समझना चाहिए ।

नामकर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेद्य भंगों का विवरण इस प्रकार है–

गुण स्थान	बंध स्थान 8	भंग	उदयस्थान 12		उदय भंग	सत्तास्थान 12	संवेद्यभंग
1	23	4	21		32	92,88,86,80,78	5
			24		11	92,88,86,80,78	5
			25		23	" " " "	5
			26		600	" " " "	5
			27	9	22	92,88,86,80	4
			28		1182	" " " "	4
			29		1764	92,88,86,80	4
			30		2906	" " " "	4
			31		1164	" " " "	4
							40
1	25	25	21		40	92,88,86,80,78	5
			24		11	" " " "	"
			25		31	" " " "	"
			26		600	" " " "	"
			27		30	92,88,86,80	4
			28	9	1198	" " " "	"
			29		1780	" " " "	"
			30		2914	" " " "	"
			31		1164	" " " "	"
							40
1	26	16	21		40	92,88,86,80,78	5
			24		11	" " " "	"

गुण स्थान	बंध स्थान 8	भंग	उदयस्थान 12		उदय भंग	सत्तास्थान 12	संवेद्यभंग
			25		31	" " " " "	"
			26	9	600	" " " " "	"
			27		30	92,88,86,80	4
			28		1198	" " " "	"
			29		1780	" " " "	"
			30		2914	92,88,86,80	4
			31		1164	" " " "	"
							40
1 से 8	28	9	21		16	92,88	2
			25		17	" "	"
			26		576	" "	"
			27		17	" "	"
			28	8	1179	" "	"
			29		1755	" "	"
			30		2890	92,89,88,86	4
			31		1152	92,88,86	3
							19
1 से 8	29	9248	21		41	93,92,89,88,86,80,78	7
			24		11	92,88,86,80,78	5
			25	9	33	93,92,89,88,86,80,78	7
			26		600	" " " " " "	7
			27		32	93,92,89,88,86,80	6
			28		1202	" " " " " "	6
			29		1784	" " " " " "	6
			30		2916	" " " " " "	6
			31		1164	92,88,86,80	4
							54

गुण स्थान	बंध स्थान 8	भंग	उदयस्थान 12		उदय भंग	सत्तास्थान 12	संवेद्यभंग
1,2,4	30	4641	21		41	93,92,89,88,86,80,78	7
7,8			24		11	92,88,86,80,78	5
			25		32	93,92,89,88,86,80,78	7
			26		600	92,88,86,80,78	5
			27	9	31	93,92,89,88,86,80	6
			28		1199	93,92,89,88,86,80	6
			29		1781	" " " "	6
			30		2914	" " " "	6
			31		1164	92,88,86,80	4
							52
7 व 8	31	1	30	1	144	93	1
							1
8,9	1	1	30	1	72	93,92,89,88,80,79,76	8
10						75	8
11	0	0	20		1	79,75	2
12			21		1	80,76	2
13			26		6	79,75	2
14			27	7	1	80,76	2
			28		12	79,75	2
			29		13	80,79,76,75	4
			30		73	93,92,89,88,80,79,76	8
						75	
			31		1	80,76	2
			9		1	80,76, 9	3
			8	3	1	79,75,8	3
		13945		65	46724		284

जीवस्थानों और गुणस्थानकों की अपेक्षा भंग का कथन

तिविगप्प-पगइ-ठाणेहिं, जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु ।
भंगा पउंजिअव्वा, जत्थ जहा संभवो भवइ ।।35।।

–: शब्दार्थ :–

तिविगप्प-पगइ-ठाणेहिं=तीन विकल्पों के प्रकृतिस्थानों के द्वारा,	**भंगा**=भंग,
जीवगुणसन्निएसु=जीव और गुण संज्ञा वाले,	**पउंजिअव्वा**=घटित करना चाहिए,
ठाणेसु=स्थानों में,	**जत्थ**=जहाँ,
	जहा संभवो=जितने संभव,
	भवइ=होते हैं ।

गाथार्थ :–तीन विकल्पों (बंध, उदय और सत्ता) के प्रकृतिस्थानों के द्वारा जीव और गुण संज्ञा वाले स्थानों (जीवस्थान, गुणस्थानकों) में जहाँ जितने भंग संभव हों वहां उतने भंग घटित कर लेना चाहिए ।

विवेचन :–अभी तक ग्रन्थ में मूल और उत्तर प्रकृतियों के बंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानों व उनके संवेद्य भंग बतलाये हैं तथा साथ ही मूल प्रकृतियों के इन स्थानों और उनके संवेद्य भंगों के जीवस्थानों और गुणस्थानकों की अपेक्षा स्वामी का निर्देश किया है । किन्तु उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा बंधस्थान, उदयस्थान और उनके संवेद्य भंगों के स्वामी का निर्देश नहीं किया है । अब तीनों प्रकार के प्रकृतिस्थानों के सब भंग जीवस्थानों और गुणस्थानकों में घटित करके बतलाये जायेंगे ।

जीवस्थानों के संवेद्य भंग ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के भंग

तेरससु जीवसंखेवएसु, नाणंतराय तिविगप्पो ।
इक्कम्मि ति दुविगप्पो, करणं पइ इत्थ अविगप्पो ।।36।।

–: शब्दार्थ :–

तेरससु=तेरह,	**नाणंतराय**=ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के,
जीवसंखेवएसु=जीव के संक्षेप (स्थानों) के विषय में,	**तिविगप्पो**=तीन विकल्प,

इक्कम्मि=एक जीवस्थान में, **तिदुविगप्पो**=तीन अथवा दो विकल्प, **करणंपइ**=करण (द्रव्यमन के आश्रय से) की अपेक्षा,	**इत्थ**=यहाँ, **अविगप्पो**=विकल्प का अभाव है ।

गाथार्थ :–प्रारंभ के तेरह जीवस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के तीन विकल्प होते हैं तथा एक जीवस्थान (पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय) में तीन और दो विकल्प होते हैं । द्रव्यमन की अपेक्षा इनके कोई विकल्प नहीं है ।

विवेचन :–इस गाथा से ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के भंग बतलाते हैं । चौदह जीवस्थानों में से आदि के तेरह जीवस्थानों में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के तीन विकल्प हैं ।

ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की पाँच-पाँच उत्तर प्रकृतियाँ हैं और वे सब प्रकृतियाँ ध्रुवबंधिनी, ध्रुवोदया और ध्रुवसत्ताक हैं । क्योंकि इन दोनों कर्मों की उत्तर प्रकृतियों का अपने-अपने विच्छेद के अन्तिम समय तक बंध, उदय और सत्त्व निरन्तर बना रहता है । अतः आदि के तेरह जीवस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियों का पाँच प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, इन तीन विकल्प रूप एक भंग पाया जाता है । क्योंकि इन जीवस्थानों में से किसी भी जीवस्थान में इनके बंध, उदय और सत्ता का विच्छेद नहीं पाया जाता है ।

अन्तिम चौदहवें पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म का बंधविच्छेद पहले होता है और उसके बाद उदय तथा सत्ता का विच्छेद होता है । अतः यहाँ पाँच प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार तीन विकल्प रूप एक भंग होता है । अनन्तर बंधविच्छेद हो जाने पर पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार दो विकल्प रूप एक भंग होता है । पाँच प्रकृतिक बंध, उदय और सत्ता, ये तीन विकल्प सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक तक पाये जाते हैं तथा उसके बाद बंध का विच्छेद हो जाने पर उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थानक में पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, ये दो विकल्प होते हैं । क्योंकि उदय और सत्ता का युगपद् विच्छेद हो जाने से अन्य भंग सम्भव नहीं हैं ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान की एक और विशेषता बतलाते हैं। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद जीव को भावमन तो नहीं रहता किन्तु द्रव्यमन रहता है और इस अपेक्षा उसे भी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं।

ऐसे सयोगि और अयोगि केवली जो द्रव्यमन के संयोग से पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, उनके तीन विकल्प रूप और दो विकल्प रूप भंग नहीं होते हैं। अर्थात् केवल द्रव्यमन की अपेक्षा जो जीव पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं, उनके ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा कोई भंग नहीं है क्योंकि इन कर्मों के बंध, उदय और सत्ता का विच्छेद केवली होने से पहले ही हो जाता है।

दर्शनावरण, वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के बंधादि स्थानों के भंग

तेरे नव चउ पणगं, नव संतेगम्मि भंगमिक्कारा।
वेअणि-आउय-गोए, विभज्ज मोहं परं वुच्छं ॥37॥

–: शब्दार्थ :–

तेरे=तेरह जीवस्थानों में	**वेअणि-आउय-गोए**=वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में
नव=नौ प्रकृतिक बंध,	**विभज्ज**=विकल्प करके,
चउ पणगं=चार अथवा पाँच प्रकृतिक उदय,	**मोहं**=मोहनीय कर्म के,
नवसंत=नौ की सत्ता,	**परं**=आगे
एगम्मि=एक जीवस्थान में,	**वुच्छं**=कहेंगे।
भंगमिक्कारा=ग्यारह भंग होते हैं,	

गाथार्थ :–तेरह जीवस्थानों में नौ प्रकृतिक बंध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता होती है। एक जीवस्थान में ग्यारह भंग होते हैं। वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में बंधादि स्थानों का विभाग करके मोहनीय कर्म के बारे में आगे कहेंगे।

विवेचन :–दर्शनावरण कर्म के बंधादि विकल्प इस प्रकार हैं। आदि के तेरह जीवस्थानों में नौ प्रकृतिक बंध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक

सत्ता, ये दो भंग होते हैं। अर्थात् नौ प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह एक भंग और नौ प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक सत्ता यह दूसरा भंग, इस प्रकार आदि के तेरह जीवस्थानों में दो भंग होते हैं।

इसका कारण यह है कि प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानों में दर्शनावरण कर्म की किसी भी उत्तर प्रकृति का न तो बंधविच्छेद होता है, न उदयविच्छेद होता है और न सत्ताविच्छेद ही होता है। निद्रा, निद्रा-निद्रा आदि पाँच निद्राओं में से एक काल में किसी एक का उदय होता भी है और नहीं भी होता है। इसीलिए इन पाँच निद्राओं में से किसी एक का उदय होने या न होने की अपेक्षा आदि के तेरह जीवस्थानों के दो भंग बतलाये हैं।

परन्तु एक जो पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान है उसमें ग्यारह भंग होते हैं। पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में गुणस्थानकों के क्रम से दर्शनावरण कर्म की नौ प्रकृतियों का बंध, उदय और सत्ता तथा इनकी व्युच्छित्ति सब कुछ सम्भव है। इसीलिये इस जीवस्थान में दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा 11 भंग होने का संकेत किया गया है।

पज्जत्तगसन्निअरे, अट्ठ चउक्कं च वेयणिअभंगा।
सत्त य तिगं च गोए, पत्तेअं जीवठाणेसु ॥38॥

–: शब्दार्थ :–

पज्जत्तगसन्निअरे=पर्याप्तसंज्ञी पंचेन्द्रिय,	**सत्त य**=सात भंग,
अट्ठ=आठ,	**तिगं**=तीन भंग,
चउक्कं=चार,	**च**=और,
च=और,	**गोए**=गोत्रकर्म में,
वेयणिअभंगा=वेदनीय कर्म के भंग,	**पत्तेअं**=प्रत्येक में,
	जीवठाणेसु=जीवस्थानों में

गाथार्थ :–पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में वेदनीय कर्म के आठ भंग और शेष तेरह जीवस्थानों में चार भंग होते हैं, तथा गोत्र कर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में सात भंग और शेष तेरह जीवस्थानों में से प्रत्येक में तीन भंग होते हैं।

विवेचन :–वेदनीय कर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में चौदह गुणस्थानक सम्भव हैं अतः उसमें 1. असाता का बन्ध, असाता का

उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, 2. असाता का बंध, साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, 3. साता का बन्ध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, 4. साता का बन्ध, साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, 5. असाता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, 6. साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, 7. असाता का उदय और असाता की सत्ता और, 8. साता का उदय तथा साता की सत्ता, ये आठ भंग होते हैं। किन्तु प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानों में से प्रत्येक के उक्त आठ भंगों में से आदि के चार भंग ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि इनमें साता और असाता वेदनीय इन दोनों का यथासम्भव बन्ध, उदय और सत्ता सर्वत्र सम्भव है।

वेदनीय कर्म के उक्त आठ भंगों को पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में गुणस्थानकों की अपेक्षा इस प्रकार घटित करना चाहिए।

पहला भंग–असाता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा **दूसरा भंग–**असाता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भंग पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक से लेकर छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक पाये जाते हैं। क्योंकि आगे के गुणस्थानकों में असाता वेदनीय के बंध का अभाव है। **तीसरा भंग–**साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, **चौथा भंग–**साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो विकल्प पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक से लेकर तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानक तक पाये जाते हैं। इसके बाद बंध का अभाव हो जाने से **पाँचवाँ भंग–**असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा **छठा भंग–**साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, ये दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थानक में द्विचरम समय तक प्राप्त होते हैं और चरम समय में **सातवाँ भंग–**असाता का उदय और असाता की सत्ता तथा **आठवाँ भंग–**साता का उदय और साता की सत्ता, ये दो भंग पाये जाते हैं।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली द्रव्यमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहे जाते हैं, अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में वेदनीय कर्म के आठ भंग मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

गोत्रकर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में सात भंग प्राप्त होते हैं।

1. नीच का बंध, नीच का उदय और नीच की सत्ता।

2. नीच का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता।

3. नीच का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता।

4. उच्च का बंध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता ।

5. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता ।

6. उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनों की सत्ता तथा

7. उच्च का उदय और उच्च की सत्ता ।

उक्त सात भंगों में से पहला भंग उन संज्ञियों को होता है, जो अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याय से आकर संज्ञियों में उत्पन्न होते हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में दूसरा और तीसरा भंग प्रारम्भ के दो गुणस्थानक मिथ्यात्व, सास्वादन की अपेक्षा बताये हैं । चौथा भंग प्रारम्भ के पाँच गुणस्थानकों की अपेक्षा कहा है । पाँचवाँ भंग प्रारम्भ के दस गुणस्थानकों की अपेक्षा कहा है । छठा भंग उपशान्तमोह गुणस्थानक से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थानक के उपान्त्य समय तक होने की अपेक्षा कहा है । और सातवां भंग अयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय की अपेक्षा कहा है ।

लेकिन शेष तेरह जीवस्थानों में उक्त सात भंगों में से पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भंग प्राप्त होते हैं । पहला भंग–नीच गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता । दूसरा भंग नीच गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता । तथा चौथा भंग-उच्च गोत्र का बंध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता, ये दोनों भंग भी तेरह जीवस्थानों में नीच गोत्र का ही उदय होने से पाये जाते हैं ।

पज्जत्ताऽपज्जत्तग, समणे पज्जत्तअमण सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसगं, नवगं पणगं च आउस्स ।।39।।

–: शब्दार्थ :–

पज्जत्तापज्जत्तगसमणे=पर्याप्त और अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के विषय में,	**सेसेसु**=शेष के विषय में,
पज्जत्तअमण=पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय के विषय में,	**अट्ठावीसंद सगं**=28, 10,
	नवगं पणगं च=9 और 5,
	आउस्स=आयुष्य कर्म का,

गाथार्थ :–पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और शेष ग्यारह जीवस्थानों में आयु कर्म के क्रमशः 28, 10, 9 और 5 भंग होते हैं ।

विवेचन :–पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयुष्यकर्म के 28 भंग होते हैं। अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में 10 तथा पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में 9 भंग होते हैं। इन तीन जीवस्थानों से शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच भंग होते हैं।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयुष्यकर्म के अट्ठाईस भंग इस प्रकार समझना चाहिए कि पहले नारकों के 5, तिर्यंचों के 9, मनुष्यों के 9 और देवों के 5 भंग बतलाये हैं, जो कुल मिलाकर 28 भंग होते हैं, वे ही यहाँ पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के 28 भंग कहे गये हैं।

नारक जीव के 1. परभव की आयु के बंधकाल के पूर्व नरकायु का उदय, नरकायु की सत्ता, 2. परभव की आयु बंध होने के समय तिर्यंचायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा, 3. मनुष्यायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, 4. परभव की आयुबंध के उत्तरकाल में नरकायु का उदय और नरक तिर्यंचायु की सत्ता अथवा, 5. नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये पाँच भंग होते हैं। नारक जीव भवप्रत्यय से ही देव और नरकायु का बंध नहीं करते हैं।

इसी प्रकार देवों में आयु कर्म के पांच विकल्प समझना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि नरकायु के स्थान पर देवायु कहना चाहिए। जैसे कि देवायु का उदय और देवायु की सत्ता इत्यादि।

तिर्यंचों के नौ विकल्प इस प्रकार हैं कि 1. तिर्यंचायु का उदय, तिर्यंचायु की सत्ता, यह विकल्प परभव की आयु बंधकाल के पूर्व होता है। 2. परभव की आयु बंधकाल में नरकायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय, नरक-तिर्यंच आयु की सत्ता अथवा 3. तिर्यंचायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 4. मनुष्यायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 5. देवायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और देव-तिर्यंचायु की सत्ता। परभवायु के बंधोत्तर काल में 6. तिर्यंचायु का उदय, नरक-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 7. तिर्यंचायु का उदय, तिर्यंच-तिर्यंच आयु की सत्ता अथवा 8. तिर्यंचायु का उदय, मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 9. तिर्यंचायु

का उदय, देव-तिर्यंचायु की सत्ता । इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच के आयुकर्म के 9 भंग होते हैं ।

इसी प्रकार मनुष्यों के भी नौ भंग समझना चाहिए, लेकिन इतनी विशेषता है कि तिर्यंचायु के स्थान पर मनुष्यायु का विधान कर लेवें । जैसे कि मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता इत्यादि ।

इस प्रकार नारक के 5, देव के 5, तिर्यंच के 9 और मनुष्य के 9 विकल्पों का कुल जोड़ 5 + 5 + 9 + 9 = 28 होता है । इसीलिए पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में आयुकर्म के 28 भंग माने जाते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव के दस भंग हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव मनुष्य और तिर्यंच ही होते हैं, क्योंकि देव और नारकों में अपर्याप्त नाम कर्म का उदय नहीं होता है तथा इनके परभव संबंधी मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु का ही बन्ध होता है, अतः इनके मनुष्यगति की अपेक्षा 5 और तिर्यंचगति की अपेक्षा 5 भंग, इस प्रकार कुल दस भंग होते हैं । जैसे कि तिर्यंचगति की अपेक्षा 1. आयुबंध के पहले तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु की सत्ता 2. आयुबंध के समय तिर्यंचायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 3. मनुष्यायु का बंध, तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता, 4. बंध की उपरति होने पर तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंच-तिर्यंचायु की सत्ता अथवा 5. तिर्यंचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता । कुल मिलाकर ये पाँच भंग हुए ।

इसी प्रकार मनुष्यगति की अपेक्षा भी पाँच भंग समझना चाहिए, लेकिन तिर्यंचायु के स्थान पर मनुष्यायु को रखें ।

पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तिर्यंच ही होता है और उसके चारों आयुओं का बंध सम्भव है, अतः यहाँ आयु के वे ही नौ भंग होते हैं जो सामान्य तिर्यंचों के बतलाये हैं ।

इस प्रकार से तीन जीवस्थानों में आयुष्यकर्म के भंगों को बतलाने के बाद शेष रहे ग्यारह जीवस्थानों के भंगों के बारे में कहते हैं कि उनमें से प्रत्येक में पाँच-पाँच भंग होते हैं । क्योंकि शेष ग्यारह जीवस्थानों के जीव तिर्यंच ही

होते हैं और उनके देवायु व नरकायु का बंध नहीं होता है, अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंचों के जो पाँच भंग बतलाये हैं, वे ही यहाँ जानना चाहिए कि बंधकाल से पूर्व का एक भंग, बंधकाल के समय के दो भंग और उपरत बंधकाल के दो भंग। इस प्रकार शेष ग्यारह जीवस्थानों में पाँच भंग होते हैं।

चौदह जीवस्थानों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अंतराय, इन छह कर्मों के भंगों का विवरण इस प्रकार है–

क्रम	जीवस्थान	ज्ञाना-वरण	दर्शना वरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अंतराय
1.	एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त	1	2	4	5	3	1
2.	एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त	1	2	4	5	3	1
3.	एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त	1	2	4	5	3	1
4.	एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त	1	2	4	5	3	1
5.	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	1	2	4	5	3	1
6.	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	1	2	4	5	3	1
7.	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	1	2	4	5	3	1
8.	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	1	2	4	5	3	1
9.	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	1	2	4	5	3	1
10.	चतुरिन्द्रिय पर्याप्त	1	2	4	5	3	1
11.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	1	2	4	10	3	1
12.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	1	2	4	9	3	1
13.	संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	1	2	4	10	3	1
14.	संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	2	11	8	28	7	3

मोहनीय कर्म के भंग

अट्ठसु पंचसु एगे, एग दुगं दस य मोहबंधगए ।
तिग चउ नव उदयगए, तिग तिग पन्नरस संतम्मि ।।40।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठसु=आठ जीवस्थानों में,	**मोहबंधगए**=मोहनीय कर्म के बंधगत स्थानों में,
पंचसु=पाँच जीवस्थानों में,	**तिग चउ नव**=तीन, चार और नौ,
एगे=एक जीवस्थान में,	**उदयगए**=उदयगत स्थान,
एग=एक,	**तिग तिग पन्नरस**=तीन, तीन और पन्द्रह,
दुगं=दो,	**संतम्मि**=सत्ता के स्थान ।
दस=दस,	
य=और,	

गाथार्थ :–आठ, पाँच और एक जीवस्थान में मोहनीय कर्म के अनुक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान तथा तीन, तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते हैं ।

विवेचन :–इस गाथा में मोहनीय कर्म के जीवस्थानों में बंध, उदय और सत्ता स्थान बतलाये हैं और जीवस्थानों तथा बंधस्थानों, उदयस्थानों तथा सत्तास्थानों की संख्या का संकेत किया है ।

आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान है, पाँच जीवस्थानों में दो बंधस्थान हैं और एक जीवस्थान में दस बंधस्थान हैं । इनमें से पहले आठ जीवस्थानों में एक बंधस्थान होने को स्पष्ट करते हैं कि पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त संज्ञी पंचन्द्रिय, इन आठ जीवस्थानों में पहला मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक ही होता है अतः इनके एक 22 प्रकृतिक बंधस्थान होता है । वे 22 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क आदि सोलह कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्य-रति और शोक-अरति युगल में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा । इस बंधस्थान में तीन वेद और दो युगलों की अपेक्षा छह भंग होते हैं ।

पाँच जीवस्थानों में दो बंधस्थान

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त द्वीन्द्रिय, पर्याप्त त्रीन्द्रिय, पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय, इन पाँच जीवस्थानों में 22 प्रकृतिक और 21 प्रकृतिक, ये दो बंधस्थान होते हैं । बाईस प्रकृतियों का नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है और उसमें से मिथ्यात्व को कम कर देने पर 21 प्रकृतिक बंधस्थान हो जाता है । इनको मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक होता है इसलिए तो इनके 22 प्रकृतिक बंधस्थान कहा गया है तथा सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव मर कर इन जीवस्थानों में भी उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनके 21 प्रकृतिक बंधस्थान बतलाया है ।

इनमें से 22 प्रकृतिक बंधस्थान के 6 भंग हैं जो पहले बतलाये जा चुके हैं और 21 प्रकृतिक बंधस्थान के 4 भंग होते हैं । क्योंकि नपुंसकवेद का बंध मिथ्यात्वोदय निमित्तक है और यहाँ मिथ्यात्व का उदय न होने से नपुंसकवेद का भी बंध न होने से शेष दो वेद-पुरुष और स्त्री तथा दो युगलों की अपेक्षा चार भंग ही संभव हैं ।

संज्ञी-पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान, सो इसमें 22 प्रकृतिक आदि मोहनीय के दस बंधस्थान होते हैं । उक्त दस बंधस्थानों की प्रकृति संख्या मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रसंग में बतलाई जा चुकी है ।

अब **जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के उदयस्थान** बतलाते हैं । आठ जीवस्थानों में तीन, पाँच जीवस्थानों में चार और एक जीवस्थान में नौ उदयस्थान हैं । पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि आठ जीवस्थानों में आठ, नौ और दस प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान हैं । मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में अनन्तानुबंधी चतुष्क में से किसी एक के उदय के बिना 7 प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परंतु वह इन आठ जीवस्थानों में नहीं पाया जाता है । क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में एक आवलीका काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढ़ते ही नहीं हैं, अतः इनके सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं है ।

उक्त आठ जीवस्थानों में नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, कषाय चतुष्क और

दो युगलों में से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इस उदयस्थान में आठ भंग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानों में एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, अतः यहाँ वेद का विकल्प तो संभव नहीं किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कषाय और दो युगल हैं, सो उनके विकल्प से आठ भंग होते हैं ।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भंग होते हैं अतः आठ को दो से गुणित करने पर सोलह भंग होते हैं । अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भंग हैं । आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यह एक ही प्रकार का है, अतः पूर्वोक्त आठ भंग ही होते हैं । इस प्रकार तीनों उदयस्थानों के कुल 32 भंग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान में अलग-अलग प्राप्त होते हैं ।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाँच जीवस्थानों में से प्रत्येक में चार-चार उदयस्थान हैं-सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक । सो इनमें से सास्वादन भाव के काल में 21 प्रकृतिक बंधस्थान में 8, 9, और 10, ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं तथा 22 प्रकृतिक बंधस्थान में 8, 9 और 10 ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं । इन जीवस्थानों में भी एक नपुंसकवेद का ही उदय होता है, अतः यहाँ भी 7, 8 और 9 और 10 प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमशः 8, 16 और 8 भंग होते हैं तथा इसी प्रकार 8, 9 और 10 प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमशः 8, 16 और 8 भंग होंगे ।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में 9 उदयस्थान हैं, जिनका उल्लेख मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के प्रसंग में किया जा चुका है । अतः उनको वहाँ से जान लेवें ।

जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के सत्तास्थान : आठ जीवस्थानों में तीन, पाँच जीवस्थानों में तीन और एक जीवस्थान में 15 होते हैं । पूर्वोक्त आठ जीवस्थानों में से प्रत्येक में 28, 27 और 26 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में इन तीन के अलावा और सत्तास्थान

नहीं पाये जाते हैं । इसी प्रकार से पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाँच जीवस्थानों में भी 28, 27 और 26 प्रकृतिक सत्तास्थान समझना चाहिए और एक पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में सभी 15 सत्तास्थान हैं । क्योंकि इस जीवस्थान में सभी गुणस्थानक होते हैं ।

इस प्रकार से जीवस्थानों में पृथक्-पृथक् उदय और सत्तास्थानों का कथन करने के अनन्तर अब इनके संवेद्य का कथन करते हैं-आठ जीवस्थानों में एक 22 प्रकृतिक बंधस्थान होता है और उसमें 8, 9, और 10 प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान होते हैं तथा प्रत्येक उदयस्थान में 28, 27 और 26 प्रकृतिक सत्तास्थान हैं । इस प्रकार आठ जीवस्थानों में से प्रत्येक के कुल नौ भंग हुए ।

पाँच जीवस्थानों में 22 प्रकृतिक और 21 प्रकृतिक, ये दो बंधस्थान हैं और इनमें से 22 प्रकृतिक बंधस्थान में 8, 9 और 10 प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते हैं और प्रत्येक उदयस्थान में 28, 27 और 26 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं । इस प्रकार कुल नौ भंग हुए । 21 प्रकृतिक बंधस्थान में 7, 8 और 9 प्रकृतिक, तीन उदयस्थान हैं और प्रत्येक उदयस्थान में 28 प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है । इस प्रकार 21 प्रकृतिक बंधस्थान में तीन उदयस्थानों की अपेक्षा तीन सत्तास्थान हैं । दोनों बंधस्थानों की अपेक्षा यहाँ प्रत्येक जीवस्थान में 12 भंग हैं ।

21 प्रकृतिक बंधस्थान में 28 प्रकृतिक एक सत्तास्थान मानने का कारण यह है कि 21 प्रकृतिक बंधस्थान सास्वादन गुणस्थानक में होता है और सास्वादन गुणस्थानक 28 प्रकृतिक सत्ता वाले जीव को ही होता है, क्योंकि सास्वादन सम्यग्दृष्टियों के दर्शनमोहत्रिक की सत्ता पाई जाती है । इसीलिए 21 प्रकृतिक बंधस्थान में 28 प्रकृतिक सत्तास्थान माना जाता है ।

एक संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवस्थान में मोहनीय कर्म के बंध आदि स्थानों के संवेद्य का कथन जैसा पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिए ।

जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के संवेद्य भंगों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए –

क्रम	जीवस्थान	बंध-स्थान	भंग	उदय-स्थान	भंग	उदय-पद	पद-वृन्द	सत्ता-स्थान
1.	सूक्ष्म ए.अ.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
2.	सूक्ष्म ए.प.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
3.	बादर ए.अ.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
4.	बादर ए.प.	22 21	6 4	8,9,10 7,8,9	64	68	544	28,27,26 28
5.	द्वीन्द्रिय अप.	22	6	8,9,10	32	38	288	28,27,26
6.	द्वीन्द्रिय पर्या.	22 21	6 4	8,9,10 7,8,9	64	68	544	28,27,26 28
7.	त्रीन्द्रिय अप.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
8.	त्रीन्द्रिय पर्या.	22 21	6 4	8,9,10 7,8,9	64	68	544	28,27,26 28,27,26
9.	चतुन्द्रिय अप.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
10.	चतुन्द्रिय पर्या.	22 21	6 4	8,9,10 7,8,9	64	68	544	28,27,26 28
11.	असंज्ञी पं.अप.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
12.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	22 21	6 4	8,9,10 7,8,9	64	68	544	28,27,26 28
13.	संज्ञी पं.अप.	22	6	8,9,10	32	36	288	28,27,26
14.	संज्ञी पं.पर्या.	सभी	21	सभी	983	288	6947	सभी

नामकर्म के भंग

पण दुग पणगं पण चउ, पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पण छप्पणगं छच्छ-प्पणगं अट्ठऽट्ठ दसगं ति ।।41।।
सत्तेव अपज्जत्ता, सामी सुहुमा य बायरा चेव ।
विगलिंदिआउ तिन्नि उ, तह य असन्नी सन्नी अ ।।42।।

–: शब्दार्थ :–

पण दुग पणगं=पाँच, दो, पाँच, **पण चउ पणगं**=पाँच, चार, पाँच, **पणगा**=पाँच-पाँच, **हवंति**=होते हैं, **तिन्नेव**=तीनों ही, (बंध, उदय और सत्तास्थान),	**पण छप्पणगं**=पाँच, छह, पाँच, **छच्छप्पणगं**=छह, छह, पाँच, **अट्ठऽट्ठ**=आठ, आठ, **दसगं**=दस, **ति**=इस प्रकार,
सत्तेव=सातों ही, **अपज्जत्ता**=अपर्याप्त, **सामी**=स्वामी, **सुहुमा य**=सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, **बायरा**=बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, **चेव**=और, **विगलिंदिया**=विकलेन्द्रिय पर्याप्त,	**तिन्नि**=तीन, **तह**=वैसे ही, **य**=और, **असन्नी**=असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, **सन्नी**=संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त । **अ**=और

गाथार्थ :–पाँच, दो, पाँच; पाँच, चार, पाँच; पाँच, पाँच, पाँच; पाँच, छह, पाँच, छह, छह, पाँच और आठ, आठ, दस; ये बंध, उदय और सत्तास्थान हैं ।

इनके क्रम से सातों अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलत्रिक पर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वामी जानना चाहिए ।

विवेचन :–इन दो गाथाओं में जीवस्थानों में नामकर्म के भंगों का विचार किया गया है । पहली गाथा में तीन-तीन संख्याओं का एक पुंज लिया

गया है, जिसमें से पहली संख्या बंधस्थान की, दूसरी संख्या उदयस्थान की और तीसरी संख्या सत्तास्थान की द्योतक है। गाथा में संख्या के ऐसे कुल छह पुंज हैं। दूसरी गाथा में चौदह जीवस्थानों को छह भागों में विभाजित किया गया है। जिसका यह तात्पर्य हुआ कि पहले भाग के जीवस्थान पहले पुंज के स्वामी, दूसरे भाग के जीवस्थान दूसरे पुंज के स्वामी हैं इत्यादि।

चौदह जीवस्थानों में से सात अपर्याप्त जीवस्थानों में से प्रत्येक में पाँच बंधस्थान, दो उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं। सात प्रकार के अपर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं, देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का नहीं, अतः इन सात अपर्याप्त जीवस्थानों में 28, 31 और 1 प्रकृतिक बंधस्थान न होकर 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और इनमें भी मनुष्यगति तथा तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का ही बंध होता है। सब बंधस्थानों के मिलाकर प्रत्येक जीवस्थान में 13947 भंग होते हैं।

इन सात जीवस्थानों में दो उदयस्थान हैं-21 और 24 प्रकृतिक। इनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान में अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण इन 21 प्रकृतियों का उदय होता है। यह उदयस्थान अपान्तराल गति में पाया जाता है। यहाँ भंग एक होता है क्योंकि यहाँ परावर्तमान शुभ प्रकृतियों का उदय नहीं होता है।

अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव को भी यही उदयस्थान होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उसके बादर के स्थान में सूक्ष्म प्रकृति का उदय कहना चाहिए। यहाँ भी एक भंग होता है।

इस 21 प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान, उपघात और प्रत्येक व साधारण में से कोई एक, इन चार प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी इस प्रकृति को घटा देने पर 24 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो दोनों सूक्ष्म व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवस्थानों में समान रूप से सम्भव है। यहाँ सूक्ष्म अपर्याप्त और बादर अपर्याप्त में से प्रत्येक के साधारण और प्रत्येक नामकर्म की अपेक्षा दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार दो उदयस्थानों

की अपेक्षा दोनों जीवस्थानों में से प्रत्येक के तीन-तीन भंग होते हैं ।

विकलेन्द्रियत्रिक अपर्याप्त, असंज्ञी अपर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त, इन पाँच जीवस्थानों में 21 और 26 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं । इनमें से अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण यह 21 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । जो अपान्तराल गति में विद्यमान जीव के ही होता है, अन्य के नहीं । यहाँ सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त हैं, अतः एक ही भंग जानना चाहिए ।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय आदि जीवस्थानों में भी यह 21 प्रकृतिक उदयस्थान और 1 भंग जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रत्येक जीवस्थान में द्वीन्द्रिय जाति न कहकर त्रीन्द्रिय जाति आदि अपनी-अपनी जाति का उदय कहना चाहिए ।

अनन्तर 21 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीरस्थ जीव के औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुंडकसंस्थान, सेवार्त संहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों के मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भी हाथ ही भंग होता है । इस प्रकार अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि प्रत्येक जीवस्थान में दो-दो उदयस्थानों की अपेक्षा दो-दो भंग होते हैं ।

लेकिन अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान इसका अपवाद है । क्योंकि अपर्याप्त संज्ञी जीवस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति दोनों में होता है । अतः यहाँ इस अपेक्षा चार भंग प्राप्त होते हैं ।

इस सात जीवस्थानों में से प्रत्येक में 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं । अपर्याप्त अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता सम्भव नहीं है, अतः इन सातों जीवस्थानों में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नहीं होते हैं । किन्तु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक सम्बन्धी शेष सत्तास्थान सम्भव होने से उक्त पाँच सत्तास्थान कहे हैं ।

इस प्रकार से सात अपर्याप्त जीवस्थानों में नामकर्म के बंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान जानना चाहिए । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान

में पाँच बंधस्थान हैं, चार उदयस्थान हैं और पाँच सत्तास्थान हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मरकर मनुष्य और तिर्यंचगति में ही उत्पन्न होता है, जिससे उसके उन गतियों के योग्य कर्मों का बंध होता है। इसीलिए इसके भी 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान माने गये हैं। यहाँ भी इन पाँचों स्थानों के कुल भंग 13917 होते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के 21, 24, 25 और 26 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। क्योंकि इन सूक्ष्म जीवों के आतप और उद्योत नामकर्म का उदय नहीं होता है।

21 प्रकृतिक उदयस्थान में वे ही प्रकृतियाँ लेनी चाहिए, जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के बतलाये हैं। लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान विवक्षित होने से अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त का उदय कहना चाहिए। यह 21 प्रकृतिक उदयस्थान, अपान्तराल गति में होता है। प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ न होने से इसमें एक ही भंग होता है।

उक्त 21 प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, उपघात तथा साधारण और प्रत्येक में से कोई एक प्रकृति, इन चार प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर 24 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीरस्थ जीव को होता है। यहाँ प्रत्येक और साधारण के विकल्प से दो भंग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा 24 प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात को मिला देने पर 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी 24 प्रकृतिक उदयस्थान की तरह वे ही दो भंग होते हैं।

उक्त 25 प्रकृतिक उदयस्थान में श्वासोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास प्रकृति को मिलाने से 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त दो भंग होते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में चार उदयस्थान और उनके सात भंग होते हैं।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में सत्तास्थान बतलाते हैं। इस जीवस्थान में पाँच सत्तास्थान बतलाये हैं। वे पाँच सत्तास्थान 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक हैं। **तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती है।** इसलिए 93 और 89 प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान संभव नहीं होने से 92, 88,

86, 80 और 78 प्रकृतिक पाँच सत्तास्थान पाये जाते हैं। फिर भी जब साधारण प्रकृति के उदय के साथ 25 और 26 प्रकृतिक उदयस्थान लिये जाते हैं तब इस भंग में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान सम्भव नहीं हैं। क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को छोड़कर शेष सब जीव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का नियम से बन्ध करते हैं और 25 व 26 प्रकृतिक उदयस्थान शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवों के ही होते हैं। अतः साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के 25 और 26 उदयस्थान रहते 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है। शेष चार सत्तास्थान 92,88,86 और 80 प्रकृतिक होते हैं।

21 और 24 प्रकृतिक में से प्रत्येक उदयस्थान में तो पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं और 25 व 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में एक अपेक्षा चार-चार और एक अपेक्षा पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। अपेक्षा का कारण साधारण व प्रत्येक प्रकृति है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान ये पाँच बंधस्थान, पाँच उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करता है। इसलिए उसके भी 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और तदनुसार इनके कुल भंग 13917 होते हैं।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ पर भी एकेन्द्रिय सम्बन्धी पाँच उदयस्थान 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक होते हैं। क्योंकि सामान्य से अपान्तराल गति की अपेक्षा 21 प्रकृतिक, शरीरस्थ होने की अपेक्षा 24 प्रकृतिक, शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा 25 प्रकृतिक और श्वासोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा 26 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान तो पर्याप्त एकेन्द्रिय को नियम से होते ही हैं। किन्तु यह बादर एकेन्द्रिय है अतः यहाँ आतप और उद्योत नाम में से किसी एक का उदयस्थान और संभव है, जिससे 27 प्रकृतिक उदयस्थान भी बन जाता है। इसीलिए बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान माने गये हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के 21 प्रकृतिक उदयस्थान में 91

प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, बादर, पर्याप्त, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, दुर्भग, अनादेय, यश और अपयश में से कोई एक। इस उदयस्थान में यश और अपयश का उदय विकल्प से होता है। अतः इस अपेक्षा से यहाँ 21 प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग होते हैं।

उक्त 21 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीरस्थ जीव की अपेक्षा औदारिक शरीर, हुंडकसंस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण में से कोई एक, इन चार प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर 24 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ प्रत्येक-साधारण और यश अपयश का विकल्प से उदय होने के कारण चार भंग होते हैं।

अनन्तर 24 प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात प्रकृति को मिलाने से 25 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव को होता है। यहाँ भी 24 प्रकृतिक उदयस्थान की तरह पाँच भंग होते हैं।

यदि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के आतप और उद्योत में से किसी एक का उदय हो जावे तो 25 प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक को मिलाने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु आतप का उदय साधारण को नहीं होता है, अतः इस पक्ष में 26 प्रकृतिक उदयस्थान के यश और अपयश की अपेक्षा दो भंग होते हैं। लेकिन उद्योत का उदय साधारण और प्रत्येक, इनमें से किसी के भी होता है अतः इस पक्ष में साधारण और प्रत्येक तथा यश और अपयश इनके विकल्प से चार भंग होते हैं। इस प्रकार 26 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल 5 + 2 + 4 = 11 भंग हुए।

अनन्तर श्वासोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास सहित 26 प्रकृतिक उदयस्थान में आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर 27 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आतप के साथ दो भंग और उद्योत के साथ चार भंग, इस प्रकार कुल छह भंग हुए।

इन पाँचों उदयस्थानों के भंग जोड़ने पर बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के कुल भंग 29 होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इस जीवस्थान में जो पाँचों उदयस्थानों के 29 भंग बतलाये हैं, उनमें से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग, 24 प्रकृतिक उदयस्थान में वैक्रिय बादर वायुकायिक के एक भंग को छोड़कर शेष चार भंग तथा 25 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में प्रत्येक नाम और अपयश नाम के साथ प्राप्त होने वाला एक-एक भंग, इस प्रकार इन आठ भंगों में से प्रत्येक में उपर्युक्त पाँचों सत्तास्थान होते हैं किन्तु शेष 21 में से प्रत्येक भंग में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार-चार सत्तास्थान होते हैं।

विकलत्रिक–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तों में पाँच बंधस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं। विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी तिर्यंचगति और मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों का ही बंध करते हैं। अतः इनके भी 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और तदनुसार इनके कुल भंग 13917 होते हैं।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं। इनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान में–तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और यश व अपयश में से कोई एक–इस प्रकार 21 प्रकृतियों का उदय होता है जो अपान्तराल गति में पाया जाता है। इसके यश और अपयश के विकल्प से दो भंग होते हैं।

अनन्तर शरीरस्थ जीव की अपेक्षा 21 प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुंडसंस्थान, सेवार्त संहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियों को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने से 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी 21 प्रकृतिक उदयस्थान की तरह दो भङ्ग जानना चाहिए।

इस 26 प्रकृतिक उदयस्थान में शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा पराघात और अप्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्ववत् दो भंग होते हैं।

28 प्रकृतिक उदयस्थान के अनन्तर 29 प्रकृतिक उदयस्थान का क्रम है । यह 29 प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है–एक तो जिसने प्राणापान पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास का उदय होने पर और दूसरा शरीरपर्याप्ति की प्राप्ति होने के पश्चात् उद्योत का उदय होने पर इन दोनों में से प्रत्येक स्थान में पूर्वोक्त दो-दो भङ्ग प्राप्त होते हैं । इस प्रकार 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भङ्ग हुए ।

इसी प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है । एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत का उदय न होकर सुस्वर और दुःस्वर इन दो प्रकृतियों में से किसी एक का उदय होने पर होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को प्राप्त किया और अभी भाषा पर्याप्ति की प्राप्ति नहीं हुई किन्तु इसी बीच में उसके उद्योत प्रकृति का उदय हो गया तो भी 30 प्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है । इनमें से पहले प्रकार के 30 प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अपयश तथा सुस्वर और दुःस्वर के विकल्प से चार भङ्ग प्राप्त होते हैं । किन्तु दूसरे प्रकार के 30 प्रकृतिक उदयस्थान में यशःकीर्ति और अपयश के विकल्प से दो ही भंग होते हैं । इस प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान में छह भंग प्राप्त हुए ।

ऊपर जो 30 प्रकृतिक उदयस्थान के दो प्रकार बतलाये हैं उसमें से यदि जिसने भाषा पर्याप्ति को भी प्राप्त कर लिया और उद्योत का भी उदय है, उसको 31 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ यश और अपयश तथा दोनों स्वरों के विकल्प से चार भङ्ग होते हैं । इस प्रकार पर्याप्त द्वीन्द्रिय के सब उदयस्थानों के कुल भङ्ग 20 होते हैं ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में भी एकेन्द्रिय के समान 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं । पहले जो छह उदयस्थानों के 20 भंग बतलाये हैं उनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भंग, इन चार भंगों में से प्रत्येक भंग में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं क्योंकि 78 प्रकृतियों की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव पर्याप्त द्वीन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, उनके कुछ काल तक 78 प्रकृतियों की सत्ता संभव है तथा इस काल में द्वीन्द्रियों के क्रमशः 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थान ही होते हैं । इसीलिए इन दो उदयस्थानों के चार भंगों

में से प्रत्येक भंग में उक्त पाँच सत्तास्थान कहे हैं तथा इन चार भंगों के अतिरिक्त जो शेष 16 भंग रह जाते हैं, उनमें से किसी के भी 78 प्रकृतिक सत्तास्थान न होने से प्रत्येक में चार-चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के सिवाय शेष जीव शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त होने के पश्चात् नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बंध करते हैं, जिससे उनके 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं पाया जाता है।

पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवों को भी बंधादि स्थानों और उनके भङ्गों को जानना चाहिए। इतनी विशेषता जानना चाहिए कि उदयस्थानों में द्वीन्द्रिय के स्थान पर त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का उल्लेख कर दिया जाये।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के छह बंधस्थान हैं, छह उदयस्थान हैं और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका विवेचन यह है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते ही हैं, किन्तु नरकगति और देवगति के योग्य प्रकृतियों का भी बंध कर सकते हैं। इसलिए इनके 23, 25, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक ये छह बंधस्थान होते हैं और तदनुसार 13926 भंग होते हैं।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान हैं। इनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान में तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय और अनादेय में से कोई एक तथा यश और अपयश में से एक, इन 21 प्रकृतियों का उदय होता है। यह 21 प्रकृतिक उदयस्थान अपान्तरालगति में ही पाया जाता है तथा सुभग आदि तीन युगलों में से प्रत्येक प्रकृति के विकल्प से 8 भंग प्राप्त होते हैं।

अनन्तर जब यह जीव शरीर को ग्रहण कर लेता है तब औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों का उदय होने लगता है। किन्तु यहाँ आनुपूर्वी नामकर्म का उदय नहीं होता है। अतएव उक्त 21 प्रकृतिक उदयस्थान में छह प्रकृतियों को मिलाने और

तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने पर 26 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ छह संस्थान और छह संहननों की अपेक्षा सुभगत्रिक की अपेक्षा पूर्वोक्त 8 भंगों में दो बार छह से गुणित कर देने पर 8 x 6 x 6 = 288 भंग प्राप्त होते हैं ।

अनंतर इसके शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने पर पराघात तथा प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति में से किसी एक का उदय और होने लगता है । अतः 26 प्रकृतिक उदयस्थान में इन दो प्रकृतियों को और मिला देने पर 28 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ दोनों विहायोगतियों के विकल्प की अपेक्षा भंगों के विकल्प पूर्वोक्त 288 को दो से गुणा कर देने पर 288 x 2 = 576 हो जाते हैं । 29 प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है–एक तो जिसने श्वासोश्वास पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर उद्योत प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है । इन दोनों स्थानों में से प्रत्येक स्थान में 576 भंग होते हैं । अतः 29 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल 576 x 2 = 1152 भंग हुए ।

30 प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है । एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया उसके उद्योत के बिना सुस्वर और दुःस्वर प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया, उसके उद्योत का उदय हो जाने पर होता है । इनमें से पहले प्रकार के स्थान के पूर्वोक्त 576 भंगों को स्वरद्विक से गुणित करने पर 1152 भंग प्राप्त होते हैं तथा दूसरे प्रकार के स्थान में 576 भंग ही होते हैं । इस प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग 1152 + 576 = 1728 होते हैं ।

अनन्तर जिसने भाषा पर्याप्ति को भी पूर्ण कर लिया और उद्योत प्रकृति का भी उदय है उसके 31 प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ कुल भंग 1152 होते हैं । इस प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के सब उदयस्थानों के कुल 4904 भङ्ग होते हैं ।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक ये पाँच सत्तास्थान होते हैं । इनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान के 8 भंग तथा 26 प्रकृतिक उदयस्थान के 288 भंग ; इसमें से प्रत्येक भंग में पूर्वोक्त

पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि 78 प्रकृतियों की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव हैं वे यदि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं तो उनके 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थान रहते हुए 78 प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाना संभव है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष उदयस्थानों और उनके भंगों में 78 के बिना शेष चार-चार सत्तास्थान ही होते हैं।

इस प्रकार से अभी तक तेरह जीवस्थानों के नामकर्म के बंधादि स्थानों और उनके भंगों का विचार किया गया। अब शेष रहे चौदहवें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के बंधादि स्थानों व भंगों का निर्देश करते हैं। इस जीवस्थान के बंधादि स्थानों के लिए गाथा में संकेत किया गया है–संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में आठ बंधस्थान, आठ उदयस्थान और दस सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नाम कर्म के 23, 25, 26, 28, 29, 30, 31 और 1 प्रकृतिक, ये आठ बंधस्थान बतलाये हैं। ये आठों बंधस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के होते हैं और उनके 13945 भंग संभव हैं। क्योंकि इनके चारों गति सम्बन्धी प्रकृतियों का बंध सम्भव है। इसीलिए 23 प्रकृतिक आदि बंधस्थान इनके कहे हैं। तीर्थंकर नाम और आहारक चतुष्क का भी इनके बंध होता है। इसीलिए 31 प्रकृतिक बंधस्थान कहा है। इस जीवस्थान में उपशम और क्षपक दोनों श्रेणियाँ पाई जाती हैं इसीलिए 1 प्रकृतिक बंधस्थान भी कहा है।

उदयस्थानों की अपेक्षा विचार करने पर और 20, 9 और 8 प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान केवली सम्बन्धी हैं और 24 प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियों को होता है अतः इस जीवस्थान में 20, 24, 9 और 8 प्रकृतिक, इन चार उदयस्थानों को छोड़कर शेष यह जीवस्थान बारहवें गुणस्थानक तक ही पाया जाता है। 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31 प्रकृतिक ये आठ उदयस्थान पाये जाते हैं। इन आठ उदयस्थानों के कुल भंग 7671 होते हैं। क्योंकि 12 उदयस्थानों के कुल भंग 7791 हैं सो उनमें से 120 भंग कम हो जाते हैं, क्योंकि उन भंगों का संबंध संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव से नहीं है।

नामकर्म के सत्तास्थान 12 हैं, उनमें से 9 और 8 प्रकृतिक सत्तास्थान केवली के पाये जाते हैं, अतः वे दोनों संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में संभव नहीं

होने से उनके अतिरिक्त 93, 92, 89, 88, 86, 80, 79, 78, 76 और 75 प्रकृतिक, ये दस सत्तास्थान पाये जाते हैं। 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों के क्रमशः 8 और 288 भंगों में से तो प्रत्येक भंग में 92, 88, 86, 80 और 76 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान ही पाये जाते हैं।

इस प्रकार चौदह जीवस्थानों में बंधादि स्थानों और उनके भंगों का विचार किया गया। अब उनके परस्पर संवेद्य का विचार करते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के 23 प्रकृतिक बंधस्थान में 21 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार 24 प्रकृतिक उदयस्थान में भी पाँच सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर दोनों उदयस्थानों के 10 सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार 25, 26, 29 और 30 प्रकृतियों का बंध करने वाले उक्त जीवों के दो-दो उदयस्थानों की अपेक्षा दस-दस सत्तास्थान होते हैं। जो कुल मिलाकर 50 हुए। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि अन्य छह अपर्याप्तों के 50-50 सत्तास्थान जानना किन्तु सर्वत्र अपने-अपने दो-दो उदयस्थान कहना चाहिए।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में 21, 24, 25 और 26 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। अतः पाँच को चार से गुणित करने पर 20 हुए तथा प्रत्येक उदयस्थान में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं अतः 20 को 5 से गुणा करने पर 100 सत्तास्थान सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के भी पूर्वोक्त 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, पाँच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बंधस्थान में 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच उदयस्थान होते हैं, अतः 5 को 5 से गुणा करने पर 25 हुए। इनमें से अन्तिम पाँच उदयस्थानों में 78 के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं, जिनसे कुल भंग 20 हुए और शेष 20 उदयस्थानों में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भंग 100 हुए। इस प्रकार यहाँ कुल भंग 120 होते हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त के 23, 25, 26, 27 और 30 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और प्रत्येक बंधस्थान में 21, 26, 28, 29, 30 और 31

प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं । इनमें से 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में 78 प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय चार-चार सत्तास्थान हैं । ये कुल मिलाकर 26 सत्तास्थान हुए । इस प्रकार पाँच बंधस्थानों के 130 भंग हुए ।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के बंधस्थान आदि जानना चाहिए तथा उनके भी 130, 130 भंग होते हैं ।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में भी 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक, इन पाँच बंधस्थानों में से प्रत्येक बंधस्थान में विकलेन्द्रियों की तरह छब्बीस भंग होते हैं जिनका योग 130 है । परन्तु 28 प्रकृतिक बंधस्थान में 30 और 31 प्रकृतिक ये दो उदयस्थान ही होते हैं । अतः यहाँ प्रत्येक उदयस्थान में 92, 88 और 86 प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं । इनके कुल 6 भंग हुए । यहाँ तीन सत्तास्थान होने का कारण यह है कि 28 प्रकृतिक बंधस्थान देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध पर्याप्त के ही होता है । इसी प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में 130 + 6 = 136 भंग होते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के 23 प्रकृतिक बंधस्थान में जैसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के 26 सत्तास्थान बतलाये, वैसे यहाँ भी जानना चाहिए । 25 प्रकृतिक बंधस्थान में 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान बतलाये हैं सो इनमें से 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में तो पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा 25 और 27 प्रकृतिक उदयस्थान देवों के ही होते हैं, अतः इनमें 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । शेष रहे चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में 78 प्रकृतिक के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल 30 सत्तास्थान होते हैं । 26 प्रकृतिक बंधस्थान में भी इसी प्रकार 30 सत्तास्थान होते हैं ।

28 प्रकृतिक बंधस्थान में आठ उदयस्थान होते हैं । इनमें से 21, 25, 26, 27, 28 और 29 प्रकृतिक इन छह उदयस्थानों में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । 30 प्रकृतिक उदयस्थान में 92, 88, 86 और 80 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा 31 प्रकृतिक उदयस्थान में 92, 88 और 86 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल 19 सत्तास्थान होते हैं ।

29 प्रकृतिक बंधस्थान में 30 प्रकृतिक सत्तास्थान तो 25 प्रकृतियों का बंध करने वाले के समान जानना किन्तु यहाँ कुछ विशेषता है कि जब अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध करता है तब उसके 21, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं जिनका जोड़ 10 हुआ ।

इसी प्रकार विक्रिया करने वाले संयत और संयतासंयत जीवों के भी 29 प्रकृतिक बंधस्थान के समय 25 और 27 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में 93 और 89 प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते हैं । जिनका जोड़ 4 होता है अथवा आहारक संयत के भी इन दो उदयस्थानों में 93 प्रकृतियों की सत्ता होती है और तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि को अपेक्षा 86 की सत्ता होती है । इस प्रकार इन 14 सत्तास्थानों को पहले के 30 सत्तास्थानों में मिला देने पर 29 प्रकृतिक बंधस्थान में कुल 44 सत्तास्थान होते हैं ।

इसी प्रकार 30 प्रकृतिक बन्धस्थान में भी 25 प्रकृतिक बन्धस्थान के समान 30 सत्तास्थानों को ग्रहण करना चाहिए । किन्तु यहाँ भी कुछ विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध होते समय 21, 25, 27, 28, 29 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । जिनका कुल जोड़ 12 होता है । इन्हें पूर्वोक्त 30 में मिला देने पर 30 प्रकृतिक बंधस्थान में कुल 42 सत्तास्थान होते हैं ।

31 प्रकृतिक बन्धस्थान में तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध अवश्य होता है । अतः यहाँ भी 93 प्रकृतियों की सत्ता है तथा 1 प्रकृतिक बंध के समय 8 सत्तास्थान होते हैं । इनमें से 93, 92, 89 और 88 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान उपशमश्रेणि में होते हैं और 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान क्षपकश्रेणि में होते हैं ।

बंध के अभाव में भी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के पूर्वोक्त आठ सत्तास्थान होते हैं । जिनमें से प्रारम्भ के 4 सत्तास्थान उपशांतमोह ग्यारहवें गुणस्थानक में प्राप्त होते हैं और अन्तिम 4 सत्तास्थान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानक में प्राप्त होते हैं । इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के सब मिलाकर 208

सत्तास्थान होते हैं ।

द्रव्यमन के संयोग से केवली को भी संज्ञी माना जाता है । सो उनके भी 26 सत्तास्थान प्राप्त होते हैं । क्योंकि केवली के 20, 21, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 9 और 8 प्रकृतिक, ये दस उदयस्थान होते हैं । इनमें से 20 प्रकृतिक उदयस्थान में 79 और 75 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं तथा 26 और 28 प्रकृतिक उदयस्थानों में भी यही दो सत्तास्थान जानना चाहिए । 21 तथा 27 प्रकृतिक उदयस्थान में 80 और 76 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । 29 प्रकृतिक उदयस्थान में 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि 29 प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थंकर और सामान्य केवली दोनों को प्राप्त होता है । उनमें से यदि तीर्थंकर को 29 प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो 80 और 76 प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होंगे और यदि सामान्य केवली के 29 प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो 79 और 75 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होंगे ।

इसी प्रकार 30 प्रकृतिक उदयस्थान में भी चार सत्तास्थान प्राप्त होते हैं । 31 प्रकृतिक उदयस्थान में 80 और 76 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं, क्योंकि यह उदयस्थान तीर्थंकर केवली के ही होता है । 9 प्रकृतिक उदयस्थान में 80, 76 और 9 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से प्रारम्भ के दो सत्तास्थान तीर्थंकर के अयोगिकेवली गुणस्थानक के उपान्त्य समय तक होता है और अन्तिम 9 प्रकृतिक सत्तास्थान अयोगि केवली गुणस्थानक के अन्त समय में होता है । प्रकृतिक उदयस्थान में 79, 75 और 8 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । इनमें से आदि के दो सत्तास्थान (79, 75) सामान्य केवली के अयोगिकेवली गुणस्थानक के उपान्त्य समय तक प्राप्त होते हैं और अन्तिम 8 प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय में प्राप्त होता है । इस प्रकार ये 26 सत्तास्थान होते हैं ।

अब यदि इन्हें पूर्वोक्त 208 सत्तास्थानों में शामिल कर दिया जाये तो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में कुल 234 सत्तास्थान होते हैं ।

चौदह जीवस्थानों में नामकर्म के बंधस्थानों, उदयस्थानों और उनके भंगों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है । पहले बंधस्थानों और उनके भंगों को बतलाते हैं ।

1 सूक्ष्म एके० अप०		2 सूक्ष्म एके० प०		3 बादर एके० अप०		4 बादर एके० प०	
23	4	23	4	23	4	23	4
25	25	25	25	25	25	25	25
26	16	26	16	26	16	26	16
29	9240	29	9240	27	9240	29	9240
30	4632	30	4632	30	4632	30	4632
5	13917	5	13917	5	13917	5	13917

5 द्वीन्द्रिय अपर्याप्त		6 द्वीन्द्रिय पर्याप्त		7 त्रीन्द्रिय अपर्याप्त		8 त्रीन्द्रिय पर्याप्त	
23	4	23	4	23	4	23	4
25	25	25	25	25	25	25	25
26	16	26	16	26	16	26	16
29	9240	29	9240	29	9240	29	9240
30	4632	30	4632	30	4632	30	4632
5	13917	5	13917	5	13917	5	13917

9 चतुरिन्द्रिय अप०		10 चतु० पर्याप्त		11 असं० पंचे० अप०		12 असं०पं.पर्याप्त	
23	4	23	4	23	4	23	4
25	25	25	25	25	25	25	25
26	16	26	16	26	16	26	16
29	9240	29	9240	29	9240	28	9
						29	9240
30	4632	30	4632	30	4632	30	4632
5	13917	5	13917	5	13917	6	13926

13 संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		14 संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
23	4	23	4
25	25	25	25
26	16	26	16
29	9240	28	9
30	4632	29	9248
		30	4641
		31	1
		1	1
5	13917	8	13945

बंधस्थानों के भंगों को बतलाने के बाद अब उदयस्थानों के भंगों को बतलाते हैं ।

1 सूक्ष्म एके० अप०		2 सूक्ष्म एके० पर्याप्त		3 बादर एके० अप०		4 बादर एके० पर्याप्त	
21	1	21	1	21	1	21	2
24	2	24	2	24	2	24	5
		25	2			25	5
		26	2			26	11
						27	6
2	3	4	7	2	3	5	29

5 द्वीन्द्रिय अर्याप्त		6 द्वीन्द्रिय पर्याप्त		7 त्रीन्द्रिय अपर्याप्त		8 त्रीन्द्रिय पर्याप्त	
21	1	21	2	21	1	21	2
26	1	26	2	26	1	26	2
		28	2			28	2
		29	4			29	4
		30	6			30	6
		31	4			31	4
2	2	6	20	2	2	6	20

9 चतुरि० अपर्याप्त		10 चतुरि० पर्याप्त		11 असं० पंचे० अप०		12 असं० पंचे० पर्याप्त	
21	1	21	2	21	2	21	8
26	1	26	2	26	2	26	288
		28	2		असंज्ञी मनुष्य 1	28	576
		29	4			29	1152
		30	6		असंज्ञी तिर्यंच 1	30	1728
		31	4			31	1152
2	2	6	20	2	6	6	4904

13 संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त		14 संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	
21	2	21	25
26	2	25	26
		26	576
		27	26
		28	1196
		29	1772
		30	2898
		31	1152
		20	1
		9	1
		8	1
		0	5
2	4	12	7679

जीवस्थानों में नामकर्म की प्रकृतियों के बन्ध, उदय, सत्तास्थानों के भंगों का विवरण

क्र.	जीवस्थान	बंधस्थान 8		भंग 13945	उदयस्थान 12		भंग 7791	सत्तास्थान 12	
1.	सू० एके० अप०	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,24	3	5	92,88,86,80,78
2.	सू० एके० पर्या०	5	23,25,26,29,30	13917	4	21,24,25,26	7	5	92,88,86,80,78
3.	बा० एके० अप०	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,24	3	5	92,88,86,80,78
4.	बा० एके० पर्या०	5	23,25,26,29,30	13917	5	21,24,25,26,27	29	5	92,88,86,80,78
5.	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,26	2	5	92,88,86,80,78
6.	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	5	23,25,26,29,30	13917	6	21,26,28,29,30,31	20	5	92,88,86,80,78
7.	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,26	2	5	92,88,86,80,78
8.	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	5	23,25,26,29,30	13917	6	21,26,28,29,30,31	20	5	92,88,86,80,78
9.	चतु० अपर्याप्त	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,26	2	5	92,88,86,80,78
10.	चतु० पर्याप्त	5	23,25,26,29,30	12917	6	21,26,28,29,30,31	20	5	92,88,86,80,78
11.	असं०पंचे०अप०	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,26	4	5	92,88,86,80,78
12.	असं०पंचे०प०	6	23,25,26,28,29,30	13926	6	21,26,28,29,30,31	4904	5	92,88,86,80,78
13.	संज्ञी पंचे०अप०	5	23,25,26,29,30	13917	2	21,26	4	5	92,88,86,80,78
14.	संज्ञी पंचे०प०	8	23,25,26,28,29,30 31, 1	13945	11	21,25,26,27,28,29 30,31, के० 20,9,8,	7679	12	93,92,89,88,86 80,79,78,76,75 के० 9, 8

इस प्रकार से जीवस्थानों में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय व सत्ता स्थान तथा उनके भंगों का कथन करने के बाद अब गुणस्थानों में भंगों का कथन करते हैं ।

गुणस्थानों में संवेद्य भंग

गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के बंधादि स्थान :-

नाणंतराय तिविहमवि, दससु दो हुंति दोसु ठाणेसु ।

—: शब्दार्थ :—

नाणंतराय=ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म	**दो**=दो (उदय और सत्ता)
तिविहमवि=तीन प्रकार से (बंध, उदय और सत्ता की अपेक्षा),	**हुंति**=होते हैं,
दससु=आदि के दस गुणस्थानों में,	**दोसु**=दो (उपशांतमोह और क्षीण-मोह में),
	ठाणेसु=गुणस्थानों में ।

गाथार्थ :—प्रारम्भ के दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म बन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है और दो गुणस्थानों (उपशांतमोह, क्षीणमोह) में उदय और सत्ता की अपेक्षा दो प्रकार का है ।

विशेषार्थ :—चौदह गुणस्थानों में आठ कर्मों के बंध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके संवेद्य भंगों का कथन करते हैं ।

ज्ञानावरण की पाँचों और अन्तराय की पाँचों प्रकृतियों का बन्धविच्छेद दसवें सुक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अन्त में तथा उदय और सत्ता का विच्छेद बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त में होता है । पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक दस गुणस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के पाँच प्रकृतिक बन्ध, पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, ये तीनों प्राप्त होते हैं । लेकिन दसवें गुणस्थान में इन दोनों का बन्धविच्छेद हो जाने से उपशांतमोह और क्षीणमोह ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता ये दो ही प्राप्त होते हैं ।

बारहवें गुणस्थान से आगे तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में इन दोनों कर्मों के बन्ध, उदय और सत्ता का अभाव हो जाने से बंध, उदय और सत्ता में से कोई भी नहीं पाई जाती है ।

दर्शनावरण कर्म के भंग

मिच्छासाणे बीए, नव चउ पण नव य संतंसा ।।43।।
मिस्साइ निअट्टीओ छच्चउ पण नव य संतकम्मंसा ।
चउबंध तिगे चउ पण, नवंस दुसु जुअल छस्संता ।।44।।
उवसंते चउ पण नव, खीणे चउरुदय छच्च चउ संता ।

–: शब्दार्थ :–

मिच्छासाणे=मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानक में,
बीए=दूसरे कर्म के,
नव=नौ,
चउ पण=चार या पाँच,
नव=नौ,
य=और,
संतंसा=सत्ता,
मिस्साइ=मिश्र गुणस्थानक से लेकर,
निअट्टीओ=अपूर्वकरण गुणस्थानक तक,
छच्चउ पण=छह, चार या पाँच,
नव=नौ,
य=और,
संतकम्मंसा=सत्ता प्रकृति,
चउबंध=चार का बंध,
तिगे=अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानकों में,
चउपण=चार अथवा पाँच,
नवंस=नौ की सत्ता,
दुसु=दो गुणस्थानकों (अनिवृत्तिबादर और सूक्ष्मसंपराय) में,
जुअल=बंध और उदय,
छस्संता=छह की सत्ता ।
उवसंते=उपशांतमोह गुणस्थानक में,
चउ पण=चार अथवा पाँच,
नव=नौ,
खीणे=क्षीणमोह गुणस्थानक में,
चउरुदय=चार का उदय,
छच्च चउ=छह और चार की,
संता=सत्ता ।

गाथार्थ :–दूसरे दर्शनावरण कर्म का मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानक में नौ प्रकृतियों का बंध, चार या पाँच प्रकृतियों का उदय तथा नौ प्रकृति की सत्ता होती है ।

मिश्र गुणस्थानक से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानक के पहले संख्यातवें

भाग तक छह का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानकों में चार का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षपक के नौ और दस इन दो गुणस्थानकों में चार का बंध, चार का उदय और छह की सत्ता होती है।

उपशांतमोह गुणस्थानक में चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षीणमोह गुणस्थानक में चार का उदय तथा छह और चार की सत्ता होती है।

दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ 9 हैं। इनमें से स्त्यानद्धित्रिक का बंध सास्वादन गुणस्थानक तक ही होता है तथा चक्षुर्दर्शनावरण आदि चार का उदय अपने उदयविच्छेद होने तक निरंतर बना रहता है किन्तु निद्रा आदि पाँच का उदय कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता है तथा उसमें भी एक समय में एक का ही उदय होता है, एक साथ दो का या दो से अधिक का नहीं होता है। इसीलिए मिथ्यात्व और सास्वादन इन दो गुणस्थानकों में 9 प्रकृतिक बंध, 4 प्रकृतिक उदय और 9 प्रकृतिक सत्ता तथा 9 प्रकृतिक बन्ध 5 प्रकृतिक उदय और 9 प्रकृतिक सत्ता ये दो भंग प्राप्त होते है।

इन दो-मिथ्यात्व और सास्वादन गुणस्थानकों के आगे तीसरे मिश्र गुणस्थानक से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक के प्रथम भाग तक—छह का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। इसका कारण यह है कि स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध सास्वादन गुणस्थानक तक होने से छह प्रकृतिक बंध होता है। किन्तु उदय और सत्ता प्रकृतियों में कोई अंतर नहीं पड़ता है। अतः इन गुणस्थानकों में छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थानक के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला की भी बंधव्युच्छित्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक पर्यन्त तीन गुणस्थानकों में बंध में चार प्रकृतियाँ रह जाती हैं, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियों की रहती है। अतः अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक तक तीन गुणस्थानकों में चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ

प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक बंध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं ।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा नियम हैं कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि में ही होता है, क्षपकश्रेणि में नहीं होता है । अतः क्षपकश्रेणि में अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानकों में पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नहीं होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागों के व्यतीत होने पर स्त्यानर्द्धित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है । जिससे छह प्रकृतियों की ही सत्ता रहती है । अतः अनिवृत्तिकरण के अंतिम संख्यात भाग और सूक्ष्मसंपराय इन दो क्षपक गुणस्थानकों में चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भंग प्राप्त होता है ।

उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि वाले के दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक के अंत में दर्शनावरण कर्म का बंधविच्छेद हो जाता है । इसलिए आगे ग्यारहवें आदि गुणस्थानकों में बंध की अपेक्षा दर्शनावरण के भंग प्राप्त नहीं होते हैं । अतः उपशांतमोह गुणस्थानक में जो उपशमश्रेणि का गुणस्थानक है, उदय और सत्ता तो दसवें गुणस्थानक के समान बनी रहती है किन्तु बंध नहीं होने से-चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं ।

क्षीणमोह गुणस्थानक में चार का उदय और छह या चार की सत्ता होती है । इसका कारण यह है कि बारहवाँ क्षीणमोह गुणस्थानक क्षपकश्रेणि का है और क्षपक श्रेणि में निद्रा या प्रचला का उदय नहीं होने से चार प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है तथा छह या चार प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि जब क्षीणमोह गुणस्थानक में निद्रा और प्रचला का उदय ही नहीं होता है तब क्षीणमोह गुणस्थानक के अंतिम समय में इनकी सत्ता भी प्राप्त नहीं हो सकती है । क्षीणमोह गुणस्थानक के अंतिम समय में निद्रा और प्रचला की सत्ता न रहकर केवल चक्षुर्दर्शनावरण आदि चार की ही सत्ता रहेगी ।

वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मों के भंग

वेअणि-आउअ-गोए विभज्ज मोहं परं वुच्छं ।।45।।

–: शब्दार्थ :–

वेअणि-आउअ-गोए=वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के,	**मोहं**=मोहनीय कर्म के,
विभज्ज=विभाग करके,	**परं**=इसके बाद,
	वुच्छं=कहेंगे ।

गाथार्थ :–वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों का कथन करने के बाद मोहनीय कर्म के भंगों का कथन करेंगे ।

चउ छस्सु दुन्नि सत्तसु एगे चउगुणिसु वेअणियभंगा ।
गोए पण चउ दो तिसु एगट्ठसु दुन्नि इक्कंमि ।।46।।

–: शब्दार्थ :–

चउ=चार भंग	**पण**=पाँच भंग
छस्सु=छह गुणस्थानक में	**चउ**=चार भंग
दुन्नि=दो भंग	**दो**=दो भंग
सत्तसु=अप्रमत्त आदि सात गुणस्थानक में	**तिसु**=मिश्र आदि तीन गुणस्थानक
एगे=एक अयोगि गुणस्थानक में	**एग**=एक भंग
चउ=चार भंग	**अट्ठसु**=प्रमत्त आदि आठ गुणस्थानक में
गुणिसु=गुणस्थानक में	**दुन्नि**=दो भंग
वेअणियभंगा=वेदनीय कर्म के भंग	**इक्कंमि**=एक गुणस्थानक
गोए=गोत्रकर्म के विषय में	

गाथार्थ :–वेदनीय कर्म के छह गुणस्थानकों में चार, सात में दो और एक में चार भंग होते हैं तथा गोत्रकर्म के पहले में पाँच, दूसरे में चार, तीसरे आदि तीन में दो, छठे आदि आठ में एक और एक में एक भंग होता है ।

विवेचन :–गाथा में वेदनीय कर्म के विकल्पों का निर्देश किया है । पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक से लेकर छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक छह

गुणस्थानकों में चार भंग होते हैं। क्योंकि बंध और उदय की अपेक्षा साता और असातावेदनीय, ये दोनों प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी हैं। अर्थात् दोनों में से एक काल में किसी एक का बंध और किसी एक का ही उदय होता है किन्तु दोनों की एक साथ सत्ता पाये जाने में कोई विरोध नहीं है तथा असाता वेदनीय का बंध आदि के छह गुणस्थानकों में ही होता है, आगे नहीं। इसलिए प्रारंभ के छह गुणस्थानकों में वेदनीय कर्म के निम्नलिखित चार भंग प्राप्त होते हैं–

1. असाता का बंध असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

2. असाता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

3. साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

4. साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

सातवें गुणस्थानक से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक सात गुणस्थानकों में दो भङ्ग होते हैं। क्योंकि छठे गुणस्थानक में असातावेदनीय का बंधविच्छेद हो जाने से सातवें से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक सिर्फ सातावेदनीय का बंध होता है, किन्तु उदय और सत्ता दोनों की पाई जाती है, जिससे इन सात गुणस्थानकों में-1. साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा 2. साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं।

चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानक में चार भंग होते हैं। क्योंकि अयोगिकेवली गुणस्थानक में साता वेदनीय का भी बंध नहीं होता है, अतः वहाँ बंध की अपेक्षा तो कोई भंग प्राप्त नहीं होता है किन्तु उदय और सत्ता की अपेक्षा भंग बनते हैं। फिर भी जिसके इस गुणस्थानक में असाता का उदय है, उसके उपान्त्य समय में साता की सत्ता का नाश हो जाने से तथा जिसके साता का उदय है उसके उपान्त्य समय में असाता की सत्ता का नाश हो जाने से उपान्त्य समय तक 1. साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, 2. असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं। तथा अंतिम समय में 3. साता का उदय और साता की सत्ता तथा 4. असाता का उदय और असाता की सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अयोगिकेवली गुणस्थानक में वेदनीय कर्म के चार भंग बनते हैं।

गोत्रकर्म के भंग

उच्च और नीच गोत्र बंध और उदय की अपेक्षा प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं, एक काल में इन दोनों में से किसी एक का बंध और एक का ही उदय हो सकता है, लेकिन सत्ता दोनों की होती है और दूसरी विशेषता यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के उच्चगोत्र की उदवेलना होने पर बंध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की ही होती है, तथा जिनमें ऐसे अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न होते हैं, उनके भी कुछ काल तक बंध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की होती है। इन दोनों विशेषताओं को ध्यान में रखकर मिथ्यात्व गुणस्थानक में गोत्रकर्म के भंगों का विचार करते हैं तो पाँच भंग प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. नीच का बंध, नीच का उदय तथा नीच और उच्च गोत्र की सत्ता।
2. **नीच का बंध, उच्च का उदय तथा नीच और उच्च की सत्ता।**
3. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च व नीच की सत्ता।
4. **उच्च का बंध, नीच का उदय तथा उच्च व नीच की सत्ता।**
5. नीच का बंध, नीच का उदय और नीच की सत्ता।

उक्त पाँच भंगों में से पाँचवाँ भंग-नीच गोत्र का बंध, उदय और सत्ता-अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों तथा उन जीवों में भी कुछ काल के लिए प्राप्त होता है जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों में से आकर जन्म लेते हैं। शेष मिथ्यात्व गुणस्थानकवर्ती जीवों के पहले चार विकल्प प्राप्त होते हैं।

सास्वादन गुणस्थानक में चार भंग प्राप्त होते हैं। क्योंकि नीच गोत्र का बंध सास्वादन गुणस्थानक तक ही होता है और मिश्र आदि गुणस्थानकों में एक उच्चगोत्र का ही बंध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्व गुणस्थानक के समान सास्वादन गुणस्थानक में भी किसी एक का बंध किसी एक का उदय और दोनों की सत्ता बन जाती है। इस हिसाब से यहाँ चार भंग पाये जाते हैं और वे चार भंग वही हैं जिनका मिथ्यात्व गुणस्थानक के भंग 1, 2, 3 और 4 में उल्लेख किया गया है।

तीसरे, चौथे, पाँचवें-मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरति गुणस्थानकों में दो भंग होते हैं। क्योंकि तीसरे से लेकर पाँचवें गुणस्थानक

तक बंध एक उच्च गोत्र का ही होता है किन्तु उदय और सत्ता दोनों की पाई जाती है। इसलिए इन तीन गुणस्थानकों में- 1. उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, तथा 2. उच्च का बंध, नीच का उदय और नीच-उच्च की सत्ता, ये दो भंग पाये जाते हैं। यहाँ कितने ही आचार्यों का यह भी अभिमत है कि पाँचवें गुणस्थानक में उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यही एक भंग होता है। इस विषय में आगम वचन है कि–

सामान्य से संयत और संयतासंयत जाति वाले जीवों के उच्च गोत्र का उदय होता है।

छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक से लेकर आठ गुणस्थानकों में से प्रत्येक गुणस्थानक में एक भंग प्राप्त होता है। क्योंकि छठे से लेकर दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक तक ही उच्च गोत्र का बंध होता है। अतः छठे, सातवें, आठवें, नौवें, दसवें-प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति बादर और सूक्ष्म संपराय–गुणस्थानकों में से प्रत्येक में-उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यह एक भंग प्राप्त होता है तथा दसवें गुणस्थानक में उच्च गोत्र का बंधविच्छेद हो जाने से ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें-उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थानक में उच्च-गोत्र का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, यह एक भंग प्राप्त होता है। इस प्रकार छठे से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक प्रत्येक गुणस्थानक में एक भंग प्राप्त होता है, यह सिद्ध हुआ।

शेष रहे एक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानक में दो भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि अयोगिकेवली गुणस्थानक में नीच गोत्र की सत्ता उपान्त्य समय तक ही होती है।

अट्ठच्छाहिगवीसा, सोलस वीसं च बारस छ दोसु।
दो चउसु तीसु इक्कं, मिच्छाइसु आउए भंगा ॥47॥

–: शब्दार्थ :–

अट्ठच्छाहिगवीसा=अट्ठावीस, छब्बीस	**दोसु**=प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानक में
सोलस वीसं=सोलह, बीस	**दो**=दो
बारस=बारह	**चउसु**=अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानक में
छ=छह	

तीसु=तीन गुणस्थानक	**आउए**=आयुष्य कर्म के विषय में
इक्कं=एक	**भंगा** =भंग
मिच्छाइसु=मिथ्यात्व आदि गुणस्थानक	

गाथार्थ :–मिथ्यात्व गुणस्थानक में 28, सास्वादन में 26, मिश्र में 16, अविरत सम्यग्दृष्टि में 20, देशविरत में 12, प्रमत्त और अप्रमत्त में 6, अपूर्व-करण आदि चार में 2 और क्षीणमोह आदि में 1, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानकों में आयुकर्म के भंग जानना चाहिए ।

विवेचन :–मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में आयुकर्म के 28 भंग होते हैं । क्योंकि चारों गतियों के जीव मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और नारकों के पाँच, तिर्यंचों के नौ, मनुष्यों के नौ और देवों के पाँच, इस प्रकार आयुकर्म के 28 भंग पहले बतलाये गये हैं । अतः वे सब भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में संभव होने से 28 भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में कहे हैं ।

सास्वादन गुणस्थानक में 26 भंग होते हैं । क्योंकि नरकायु का बंध मिथ्यात्व गुणस्थानक में ही होने से सास्वादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य नरकायु का बंध नहीं करते हैं । अतः उपर्युक्त 28 भंगों में से 1 भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान नरकायु और तिर्यंच-नरकायु की सत्ता, तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये दो भंग कम हो जाने से सास्वादन गुणस्थानक में 26 भंग प्राप्त होते हैं ।

तीसरे मिश्र गुणस्थानक में परभव संबंधी आयु के बंध न होने का नियम होने से परभव संबंधी किसी भी आयु का बन्ध नहीं होता है । अतः पूर्वोक्त 28 भंगों में से बंधकाल में प्राप्त होने वाले नारकों के दो, तिर्यंचों के चार, मनुष्यों के चार और देवों के दो, इस प्रकार 2 + 4 + 4 + 2 = 12 भंगों को कम कर देने पर 16 भंग प्राप्त होते हैं ।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 20 भंग होते हैं । क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में तिर्यंचों और मनुष्यों में से प्रत्येक के नरक, तिर्यंच और मनुष्य आयु का बन्ध नहीं होने से तीन-तीन भंग तथा देव और नारकों में प्रत्येक के तिर्यंचायु का बन्ध नहीं होने से एक-एक भंग, इस प्रकार कुल आठ भेद हुए । जिनको पूर्वोक्त 28 भंगों में से कम करने पर 20 भंग होते हैं ।

देशविरत गुणस्थानक में 12 भंग होते हैं। क्योंकि देशविरति तिर्यंच और मनुष्यों के होती है और यदि वे परभव सम्बन्धी आयु का बन्ध करते हैं तो देवायु का ही बन्ध करते हैं अन्य आयु का नहीं। अतः इनके आयुबन्ध के पहले एक-एक ही भंग होता है और आयुबन्ध के काल में भी एक-एक भंग ही होता है। इस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यों, दोनों को मिलाकर कुल चार भंग हुए तथा उपरत बंध की अपेक्षा तिर्यंचों के भी चार भंग होते हैं और मनुष्यों के भी चार भंग। क्योंकि चारों गति सम्बन्धी आयु का बन्ध करने के पश्चात् तिर्यंच और मनुष्यों के देशविरति गुणस्थानक के प्राप्त होने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। इस प्रकार उपरत बंध की अपेक्षा तिर्यंचों के चार और मनुष्यों के चार, जो कुल मिलाकर आठ भंग हैं। इनमें पूर्वोक्त चार भंगों को मिलाने पर देशविरत गुणस्थानक में कुल बारह भंग हो जाते हैं।

पाँचवें गुणस्थानक के बाद के प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, इन दो गुणस्थानकों में छह भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि ये दोनों गुणस्थानक मनुष्यों के ही होते हैं और ये देवायु को ही बांधते हैं। अतः इनके आयु बन्ध के पहले एक भंग और आयुबन्ध काल में भी एक भंग होता है। किन्तु उपरत बन्ध की अपेक्षा यहाँ चार भंग होते हैं, क्योंकि चारों गति सम्बन्धी आयुबन्ध के पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थानक प्राप्त होने में कोई बाधा नहीं है। इस प्रकार आयुबन्ध के पूर्व का एक, आयु बन्ध के समय का एक और उपरत बन्ध काल के चार भंगों को मिलाने से प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, इन दोनों गुणस्थानकों में छह भंग प्राप्त होते हैं।

आयुकर्म का बन्ध सातवें गुणस्थानक तक ही होता है। आगे आठवें अपूर्वकरण आदि शेष गुणस्थानकों में नहीं होता है। किन्तु एक विशेषता है कि जिसने देवायु का बन्ध कर लिया, ऐसा मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और जिसने देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध किया है, वह, उपशमश्रेणि पर आरोहण नहीं करता है।

तीन आयु का बन्ध करने वाला (देवायु को छोड़कर) जीव श्रेणि पर आरोहण नहीं करता है। अतः उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि उपशांतमोह गुणस्थानक पर्यन्त आठ, नौ, दस और ग्यारह, इन चार गुणस्थानकों में दो-दो भंग प्राप्त होते हैं-'दो चउसु'। वे दो भंग इस प्रकार हैं-

1. मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता, 2. मनुष्यायु का उदय, मनुष्य-देवायु की सत्ता। इनमें से पहला भंग परभव संबंधी आयु बन्धकाल के पूर्व में होता और दूसरा भंग उपरत बन्धकाल में होता है ।

लेकिन क्षपकश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानकों में मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भंग होता है ।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानकों में भी मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भंग होता है ।

14 गुणस्थानकों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अंतराय, इन छह कर्मों का विवरण–

क्रम.	गुणस्थानक	ज्ञाना वरण	दर्शना वरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अंतराय
1.	मिथ्यात्व	1	2	4	28	5	1
2.	सास्वादन	1	2	4	26	4	1
3.	मिश्र	1	2	4	16	2	1
4.	अविरत	1	2	4	20	2	1
5.	देशविरत	1	2	4	12	2	1
6.	प्रमत्तविरत	1	2	4	6	1	1
7.	अप्रमत्तविरत	1	2	2	6	1	1
8.	अपूर्वकरण	1	4	2	2	1	1
9.	अनिवृत्तिकरण	1	3	2	2	1	1
10.	सूक्ष्मसंपराय	1	3	2	2	1	1
11.	उपशांतमोह	1	2	2	2	1	1
12.	क्षीणमोह	1	2	2	1	1	1
13.	सयोगिकेवली	0	0	2	1	1	0
14.	अयोगिकेवली	0	0	4	1	2	0

गुणठाणएसु अट्ठसु इक्किक्कं मोहबंधठाणं तु ।
पंच अनिअट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ।।48।।

–: शब्दार्थ :–

गुणठाणएसु=गुणस्थानकों में,	**अनिअट्टिठाणे**=अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में,
अट्ठसु=आठ में,	**बंधोवरमो**=बंध का अभाव है,
इक्किक्कं=एक-एक,	**परं**=आगे,
मोहबंधठाणं तु=मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से,	**तत्तो**=उससे (अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक से) ।
पंच=पाँच,	

गाथार्थ :–मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानकों में मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से एक, एक बंधस्थान होता है तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में पाँच और अनन्तर आगे के गुणस्थानकों में बंध का अभाव है ।

विशेषार्थ :–इस गाथा में मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों में से बंधस्थानों को बतलाया है । सामान्य से मोहनीय कर्म के बंधस्थान पहले बताये जा चुके हैं, जो 22, 21, 17,13, 9, 5, 4, 3, 2, 1 प्रकृतिक हैं । इन दस स्थानों को गुणस्थानकों में घटाते हैं ।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थानक में मोहनीय कर्म का एक-एक बंधस्थान होता है । वह इस प्रकार जानना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकों में एक 22 प्रकृतिक, सास्वादन गुणस्थानक में 21 प्रकृतिक, मिश्र गुणस्थानक और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 17 प्रकृतिक, देशविरति में 13 प्रकृतिक तथा प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण में 9 प्रकृतिक बंधस्थान होता है । इनके भंगों का विवरण मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रकरण में कहे गये अनुसार जानना चाहिए, लेकिन अरति और शोक का बंधविच्छेद प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में हो जाता है अतः अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानक में नौ प्रकृतिक बंधस्थान में एक-एक ही भंग प्राप्त होता है । पहले जो नौ प्रकृतिक बंधस्थान में दो भंग बतलाये हैं वे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक की अपेक्षा कहे गये हैं ।

आठवें गुणस्थानक के अनन्तर नौवें अनिवृत्तिबादर नामक गुणस्थानक में 5, 4, 3, 2, और 1 प्रकृतिक ये पाँच बंधस्थान होते हैं । इसका कारण यह है कि नौवें गुणस्थानक के पाँच भाग हैं और प्रत्येक भाग में क्रम से मोहनीय कर्म की एक-एक प्रकृति का बंधविच्छेद होने से पहले भाग में 5, दूसरे भाग में 4, तीसरे भाग में 3, चौथे भाग में 2 और पाँचवें भाग में 1 प्रकृतिक बंधस्थान होने से नौवें गुणस्थानक में पाँच बंधस्थान माने हैं । इसके बाद सूक्ष्मसंपराय आदि आगे के गुणस्थानकों में बंध का अभाव हो जाने से बंधस्थान का निषेध किया है ।

गुणस्थानकों में मोहनीय कर्म के उदयस्थान

सत्ताइ दस उ मिच्छे, सासायणमीसए नवुक्कोसा ।
छाई नव उ अविरए, देसे पंचाइ अट्ठेव ।।49।।

विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि ।
अनिअट्टिबायरे पुण, इक्को व दुवे व उदयंसा ।।50।।

एगं सुहुमसरागो, वेएइ अवेअगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं, पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ।।51।।

–: शब्दार्थ :–

सत्ताइ दस उ=सात से लेकर दस प्रकृति तक,
मिच्छे=मिथ्यात्व गुणस्थानक में,
सासायण मीसाए=सास्वादन और मिश्र में,
नवुक्कोसा=सात से लेकर नौ प्रकृति तक,
छाईनवउ=छह से लेकर नौ तक,
अविरए=अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में,
देसे=देशविरति गुणस्थानक में,
पंचाइअट्ठेव=पाँच से लेकर आठ प्रकृति तक,

विरए खओवसमिए=प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानक में,
चउराई सत्त=चार से सात प्रकृति तक,
छच्च=और छह तक,
अपुव्वम्मि=अपूर्वकरण गुणस्थानक में,
अनिअट्टिबायरे=अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक में,

पुण=तथा, **इक्को**=एक, **व**=अथवा,	**दुवे**=दो, **उदयंसा**=उदयस्थान ।

एगं=एक, **सुहुमसरागो**=सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक वाला, **वेएइ**=वेदन करता है, **अवेअगा**=अवेदक, **भवे**=होते हैं,	**सेसा**=बाकी के गुणस्थानक वाले, **भंगाणं**=भंगों का, **च**=और, **पमाणं**=प्रमाण, **पुव्वुद्दिट्ठेण**=पहले कहे अनुसार, **नायव्वं**=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–मिथ्यात्व गुणस्थानक में सात से लेकर उत्कृष्ट दस प्रकृति पर्यन्त, सास्वादन और मिश्र में सात से नौ पर्यन्त, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में छह से नौ तक, देशविरति में पाँच से आठ पर्यन्त तथा–

प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थानक में चार से लेकर सात तक, अपूर्वकरण में चार से छह तक और अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में एक अथवा दो उदयस्थान मोहनीयकर्म के होते हैं ।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक वाला एक प्रकृति का वेदन करता है और इसके आगे के शेष गुणस्थानक वाले अवेदक होते हैं, इनके भंगों का प्रमाण पहले कहे अनुसार जानना चाहिए ।

मोहनीयकर्म की कुल उत्तर प्रकृतियाँ 28 हैं । उनमें से एक साथ अधिक से अधिक दस प्रकृतियों का और कम से कम एक प्रकृति का एक काल में उदय होता है । इस प्रकार एक से लेकर दस तक, दस उदयस्थान होना चाहिए किंतु तीन प्रकृतियों का उदय कहीं प्राप्त नहीं होता है क्योंकि दो प्रकृतिक उदयस्थान में हास्य-रति युगल या अरति-शोक युगल इन दोनों युगलों में से किसी एक युगल के मिलाने पर चार प्रकृतिक उदयस्थान ही प्राप्त होता है । अतः तीन प्रकृतिक उदयस्थान नहीं बतलाकर शेष 1, 2, 4, 5, 6, 7, 8, 9, और 10 प्रकृतिक ये कुल नौ उदयस्थान मोहनीयकर्म के बतलाये हैं ।

पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में 7, 8, 9, और 10 प्रकृतिक, ये चार उदय स्थान होते हैं ।

सास्वादन और मिश्र गुणस्थानक में सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये

तीन-तीन उदयस्थान होते हैं ।

सास्वादन गुणस्थानक में अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों मे से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियों का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इस स्थान में भय या जुगुप्सा में से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । इसमें भंगों की चौबीसी चार हैं । वे इस प्रकार हैं कि सात की एक, आठ की दो और नौ की एक ।

मिश्र गुणस्थानक में अनन्तानुबंधी को छोड़कर शेष अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कषायों में से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियों का नियम से उदय होने के कारण सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है । इसमें भंगों की एक चौबीसी होती है । सात प्रकृतिक उदयस्थान में भय अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ भंगों की दो चौबीसी होती हैं तथा सात प्रकृतिक उदयस्थान में भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान बनता है और भंगों की एक चौबीसी होती है । इस प्रकार मिश्र गुणस्थानक में 7, 8 और 9 प्रकृतिक उदयस्थान तथा भंगों की चार चौबीसी जानना चाहिये ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में छह से लेकर नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं-अर्थात् 6 प्रकृतिक, 7 प्रकृतिक, 8 प्रकृतिक और 9 प्रकृतिक ये चार उदयस्थान हैं । छह प्रकृतिक उदयस्थान में अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कषायों में से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियों का उदय होता है । इस स्थान में भंगों की एक चौबीसी होती है । इस छह प्रकृतिक उदयस्थान में भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है । यहाँ विकल्प से तीन प्रकृतियों के मिलाने के कारण भंगों की तीन चौबीसी होती हैं । उक्त छह प्रकृतियों में भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व, इस प्रकार इन दो प्रकृतियों को अनुक्रम से मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं । यह स्थान तीन विकल्पों से बनने के कारण

भंगों की तीन चौबीसियाँ होती हैं। छह प्रकृतिक उदयस्थान में भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर भी नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और विकल्प नहीं होने से भंगों की एक चौबीसी प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थानक में कुल मिलाकर आठ चौबीसी होती हैं।

देशविरत गुणस्थानक में पाँच से लेकर आठ प्रकृति पर्यन्त चार उदयस्थान हैं-पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि में से अन्यतम दो क्रोधादि, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल। यहाँ भङ्गों की एक चौबीसी होती है।

छह प्रकृतिक उदयस्थान उक्त पाँच प्रकृतियों में भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व में से किसी एक को मिलाने से बनता है। इस स्थान में प्रकृतियों के तीन विकल्प होने से तीन चौबीसी होती है। सात प्रकृतिक उदय स्थान के लिये पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा या भय, वेदक सम्यक्त्व या जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाया जाता है। यहाँ भी तीन विकल्पों के कारण भंगों की तीन चौबीसी जानना चाहिए। पूर्वोक्त पाँच प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को युगपत् मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। प्रकृतियों का विकल्प न होने से भंगों की एक चौबीसी होती है।

पाँचवें देशविरत गुणस्थानक के अनन्तर छठे, सातवें प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानकों का संकेत करने के लिए गाथा में पद दिया है- जिसका अर्थ क्षायोपशमिक विरत होता है। क्योंकि क्षायोपशमिक विरत, यह संज्ञा इन दो गुणस्थानकों की ही होती है। इसके आगे के गुणस्थानकों के जीवों को या तो उपशमक संज्ञा दी जाती है या क्षपक।

उपशमश्रेणि चढ़ने वाले को उपशमक और क्षपकश्रेणि चढ़ने वाले को क्षपक कहते हैं। अतः प्रमत्त और अप्रमत्त विरत इन दो गुणस्थानकों में उदयस्थानों को बतलाने के लिए गाथा में निर्देश किया है। अर्थात् चार से लेकर सात प्रकृति तक के चार उदयस्थान हैं-चार, पाँच, छह और सात प्रकृतिक। इन दोनों गुणस्थानकवर्ती जीवों के संज्वलन चतुष्क में से क्रोधादि कोई एक, तीन वेदों में से कोई एक वेद, दो युगलों में से कोई एक युगल, यह चार प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों की एक चौबीसी होती है।

भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व में से किसी एक को चार प्रकृतिक में मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकृतियाँ तीन हैं अतः यहाँ भंगों भी तीन चौबीसी बनती हैं। उस चार प्रकृतियों के साथ भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी भङ्गों की तीन चौबीसी होती है। भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व, इन तीनों प्रकृतियों को चार प्रकृतिक उदयस्थान में मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर विकल्प प्रकृतियाँ न होने से भंगों की एक चौबीसी होती है। कुल मिलाकर छठे और सातवें गुणस्थानक में से प्रत्येक में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होती हैं।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में चार, पाँच और छह प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान हैं। संज्वलन कषाय चतुष्क में से कोई एक कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद और दो युगलों में से कोई एक युगल के मिलाने से चार प्रकृतिक उदयस्थान बनता है तथा भंगों की एक चौबीसी होती है। भय, जुगुप्सा में से किसी एक को उक्त चार प्रकृतियों में मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकृतियाँ दो होने से यहाँ भंगों की दो चौबीसी प्राप्त होती हैं। भय जुगुप्सा को युगपत् चार प्रकृतियों में मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान जानना चाहिए तथा भंगों की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार आठवें गुणस्थानक में भंगों की चार चौबीसी होती हैं।

नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में दो उदयस्थान हैं-दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। यहाँ दो प्रकृतिक उदयस्थान में संज्वलन कषाय चतुष्क में से किसी एक कषाय और तीन वेदों में से किसी एक वेद का उदय होता है। यहाँ तीन वेदों से संज्वलन कषाय चतुष्क को गुणित करने पर 12 भंग प्राप्त होते हैं। अनन्तर वेद का विच्छेद हो जाने पर एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बंध के समय होता है। अर्थात् सवेद भाग तक दो प्रकृतिक और अवेद भाग में एक प्रकृतिक उदयस्थान समझना चाहिए।

यद्यपि एक प्रकृतिक उदय में चार प्रकृतिक बंध की अपेक्षा चार, तीन प्रकृतिक बंध की अपेक्षा तीन, दो प्रकृतिक बंध की अपेक्षा दो, और एक प्रकृतिक बंध की अपेक्षा एक, इस प्रकार कुल दस भंग बतलाये हैं किन्तु यहाँ बंधस्थानों के भेद की अपेक्षा न करके सामान्य से कुल चार भंग विवक्षित हैं।

दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में एक सूक्ष्म लोभ का उदय होने से वहाँ एक ही भंग होता है–इस प्रकार एक प्रकृतिक उदयस्थान में कुल पाँच भंग जानना चाहिए ।

दसवें गुणस्थानक के बाद आगे के उपशान्तमोह आदि गुणस्थानकों में मोहनीयकर्म का उदय न होने से उन गुणस्थानकों में उदय की अपेक्षा एक भी भंग नहीं होता है ।

उदयस्थानों के भंग

इक्क छडिक्कारिक्का-रसेव इक्कारसेव नव तिन्नि ।
एए चउवीसगया, बार दुगे पंच इक्कम्मि ।।52।।

–: शब्दार्थ :–

इक्क=एक,	**चउवीसगया**=चौबीसी भंग,
छडिक्कारि=छह, ग्यारह,	**बार**=बारह भंग,
इक्का-रसेव=ग्यारह,	**दुगे**=दो के उदय में,
नव=नौ,	**पंच**=पाँच,
तिन्नि=तीन,	**इक्कम्मि**=एक के उदय में ।
एए=यह,	

गाथार्थ :–दो और एक उदयस्थानों को छोड़कर दस आदि उदयस्थानों में अनुक्रम से एक, छह, ग्यारह, ग्यारह, नौ और तीन चौबीसी भंग होते हैं तथा दो के उदय में बारह और एक के उदय में पाँच भंग होते हैं ।

विवेचन :–मोहनीय कर्म के नौ उदयस्थानों को पहले बतलाया जा चुका है । दस प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की एक चौबीसी, नौ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की छह चौबीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान में ग्यारह चौबीसी, सात प्रकृतिक उदयस्थान में ग्यारह चौबीसी, छह प्रकृतिक उदयस्थान में ग्यारह चौबीसी, पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में नौ चौबीसी, चार प्रकृतिक उदयस्थान में तीन चौबीसी होती हैं तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह भंग एवं एक प्रकृतिक उदयस्थान के पाँच भंग हैं ।

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है अतः उसमें भंगों की एक चौबीसी कही है । यह उदयस्थान मिथ्यात्व गुणस्थानक में पाया जाता है । नौ प्रकृतिक

उदयस्थान में भंगों की छह चौबीसी होती हैं क्योंकि यह उदयस्थान मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानकों में पाया जाता है और मिथ्यात्व गुणस्थानक में प्रकृतिविकल्प तीन होने से तीन प्रकार से होता है, अतः वहाँ भंगों की तीन चौबीसी और शेष तीन गुणस्थानकों में प्रकृतिविकल्प न होने से प्रत्येक में भंगों की एक चौबीसी होती है ।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की ग्यारह चौबीसी होती हैं । यह आठ प्रकृतिक उदयस्थान पहले से लेकर पाँचवें गुणस्थानक तक होता है और मिथ्यात्व व अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकों में प्रकृतियों के तीन-तीन विकल्पों से तथा सास्वादन व मिश्र में दो-दो विकल्पों से बनता है और देशविरत गुणस्थानक में प्रकृतियों का विकल्प नहीं है । अतः मिथ्यात्व और अविरत में तीन-तीन, सास्वादन और मिश्र में दो-दो और देशविरत में एक, भंगों की चौबीसी होती है । इनका कुल जोड़ 3+3+2+2+1=11 होता है । इसी प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान में भी भंगों की ग्यारह चौबीसी हैं । यह उदयस्थान पहले से सातवें गुणस्थानक तक पाया जाता है तथा चौथे और पाँचवें गुणस्थानक में प्रकृतियों के तीन-तीन विकल्प होने से तीन प्रकार से बनता है । अतः इन दो गुणस्थानकों में से प्रत्येक में तीन-तीन और शेष पहले, दूसरे, तीसरे, छटे और सातवें, इन पाँच गुणस्थानकों में प्रकृतिविकल्प नहीं होने से भंगों की एक-एक चौबीसी होती है जिनका कुल जोड़ ग्यारह है ।

छह प्रकृतिक उदयस्थान में भी भंगों की ग्यारह चौबीसी इस प्रकार हैं- अविरत सम्यग्दृष्टि और अपूर्वकरण में एक-एक तथा देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत में तीन-तीन । इनका जोड़ कुल ग्यारह होता है । पाँच प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की नौ चौबीसी हैं । उनमें से देशविरत में एक, प्रमत्त और अप्रमत्त विरत गुणस्थानकों में से प्रत्येक में तीन-तीन और अपूर्वकरण में दो चौबीसी होती हैं । चार प्रकृतिक उदयस्थान में प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरण गुणस्थानक में भंगों की एक-एक चौबीसी होने से कुल तीन चौबीसी होती हैं । इन सब उदयस्थानों की कुल मिलाकर 52 चौबीसी होती हैं तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पाँच भंग हैं ।

इस प्रकार दस से लेकर एक प्रकृतिक उदयस्थानों में कुल मिला कर 52 चौबीसी और 17 भंग प्राप्त होते हैं ।

बारस-पणसट्ठि सया, उदयविगप्पेहिं मोहिआ जीवा ।
चुलसीई सत्तुत्तरि, पयविंदसएहिं विन्नेआ ।।53।।

–: शब्दार्थ :–

बारसपणसट्ठि सया=1265	**चुलसीई सत्तुत्तरि**
उदय विगप्पेहिं=उदय के विकल्प	**पयविंदसएहिं**=8477 पद के समूह से
मोहिआ=मोहित	
जीवा=सांसारिक जीव	**विन्नेआ**=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–ये संसारी जीव 1265 उदयविकल्पों और 8477 पदवृन्दों से मोहित हो रहे हैं ।

विवेचन :–गुणस्थानकों की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए–

क्रम सं.	गुणस्थानक	उदयस्थान	भंग	गुण्य (पद)	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
1.	मिथ्यात्व	7,8,9,10	8 चौबीसी	68	24	1632
2.	सास्वादन	7,8,9,10	4 चौबीसी	32	24	768
3.	मिश्र	7,8,9	4 चौबीसी	32	24	768
4.	अविरत	6,7,8,9	8 चौबीसी	60	24	1440
5.	देशविरत	5,6,7,8	8 चौबीसी	52	24	1248
6.	प्रमत्तविरत	4,5,6,7	8 चौबीसी	44	24	1056
7.	अप्रमत्तवि०	4,5,6,7	8 चौबीसी	44	24	1056
8.	अपूर्वकरण	4,5,6,7	4 चौबीसी	20	24	480
9.	अनिवृत्ति०	2,1	16 भंग	2/1	12/1	24/4
10.	सूक्ष्म	1	1	1	1	1

इसीलिए इन तीन योगों में भंगों की कुल बारह चौबीसी मानी हैं । इनको पूर्वोक्त 80 चौबीसी में मिला देने पर (80 + 12 = 92) कुल 92 चौबीसी होती हैं और इनके कुल भंग 92 को 24 से गुणा करने पर 2208 होते हैं ।

दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में भी योग 13 होते हैं और प्रत्येक योग की चार-चार चौबीसी होने से कुल भंगों की 52 चौबीसी होनी चाहिए थी किन्तु सास्वादन गुणस्थानक में नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है, अतः बारह योगों की तो 48 चौबीसी हुईं और वैक्रियमिश्र काययोग के 4 षोड़शक हुए । इस प्रकार 48 को 24 से गुणा करने पर 1152 भंग हुए तथा इस संख्या में चार षोड़शक के 64 भंग मिला देने पर सास्वादन गुणस्थानक में सब भंग 1216 होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक व वैक्रिय ये दो काययोग कुल दस योग हैं और प्रत्येक योग में भंगों की 4 चौबीसी । अतः 10 को चार चौबीसियों से गुणा करने पर 24 x 4 = 96 x 10 = 960 कुल भंग होते हैं ।

कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियों में भी उत्पन्न होता है । तथा चौथे गुणस्थानक के औदारिकमिश्र काययोग में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद नहीं होता है । क्योंकि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी तिर्यंच और मनुष्यों में अविरत सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः औदारिक मिश्र काययोग में भंगों की 8 चौबीसी प्राप्त न होकर आठ अष्टक प्राप्त होते हैं । स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी सम्यग्दृष्टि जीव औदारिक मिश्र काययोगी नहीं होता है । यह बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए ।

इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में दस योगों की 80 चौबीसी, वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग, इन दोनों में प्रत्येक के आठ-आठ षोड़शक और औदारिकमिश्र काययोग के आठ अष्टक होते हैं । जिनके भंग 80 x 24 = 1920 तथा 16 x 8 = 128 पुनः 16 x 8 = 128 और 8 x 8 = 64 होते हैं, इनका कुल जोड़ 1920 + 128 + 128 + 64 = 2240 है । योग की अपेक्षा ये 2240 भंग चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में प्राप्त होते हैं ।

पाँचवें देशविरति गुणस्थानक में औदारिकमिश्र, कार्मण काययोग और आहारकद्विक के बिना 11 योग होते हैं । यहाँ प्रत्येक योग में भंगों की 8

चौबीसी संभव हैं अतः यहाँ कुल भंग (11 x 8 = 88 x 24 = 2112) होते हैं ।

छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में औदारिकमिश्र और कार्मण काययोग के बिना 13 योग और प्रत्येक योग में भंगों की 8 चौबीसी होनी चाहिए । किन्तु ऐसा नियम है कि स्त्रीवेद में आहारक काययोग और आहारकमिश्र काययोग नहीं होता है । क्योंकि आहारक समुद्घात चौदह पूर्वधारी ही करते हैं । किन्तु स्त्रियों के चौदह पूर्वों का ज्ञान नहीं पाया जाता है ।

स्त्रीवेदी जीव तुच्छ, गारवबहुल, चंचल इन्द्रिय और बुद्धि से दुर्बल होते हैं । अतः वे बहुत अध्ययन करने में समर्थ नहीं हैं और उनमें दृष्टिवाद अंग का भी ज्ञान नहीं पाया जाता है ।

इसलिए ग्यारह योगों में तो भंगों की आठ-आठ चौबीसी प्राप्त होती हैं किन्तु आहारक और आहारकमिश्र काययोगों में भंगों के आठ-आठ षोड़शक प्राप्त होते हैं । इस प्रकार यहाँ 11 x 8 = 88 x 24 = 2112 तथा 16 x 8 = 128 और 16 x 8 = 128 भंग हैं । इन सबका जोड़ 2112 + 128 + 128 = 2368 होता है । अतः प्रमत्त-संयत गुणस्थानक में कुल भंग 2368 होते हैं ।

जो जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को प्राप्त करके अप्रमत्तसंयत हो जाता है, उसके अप्रमत्तसंयत अवस्था में रहते हुए ये दो योग होते हैं । वैसे अप्रमत्तसंयत जीव वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारम्भ नहीं करता है, अतः इस गुणस्थानक में वैक्रियमिश्र काययोग और आहारकमिश्र काययोग नहीं माना है । इसी कारण सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक, वैक्रिय व आहारक काययोग, ये ग्यारह योग होते हैं । इन योगों में भंगों की आठ-आठ चौबीसी होनी चाहिए थीं । किन्तु आहारक काययोग में स्त्रीवेद नहीं होने से दस योगों में तो भंगों की आठ चौबीसी और आहारक काययोग में आठ षोडशक प्राप्त होते हैं । इन सब भंगों का जोड़ 2048 होता है जो अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में योगापेक्षा होते हैं ।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में नौ योग और प्रत्येक योग में भंगों की चार चौबीसी होती हैं । अतः यहाँ कुल भंग 864 होते हैं । नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में योग 9 और भंग 16 होते हैं अतः 16 को 9 से गुणित करने पर यहाँ कुल भंग 144 प्राप्त होते हैं तथा दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में योग

9 और भंग 1 है । अतः यहाँ कुल 9 भंग प्राप्त होते हैं ।

उपर्युक्त दसों गुणस्थानकों के कुल भंगों को जोड़ने पर 2208 + 1216 + 960 + 2240 + 2112 + 2368 + 2048 + 864 + 144 + 9 = 14169 प्रमाण होता है ।

अर्थात् योगों की अपेक्षा मोहनीयकर्म के कुल उदयविकल्पों का प्रमाण 14169 होता है ।

योगों की अपेक्षा गुणस्थानकों में उदयविकल्पों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए–

गुणस्थानक	योग		गुणकार	जोड़	कुल
मिथ्यात्व	13	10	8 x 24 = 192	192x10=1920	2208
		3	4 x 24 = 96	96 x 3 = 288	
सास्वादन	13	12	4 x 24 = 96	96 x 22 = 1152	1216
		1	4 x 16 = 64	64 x 1 = 64	
मिश्र	10	10	4 x 24 = 96	96 x 10 = 960	960
अविरत	13	10	8 x 24 = 192	192 x 10 = 1920	2240
		2	8 x 16 = 128	128 x 2 = 256	
		1	8 x 8 = 64	64 x 1 = 64	
देशविरत	11	11	8 x 24 = 192	192 x 11 = 2112	2112
प्रमत्तसंयत	13	11	8 x 24 = 192	192 x 11 = 2112	2368
		2	8 x 16 = 128	128 x 2 = 256	
अप्रमत्तसं०	11	10	8 x 24 = 192	192 x 10 = 1920	2048
		1	8 x 16 = 128	128 x 1 = 128	
अपूर्व०	9	3	4 x 24 = 96	96 x 9 = 864	864
अनिवृत्ति०	9	9	16	16 x 9 = 144	144
सूक्ष्म०	9	9	1	9 x 1 = 9	9
				कुल जोड़	14,169

अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य, चउरो अ हुंति चउवीसा ।
मिच्छाइअपुव्वंता, बारस पणगं च अनिअट्टी ।।54।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठग=आठ,	**मिच्छाइ**=मिथ्यात्व गुणस्थानक से,
चउ=चार,	**अपुव्वंता**=अपूर्वकरण तक,
चउर=चार गुणस्थानक,	**बारस**=बारह अङ्ग,
अट्ठगा=आठ,	**पणगं**=पाँच,
चउरो=चार,	**च**=अनिवृत्ति बादर में चार एवं सूक्ष्म संपराय,
हुंति=होते हैं,	**अनिअट्टी**=अनिवृत्ति बाँधा ।
चउवीसा=चौबीसी भंग	

गाथार्थ :–मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण तक आठ गुणस्थानकों भंगों की क्रम से आठ, चार, चार, आठ, आठ, आठ, आठ और चार चौबीसी होती है तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में बारह और पाँच भंग होते हैं ।

विवेचन :–मिथ्यात्व गुणस्थानक में आठ चौबीसी, सास्वादन में चार चौबीसी, मिश्र में चार चौबीसी, भंग होते हैं ।

अविरत, देशविरति, प्रमत्त और अप्रमत्त में आठ आठ चौबीसी तथा अपूर्वकरण में चार चौबीसी भंग होते हैं ।

इस प्रकार कुल 52 चौबीसी होती हैं ।

अनिवृत्ति गुणस्थानक में दो के उदय में 12 भंग व एक के उदय में चार भंग होते हैं ।

सूक्ष्मसंपराय में 1 के उदय में 1 भंग होता है । इस प्रकार 17 भंग होते हैं ।

52 को 24 से गुणने पर 1248 तथा 17 जोड़ने पर 1265 भंग होते है ।

योग, उपयोग और लेश्याओं में भंग

जोगोवओगलेसाइएहिं, गुणिआ हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे, हवंति ते तत्थ गुणकारा ।।55।।

–: शब्दार्थ :–

जोगोवओगलेसाइएहिं=योग, उपयोग और लेश्यादिक से,	**जत्थ गुणट्ठाणे**=जिस गुणस्थानक में,
गुणिआ=गुणा,	**हवंति**=होते हैं,
हवंति=होते हैं,	**ते**=उतने,
कायव्वा=करना चाहिए,	**तत्थ**=उसमें,
जे=जो योगादि,	**गुणकारा**=गुणकार संख्या ।

गाथार्थ :–पूर्वोक्त उदयभङ्गों को योग, उपयोग और लेश्या आदि से गुणा करना चाहिए । इसके लिए जिस गुणस्थानक में जितने योगादि हों वहाँ उतने गुणकार संख्या होती है ।

विवेचन :–गुणस्थानक में मोहनीय कर्म के उदयविकल्पों और पदवृन्दों का निर्देश पूर्व में किया जा चुका है । अब इस गाथा में योग, उपयोग और लेश्याओं की अपेक्षा उनकी संख्या का कथन करते हैं कि वह संख्या कितनी-कितनी होती है ।

गुणस्थानकों में उदय पद

अट्ठट्ठी बत्तीसं, बत्तीसं सट्ठिमेव बावन्ना ।
चोआलं दोसु वीसा, विअ मिच्छमाईसु सामन्नं ।।56।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठट्ठी=अड़सठ,	**वीसा**=बीस,
बत्तीसं=बत्तीस,	**विअ**=पादपूर्ति में,
सट्ठीमेव=साठ,	**मिच्छमाइसु**=मिथ्यात्व आदि के विषय में
बावन्ना=बावन,	**सामन्नं**=सामान्य ।
चोआलं=चुमालीस,	
दोसु=दो गुणस्थानक में,	

गाथार्थ :–मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानकों में क्रम से 68, 32, 32, 60, 52, 44, 44 और 20 उदयपद होते हैं ।

यहाँ उदयपद से उदयस्थानों की प्रकृतियाँ ली गई हैं । जैसे कि मिथ्यात्व गुणस्थानक में 10, 9, 8 और 7 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं और इनमें से 10 प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अतः उनकी दस प्रकृतियाँ हुईं । 9 प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनने के कारण तीन हैं, अतः उनकी 27 प्रकृतियों हुईं । आठ प्रकृतिक उदयस्थान भी तीन प्रकृतियों के विकल्प से बनता है अतः उसकी 24 प्रकृतियाँ हुईं और सात प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अतः उसकी 7 प्रकृतियाँ हुईं । इस प्रकार मिथ्यात्व में चारों उदयस्थानों की 10 + 27 + 24 + 7 = 68 प्रकृतियाँ होती हैं । सास्वादन आदि गुणस्थानकों में जो 32 आदि उदयपद बतलाये हैं, उनको भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

अब यदि इन आठ गुणस्थानकों के सब उदयपद (68 से लेकर 20 तक) जोड़ दिये जायें तो इनका कुल प्रमाण 352 होता है । किन्तु इनमें से प्रत्येक उदयपद में चौबीस-चौबीस भंग होते हैं, अतः 352 को 24 से गुणित करने पर 8448 प्राप्त होते हैं । ये पदवृन्द अपूर्वकरण गुणस्थानक तक के जानना चाहिए । इनमें अनिवृत्तिकरण के 28 और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक का 1, कुल 29 भंग मिला देने पर 8448 + 29 = 8477 प्राप्त होते हैं । ये मिथ्यात्व गुणस्थानक से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक तक के सामान्य से पदवृन्द हुए ।

अब यदि योगों की अपेक्षा दसों गुणस्थानकों के पदवृन्द लाना चाहें तो दो बातों पर ध्यान देना होगा-1. किस गुणस्थानक में पदवृन्द और योगों की संख्या कितनी है और 2. उन योगों में से किस योग में कितने पदवृन्द सम्भव हैं । इन्हीं दो बातों को ध्यान में रखकर अब योगापेक्षा गुणस्थानकों के पदवृन्द बतलाते हैं ।

यह पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि मिथ्यात्व गुणस्थानक में 4 उदयस्थान और उनके कुल पद 68 हैं । इनमें से एक सात प्रकृतिक उदयस्थान, दो आठ प्रकृतिक उदयस्थान और एक नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनंतानुबंधी के उदय से रहित है जिनके कुल उदयपद 32 होते हैं और एक आठ प्रकृतिक उदयस्थान, दो नौ प्रकृतिक उदयस्थान और एक दस प्रकृतिक उदयस्थान,

ये चार उदयस्थान अनन्तानुबंधी के उदय सहित हैं जिनके कुल उदयपद 36 होते हैं। इनमें से पहले के 32 उदयपद, 4 मनोयोग, 4 वचनयोग, औदारिक काययोग और वैक्रिय काययोग, इन दस योगों के साथ पाये जाते हैं। क्योंकि यहाँ अन्य योग संभव नहीं हैं, अतः इन 32 को 10 से गुणित करने पर 320 होते हैं और 36 उदयपद पूर्वोक्त दस तथा औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मणयोग इन 13 योगों के साथ पाये जाते हैं। क्योंकि ये पद पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में संभव हैं, अतः 36 को 13 से गुणित करने पर 468 प्राप्त होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानक के कुल पदवृन्द प्राप्त करने की रीति यह है कि 320 और 468 को जोड़कर इनको 24 से गुणित कर दें तो मिथ्यात्व गुणस्थानक के कुल पदवृन्द आ जाते हैं, जो (320 + 468) = 788 x 24 = 18912 होते हैं।

सास्वादन गुणस्थानक में योग 13 और उदयपद 32 हैं। सो 12 योगों में तो ये सब उदयपद संभव हैं किन्तु सास्वादन सम्यग्दृष्टि को वैक्रियमिश्र में नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है, अतः यहाँ नपुंसकवेद के भङ्ग कम कर देने चाहिए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि 13 योगों की अपेक्षा 12 से 32 को गुणित करके 24 से गुणित करें और वैक्रियमिश्र की अपेक्षा 32 को 16 से गुणित करें। इस प्रकार (12 x 32) = 384 x 24 = 9216 तथा वैक्रियमिश्र के 32 x 16 = 512 हुए और इन 9216 और 512 का कुल जोड़ 9728 होता है। यही 9728 पदवृन्द सास्वादन गुणस्थानक में होते हैं।

मिश्र गुणस्थानक में दस योग और उदयपद 32 हैं। यहाँ सब योगों में सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव हैं, अतः 10 को 32 से गुणित करके 24 से गुणित करने पर (32 x 10) = 320 x 24 = 7680) पदवृन्द प्राप्त होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में योग 13 और उदयपद 60 होते हैं। सो यहाँ 10 योगों में तो सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग संभव होने से 10 से 60 को गुणित करके 24 से गुणित कर देने पर 10 योगों संबंधी कुल भङ्ग 14400 प्राप्त होते हैं। किन्तु वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होने से स्त्रीवेद संबंधी भंग प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिए यहां 2 को 60 से गुणित करके 16 से गुणित करने पर उक्त दोनों योगों सम्बन्धी कुल भंग 1920 प्राप्त होते हैं तथा औदारिकमिश्र काययोग में

स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदय नहीं होने से दो योगों संबंधी भंग प्राप्त नहीं होते हैं। अतः यहाँ 60 को 8 से गुणित करने पर औदारिक मिश्र काययोग की अपेक्षा 480 भंग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 13 योग संबंधी कुल पदवृन्द 14400 + 1920 + 480 = 16800 होते हैं।

देशविरत गुणस्थानक में योग 11 और पद 52 हैं और यहाँ सब योगों में सब उदयपद और उनके भंग सम्भव हैं अतः यहाँ 11 से 52 को गुणित करके 24 से गुणित करने पर कुल भंग 13728 होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में योग 13 और पद 44 हैं किन्तु आहारकद्विक में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है, इसलिए 11 योगों की अपेक्षा तो 11 को 44 से गुणित करके 24 से गुणित करने से (11 x 44) = 484 x 24 = 11616 हुए और आहारकद्विक की अपेक्षा 2 से 44 को गुणित करके 16 से गुणित करें तो (2 x 44) = 88 x 16 = 1408 हुए। तब 11616 + 1408 को जोड़ने पर कुल 13024 पदवृन्द प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में प्राप्त होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में भी योग 11 और पद 44 हैं, किन्तु आहारक काययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिए 10 योगों की अपेक्षा 10 से 44 को गुणित करके 24 से गुणित करें और आहारक काययोग की अपेक्षा 44 से 16 को गुणित करें। इस प्रकार करने पर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में कुल पदवृन्द 11264 होते हैं।

अपूर्वकरण में योग 9 और पद 20 होते हैं। अतः 20 को 9 से गुणित करके 24 से गुणित करने पर यहाँ कुल पदवृन्द 4320 प्राप्त होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में योग 9 और भंग 28 हैं। यहाँ योग पद नहीं है अतः पद न कहकर भंग कहे हैं। सो इन 9 को 28 से गुणित कर देने पर अनिवृत्तिबादर में 252 पदवृन्द होते हैं तथा सूक्ष्मसंपराय में योग 9 और भंग 1 है, अतः 9 से 1 को गुणित करने पर 9 भंग होते हैं।

इस प्रकार पहले से लेकर दसवें गुणस्थानक तक के पदवृन्दों को जोड़ देने पर सब पदवृन्दों की कुल संख्या 95717 होती है।

अर्थात् योगों की अपेक्षा मोहनीयकर्म के सब पदवृन्द पंचानवे हजार सातसौ सत्रह 95717 होते हैं।

उक्त पदवृन्दों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए —

गुणस्थानक	योग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल	(पदवृन्द)
मिथ्यात्व	13	36	24	11232	18912
	10	32	24	7680	
सास्वादन	12	32	24	9216	9728
	1	32	16	512	–
मिश्र	10	32	24	7680	7680
अविरत-	10	60	24	14400	16800
सम्यग्दृष्टि	2	60	16	1920	
	1	60	8	480	
देशविरत	11	52	24	13728	13728
प्रमत्तसंयत	11	44	24	11616	13024
	2	44	16	1408	
अप्रमत्तसंयत	10	44	24	10560	11264
	1	44	16	704	
अपूर्वकरण	9	20	24	4320	4320
अनिवृत्ति बादर	9	2	12	216	252
	9	1	4	36	
सूक्ष्मसंपराय	9	1	1	9	9
					95717
					पदवृन्द

गुणस्थानकों में मोहनीयकर्म के संवेद्य भंग

तिन्नेगे एगेगं तिग, मीसे पंच चउसु तिग पुव्वे ।
इक्कार बायरम्मी, सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ।।57।।

–: शब्दार्थ :–

तिन्ने=तीन सत्तास्थान,	**तिग पुव्वे**=तीन अपूर्वकरण में,
एगे=एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में,	**इक्कार**=ग्यारह,
एगे=एक में (सास्वादन में),	**बायरम्मी**=अनिवृत्तिबादर में,
एगं=एक,	**सुहुमे**=सूक्ष्मसंपराय में,
तिग=तीन,	**चउ**=चार,
मीसे=मिश्र में,	**तिन्नि**=तीन,
पंच=पाँच,	**उवसंते**=उपशान्त मोह में ।
चउसु=अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक आदि चार में,	

गाथार्थ :–मोहनीयकर्म के मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीन, सास्वादन में एक, मिश्र में तीन, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच, अपूर्वकरण में तीन, अनिवृत्तिबादर में ग्यारह, सूक्ष्मसंपराय में चार और उपशान्तमोह में तीन सत्तास्थान होते हैं ।

विवेचन :–गाथा में मोहनीय कर्म के गुणस्थानकों में सत्तास्थान बतलाये हैं । प्रत्येक गुणस्थानक में मोहनीय कर्म के सत्तास्थानकों के होने के कारण का विचार पहले किया जा चुका है । अतः यहाँ संकेत मात्र करते हैं कि- पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में 28, 27 और 26 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं तथा सास्वादन गुणस्थानक में सिर्फ एक 28 प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है । मिश्र गुणस्थानक में 28, 27 और 24 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं ।

इसके बाद चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक चार गुणस्थानकों में से प्रत्येक में 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं । आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में 28, 24 और 21 प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान हैं । नौवें गुणस्थानक-अनिवृत्तिबादर

में 28, 24, 21, 13, 12, 11, 5, 4, 3, 2 और 1 प्रकृतिक, ये ग्यारह सत्तास्थान हैं । सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 28, 24, 21 और 1 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं तथा उपशांतमोह गुणस्थानक में 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं ।

इस प्रकार से गुणस्थानकों में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों को बतलाने के बाद अब प्रसंगानुसार संवेद्य भंगों का विचार करते हैं–

मिथ्यात्व गुणस्थानक में 22 प्रकृतिक बंधस्थान और 7, 8, 9 और 10 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं । इनमें से 7 प्रकृतिक उदयस्थान में एक 28 प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है किन्तु शेष तीन 8, 9 और 10 प्रकृतिक उदयस्थानों में 28, 27 और 26 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान संभव हैं । इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में कुल सत्तास्थान 10 हुए–1 + (3 x 3) = 10 ।

सास्वादन गुणस्थानक में 21 प्रकृतिक बंधस्थान और 7, 8, 9 प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान रहते हुए प्रत्येक में 28 प्रकृतिक सत्तास्थान हैं । इस प्रकार यहाँ तीन सत्तास्थान हुए ।

मिश्र गुणस्थानक में 17 प्रकृतिक बंधस्थान तथा 7, 8 और 9 प्रकृतिक, इन तीन उदयस्थानों के रहते हुए प्रत्येक में 28, 27 और 24 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । अतः यहाँ कुल 9 सत्तास्थान हुए ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में एक 17 प्रकृतिक बंधस्थान तथा 6, 7, 8 और 9 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं और इनमें से 6 प्रकृतिक उदयस्थान में तो 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं तथा 7 और 8 में से प्रत्येक उदयस्थान में 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं । 9 प्रकृतिक उदयस्थान में 28, 24, 23 और 22 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल 17 सत्तास्थान हुए ।

देशविरत गुणस्थानक में 13 प्रकृतिक बंधस्थान तथा 5, 6, 7 और 8 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं । इनमें से 5 प्रकृतिक उदयस्थान में तो 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान तथा 6 और 7 प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा 8 प्रकृतिक उदयस्थान में 28, 24, 23 और 22 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं । इस प्रकार यहाँ कुल 17 सत्तास्थान होते हैं ।

प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 9 प्रकृतिक बंधस्थान तथा 4, 5, 6 और 7 प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमें से 4 प्रकृतिक उदयस्थान में 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। 5 और 6 प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक में 28, 24, 23, 22 और 21 प्रकृतिक ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं तथा 7 प्रकृतिक उदयस्थान में 28, 24, 23 और 22 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ कुल 17 सत्तास्थान होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में पूर्वोक्त प्रमत्तसंयत गुणस्थानक की तरह 17 सत्तास्थान जानना चाहिए।

अपूर्वकरण गुणस्थानक में 9 प्रकृतिक बंधस्थान और 4, 5 तथा 6 प्रकृतिक उदयस्थान तथा इन तीन उदयस्थानों में से प्रत्येक में 28, 24 और 21 प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल 9 सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में 5, 4, 3, 2 और 1 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान तथा 2 और 1 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान हैं। इनमें से 5 प्रकृतिक बंधस्थान और 2 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए 28, 24, 21, 13, 12 और 11 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। 4 प्रकृतिक बंधस्थान और 1 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24, 21, 11, 5 और 4 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान हैं। 3 प्रकृतिक बंधस्थान और 1 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24, 21, 4 और 3 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान हैं। 2 प्रकृतिक बंधस्थान और 1 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते 28, 24, 21, 3 और 2 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं और 1 प्रकृतिक बंधस्थान व 1 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए 28, 24, 21, 2 और 1 प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहाँ कुल 27 सत्तास्थान हुए।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में बंध के अभाव में एक प्रकृतिक उदयस्थान तथा 28, 24, 21 और 1 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा उपशान्तमोह गुणस्थानक में बंध और उदय के बिना 28, 24 और 21 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

किस बंधस्थान और उदयस्थान के रहते हुए कितने सत्तास्थान होते हैं, इसका विशेष विवेचन ओघ प्ररूपणा के प्रसंग में किया जा चुका है, अतः वहां से जानना चाहिए।

गुणस्थानकों में नामकर्म के संवेद्य भंग

छन्नव छक्कं तिग सत्त दुगं, दुग तिग दुगं तिअट्ठ चऊ ।
दुग छच्चउ दुग पण चउ, चउ दुग चउ पणग एगचऊ ।।58।।
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ, छउमत्थ-केवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ, अट्ठ चउ दु छक्कमुदयंसा ।।59।।

–: शब्दार्थ :–

छन्नव छक्कं=छह, नौ और छह, **तिग सत्त दुगं**=तीन, सात और दो, **दुग तिग दुगं**=दो, तीन और दो, **तिअट्ठ चऊ**=तीन, आठ और चार **दुग छच्चउ**=दो, छह और चार,	**दुग पण चउ**=दो, पाँच और चार, **चउ दुग चउ**=चार, दो और चार, **पणग एगचऊ**=पाँच, एक और चार ।

एगेगमट्ठ=एक, एक और आठ, **छउमत्थ**=छद्मस्थ (उपशान्तमोह, क्षीणमोह) **केवलिजिणाणं**=केवलि जिन (सयोगि और अयोगि केवली) को	अनुक्रम से, **एग चऊ**=एक और चार, **एग चऊ**=एक और चार, **अट्ठ चउ**=आठ और चार, **दु छक्कं**=दो और छह, **उदयंसा**=उदय और सत्ता स्थान ।

गाथार्थ :–छह, नौ, छह, तीन, सात और दो, दो, तीन और दो, तीन, आठ और चार, दो, छह और चार, दो, पाँच और चार, चार, दो और चार, पाँच, एक और चार तथा

एक, एक और आठ, एक, एक और आठ, इस प्रकार अनुक्रम से बंध, उदय और सत्तास्थान आदि के दस गुणस्थानकों में होते हैं तथा छद्मस्थ जिन (11 और 12 गुणस्थानक) में तथा केवली जिन (13, 14 गुणस्थानक)

में अनुक्रम से एक, चार और एक, चार तथा आठ और चार, दो और छह उदय व सत्तास्थान होते हैं । जिनका विवरण इस प्रकार है–

गुणस्थानक	बन्धस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
1. मिथ्यात्व	6	9	6
2. सास्वादन	3	7	2
3. मिश्र	2	3	2
4. अविरत	3	8	4
5. देशविरत	2	6	4
6. प्रमत्तविरत	2	5	4
7. अप्रमत्तविरत	4	2	4
8. अपूर्वकरण	5	1	4
9. अनिवृत्तिकरण	1	1	8
10. सूक्ष्मसंपराय	1	1	8
11. उपशान्तमोह	0	1	4
12. क्षीणमोह	0	1	4
13. सयोगिकेवली	0	8	4
14. अयोगिकेवली	0	2	6

विशेषार्थ :–इन दो गाथाओं में गुणस्थानकों में नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों को बतलाया है ।

(1) मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक

पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक नें नामकर्म के बंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान क्रम से छह, नौ और छह हैं । 23, 25, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक, ये छह बंधस्थान हैं । इनमें से 23 प्रकृतिक बंधस्थान अपर्याप्त

एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव को होता है। इसके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक और साधारण के विकल्प से चार भंग होते हैं। 25 प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध होते समय 20 भंग होते हैं तथा शेष अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि की अपेक्षा एक-एक भंग होता है। इस प्रकार 25 प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग 25 हुए।

26 प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बंध करने वाले जीव के होता है। इसके 16 भंग होते हैं तथा 28 प्रकृतिक बंधस्थान देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के होता है। इनमें से देवगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बंध होते समय तो 8 भंग होते हैं और नरक गति के योग्य प्रकृतियों का बंध होते समय 1 भंग होता है। इस प्रकार 28 प्रकृतिक बंधस्थान के 9 भंग हैं।

29 प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध होते समय 4608 भंग तथा मनुष्य गति के योग्य 29 प्रकृतियों का बंध होते समय भी 4608 भंग होते हैं। इस प्रकार 29 प्रकृतिक बंधस्थान के कुल 9240 भंग होते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य 29 प्रकृतिक बंधस्थान मिथ्यादृष्टि के नहीं होता है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यक्त्व के निमित्त से होता है, अतः यहाँ देवगति के योग्य 29 प्रकृतिक बंधस्थान नहीं कहा है।

30 प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध होते समय 4608 भंग होते हैं। इस प्रकार 30 प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग 4632 होते हैं।

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य और आहारकद्विक के साथ देवगति के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध होता है। किन्तु ये दोनों ही स्थान मिथ्यादृष्टि के सम्भव नहीं होते हैं, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यक्त्व के निमित्त से और आहारकद्विक का बंध संयम के निमित्त से होता है।

मिथ्यात्व में बंध-भंग

चउ पणवीसा सोलस, नव चत्ताला सया य बाणउई।
बत्तीसुत्तरछायाल-सया, मिच्छस्स बन्धविही ॥60॥

–: शब्दार्थ :–

चउ=चार भंग,	**चत्तालासयाय बाणउई**=9240,
पणवीसा=पच्चीस,	**बत्तीसुत्तरछायाल-सया**=4632,
सोलस=सोलह,	**मिच्छस्स**=मिथ्यात्व गुणस्थानक,
नव=नौ,	**बन्धविही**=बन्ध के भंग

गाथार्थ :–मिथ्यादृष्टि जीव के जो 23, 25, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थान हैं, उनके क्रमशः 4, 25, 16, 9, 9240 और 4632 भंग होते हैं।

विवेचन :–मिथ्यादृष्टि जीव के 31 और 1 प्रकृतिक बंधस्थान सम्भव नहीं होने से उनका यहाँ विचार नहीं किया गया है।

इस प्रकार से मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक के छह बंधस्थानों का कथन किया गया। अब उदयस्थानों का निर्देश करते हैं कि 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान हैं। नाना जीवों की अपेक्षा इनका पहले विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, अतः उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में इन उदयस्थानों के सब भंग 7773 हैं। वे इस प्रकार हैं कि 21 प्रकृतिक उदयस्थान के 41 भंग होते हैं। एकेन्द्रियों के 5, विकलेन्द्रियों के 9, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 9, मनुष्यों के 9, देवों के 8 और नारकों का 1। इनका कुल जोड़ 41 होता है। 24 प्रकृतिक उदयस्थान के 11 भंग हैं जो एकेन्द्रियों में पाये जाते हैं, अन्यत्र 24 प्रकृतिक उदयस्थान संभव नहीं हैं। 25 प्रकृतिक उदयस्थान के 32 भंग होते हैं-एकेन्द्रिय के 7, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 8, वैक्रिय मनुष्यों के 8, देवों के 8 और नारकों का 1। इनका कुल जोड़ 7 + 8 + 8 + 8 + 1 = 32 होता है।

26 प्रकृतिक उदयस्थान के 600 भंग होते हैं–एकेन्द्रियों के 13, विकलेन्द्रियों के 9, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 289 और मनुष्यों के भी 289 । इनका जोड़ 13 + 9 + 289 + 289 = 600 है । 27 प्रकृतिक उदयस्थान के 31 भंग हैं–एकेन्द्रियों के 6, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 8, वैक्रिय मनुष्यों के 8, देवों के 8 और नारकों का 1 । 28 प्रकृतिक उदयस्थान के 1199 भंग हैं– विकलेन्द्रियों के 6, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 576, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 16, मनुष्यों के 576, वैक्रिय मनुष्यों के 8, देवों के 16 और नारकों का 1 । कुल मिलाकर ये भंग 6 + 576 + 16 + 576 + 8 +16 + 1 = 1199 होते हैं । 29 प्रकृतिक उदयस्थान के 1781 भंग हैं–विकलेन्द्रियों के 12, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 1152, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 16, मनुष्यों के 576, वैक्रिय मनुष्यों के 8, देवों के 16, और नारकों का 1 । कुल मिलाकर ये सब भंग 1781 होते हैं ।

30 प्रकृतिक उदयस्थान के 2914 भंग हैं-विकलेन्द्रियों के 18, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 1728, वैक्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 8, मनुष्यो के 1152, देवों के 8 । इनका जोड़ 18 + 1728 + 8 + 1152 + 8 = 2914 होता है । 31 प्रकृतिक उदयस्थान के भंग 1164 होते हैं–विकलेन्द्रियों के 12, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 1152 जो कुल मिलाकर 1164 होते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान हैं और उनके क्रमशः 41, 11, 32, 600, 31, 1199, 1781, 2914 और 1164 भंग हैं । इन भंगों का कुल जोड़ 7773 है । वैसे तो इन उदयस्थानों के कुल भंग 7791 होते हैं लेकिन इनमें से केवली के 8, आहारक साधु के 7, और उद्योत सहित वैक्रिय मनुष्य के 3, इन 18 भंगों को कम कर देने पर 7773 भंग ही प्राप्त होते हैं ।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक में छह सत्तास्थान हैं । जो 92, 89, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक हैं । मिथ्यात्व गुणस्थानक में आहारक-चतुष्क और तीर्थंकर नाम की सत्ता एक साथ नहीं होती है, जिससे 93 प्रकृतिक सत्तास्थान यहाँ नहीं बताया है । 92 प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीवों के संभव है, क्योंकि आहारकचतुष्क की सत्ता वाला किसी भी गति में उत्पन्न

होता है । 89 प्रकृतिक सत्तास्थान सबके नहीं होता है किन्तु जो नरकायु का बंध करने के पश्चात् वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है और अंत समय में मिथ्यात्व को प्राप्त होकर नरक में जाता है उसी मिथ्यात्वी के अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व में 89 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

88 प्रकृतियों की सत्ता चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि जीवों के संभव है क्योंकि चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि जीवों के 88 प्रकृतियों की सत्ता होने में कोई बाधा नहीं है । 86 और 80 प्रकृतियों की सत्ता उन एकेन्द्रिय जीवों के होती है जिन्होंने यथायोग्य देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियों की उद्वेलना की है तथा ये जीव जब एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तब इनके भी सब पर्याप्तियों के पर्याप्त होने के अनन्तर अंतर्मुहूर्त काल तक 86 और 80 प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है । किन्तु इसके आगे वैक्रिय शरीर आदि का बंध होने के कारण इन स्थानों की सत्ता नहीं रहती है ।

78 प्रकृतियों की सत्ता उन अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के होती है जिन्होंने मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वेलना कर दी है तथा जब ये जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं तब इनके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक 78 प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है । इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानक में 92, 89, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि जीव के बंध, उदय और सत्तास्थान

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23	4	21	32	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	23	92, 88, 86, 80, 78
		26	600	92, 88, 86, 80, 78
		27	22	92, 88, 86, 80
		28	1182	92, 88, 86, 80

		29	1764	92, 88, 86, 80
		30	2906	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
25 प्रकृतिक	25	21	40	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	31	92, 88, 86, 80, 78
		26	600	92, 88, 86, 80, 78
		27	30	92, 88, 86, 80
		28	1198	92, 88, 86, 80
		29	1780	92, 88, 86, 80
		30	2914	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
26 प्रकृतिक	16	21	40	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	31	92, 88, 86, 80, 78
		26	600	92, 88, 86, 80, 78
		27	30	92, 88, 86, 80
		28	1198	92, 88, 86, 80
		29	1780	92, 88, 86, 80
		30	2914	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
28 प्रकृतिक	9	21	16	92, 80
		25	17	92, 88
		26	576	92, 88
		27	17	92, 88

		28	1179	92, 88
		29	1755	92, 88
		30	2890	92, 89, 88, 86
		31	1152	92, 88, 86
29 प्रकृतिक	9240	21	41	92, 89, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	32	92, 89, 88, 86, 80, 78
		26	300	92, 89, 88, 86, 80, 78
		27	31	92, 89, 88, 86, 80
		28	1196	92, 89, 88, 86, 80
		29	1781	92, 89, 88, 86, 80
		30	2914	92, 89, 88, 86, 80
		31	1164	92, 89, 88, 86
30 प्रकृतिक	4632	21	41	92, 89, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	32	92, 89, 88, 86, 80, 78
		26	600	92, 88, 86, 80, 78
		27	31	92, 89, 88, 86, 80
		28	1196	92, 89, 88, 86, 80
		29	1781	92, 89, 88, 86, 80
		30	2914	92, 89, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
6	13926	53	46388	233

सास्वादन में भंग

अट्ठ सया चउसट्ठी, बत्तीससयाइं सासणे भेआ ।
अट्ठावीसाईसुं, सव्वाणऽट्ठहिग छन्नउई ।।61।।

–: शब्दार्थ :–

अट्ठ=आठ	**अट्ठावीसाईसुं**=28 आदि तीन बंध स्थानक,
सया चउसट्ठी=6400,	**सव्वाण**=सब की संख्या,
बत्तीस सयाइं=3200,	**अट्ठहिगछन्नउई**=9608
सासणे=सास्वादन गुणस्थानक,	
भेआ=बंध के भेद,	

गाथार्थ :–सास्वादन में 28 आदि बंधस्थानों के क्रम से 8, 6400 और 3200 भेद होते हैं और ये सब मिलकर 9608 होते हैं ।

विवेचन :–सास्वादन गुणस्थानक में तीन बंधस्थान बतलाये । अब उदयस्थानों का निर्देश करते हैं कि 21, 24, 25, 26, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते हैं ।

इनमें से 21 प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के होता है । नारकों में सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं जिससे सास्वादन में नारकों के 21 प्रकृतिक उदयस्थान नहीं कहा है । एकेन्द्रियों के 21 प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए बादर और पर्याप्त के साथ यश:कीर्ति के विकल्प से दो भंग संभव हैं, क्योंकि सूक्ष्म और अपर्याप्तों में सास्वादन जीव उत्पन्न नहीं होता है, जिससे विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के प्रत्येक और अपर्याप्त के साथ जो एक-एक भंग होता है वह यहाँ संभव नहीं है । शेष भंग संभव हैं जो विकलेन्द्रियों के दो-दो, इस प्रकार से छह हुए तथा तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 8, मनुष्यों के 8 और देवों के 8 होते हैं । इस प्रकार 21 प्रकृतिक उदयस्थान के कुल 32 भंग (2 + 6 + 8 + 8 + 8 = 32) हुए ।

24 प्रकृतिक उदयस्थान उन्हीं जीवों के होता है जो एकेन्द्रियों में

उत्पन्न होते हैं। यहाँ इसके बादर और पर्याप्त के साथ यश और अपयश के विकल्प से दो ही भंग होते हैं।

सास्वादन गुणस्थानक में 25 प्रकृतिक उदयस्थान उसी को प्राप्त होता है जो देवों में उत्पन्न होता है। इसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश-अपयश के विकल्प से 8 भंग होते हैं।

26 प्रकृतिक उदयस्थान उन्हीं के होता है जो विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। अपर्याप्त जीवों में सास्वादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। अतः इस स्थान में अपर्याप्त के साथ जो एक भंग पाया जाता है, वह यहाँ संभव नहीं किन्तु शेष भंग संभव हैं। विकलेन्द्रियों के दो-दो, इस प्रकार छह, तिर्यंच पंचेन्द्रियों के 288 और मनुष्यों के 288 होते हैं। इस प्रकार 26 प्रकृतिक उदयस्थान में कुल मिलाकर 582 भंग होते हैं।

सास्वादन गुणस्थानक में 27 और 28 प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि वे नवीन भव ग्रहण के एक अन्तर्मुहूर्त के काल के जाने पर होते हैं किन्तु सास्वादन भाव उत्पत्ति के बाद अधिक से अधिक कुछ कम 6 आवली काल तक ही प्राप्त होता है। इसीलिए उक्त 27 और 28 प्रकृतिक उदयस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि को नहीं माने जाते हैं।

29 प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त स्वस्थान गत देवों और नारकों को होता है। 29 प्रकृतिक उदयस्थान में देवों के 8 और नारकों के 1 इस प्रकार इसके यहाँ कुल 9 भंग होते हैं।

30 प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यों के या उत्तर विक्रिया में विद्यमान देवों के होता है। 30 प्रकृतिक उदयस्थान में तिर्यंच और मनुष्यों में से प्रत्येक के 1152 और देवों के 8, इस प्रकार 1152 + 1152 + 8 = 2312 भंग होते हैं।

31 प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंचों के होता है। यहाँ इसके कुल 1152 भंग होते हैं। इस प्रकार सास्वादन गुणस्थानक में 7 उदयस्थान और उनके भंग होते हैं।

इगचत्तिगार बत्तीस छसय इगतीसिगारनवनउई,
सतरिगसि गुतीसचउद, इगार चउसट्ठि मिच्छुदया ।।62।।

–: शब्दार्थ :–

इगचत्त=इकतालीस,	**सतरिगसि**=1781,
इगार=ग्यारह,	**गुतीसचउद्**=2914,
बत्तीस=बत्तीस,	**इगारचउसट्ठि**=1164,
छसय=600,	**मिच्छुदया**=मिथ्यात्व गुणस्थानक के उदय के भंग ।
इगतीस=इकतीस,	
इगारनवनउइ=1199,	

गाथार्थ :–मिथ्यात्व गुणस्थानक में 21 के उदयस्थानक में 41 भंग होते है । 24 के उदयस्थानक में 11 भंग ।

25 के उदयस्थानक में 32 भंग ।

26 के उदयस्थानक में 600 भंग ।

27 के उदयस्थानक में 31 भंग ।

28 के उदयस्थानक में 1199 भंग ।

29 के उदयस्थानक में 1781 भंग ।

30 के उदयस्थानक में 2914 भंग ।

31 के उदयस्थानक में 1164 भंग होते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानक में 9 उदयस्थानक में कुल 7773 भंग होते हैं ।

बत्तीस दुन्नि अट्ठ य, बासीइसया य पंच नव उदया ।
बारहिआ तेवीसा, बावन्निक्कारस सया य ।।63।।

–: शब्दार्थ :–

बत्तीस=32,	**नव**=नौ,
दुन्नि=दो,	**उदया**=उदय के भंग,
अट्ठ=आठ,	**बारहिआ तेवीसा**=2312,
बासीइसयायपंच=582,	**बावन्निक्कारस सया य**=1152

गाथार्थ :–सास्वादन गुणस्थानक के जो 21, 24, 25, 26, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, सात उदयस्थान हैं, उनके क्रमशः 32, 2, 8, 582, 9, 2312 और 1152 भंग होते हैं ।

विवेचन :–सास्वादन गुणस्थानक के सात उदयस्थानों को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानों को बतलाते हैं कि यहाँ 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान हैं । इनमें से जो आहारक चतुष्क का बंध करके उपशमश्रेणि से च्युत होकर सास्वादन भाव को प्राप्त होता है, उसके 92 की सत्ता पाई जाती है, अन्य के नहीं और 88 प्रकृतियों की सत्ता चारों गतियों के सास्वादन जीवों के पाई जाती है ।

इस प्रकार से सास्वादन गुणस्थानक के बंध, उदय और सत्तास्थानों को जानना चाहिए । अब इनके संवेद्य का विचार करते हैं ।

28 प्रकृतियों का बंध कने करने सास्वादन सम्यग्दृष्टि को 30 और 31 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं । पूर्व में बंधस्थानों का विचार करते समय यह बताया जा चुका है कि सास्वादन जीव देवगतिप्रायोग्य ही 28 प्रकृतियों का बंध करता है, नरकगतिप्रायोग्य 28 प्रकृतियों का नहीं । उसमें भी करणपर्याप्त सास्वादन जीव ही देवगतिप्रायोग्य को बाँधता है । इसलिए यहाँ 30 और 31 प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानों के अलावा अन्य शेष उदयस्थान संभव नहीं हैं ।

अब यदि मनुष्यों की अपेक्षा 30 प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते हैं तो वहाँ 88 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान सम्भव है और यदि तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा 30 प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते हैं तो वहाँ 88 प्रकृतिक 92 और यह एक ही सत्तास्थान संभव है क्योंकि 92 प्रकृतियों की सत्ता उसी को प्राप्त होती है जो उपशमश्रेणि से च्युत होकर सास्वादन भाव को प्राप्त होता है किन्तु तिर्यंचों में उपशमश्रेणि संभव नहीं है । अतः यहाँ 92 प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है ।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों के योग्य 92 प्रकृतियों का बंध करने वाले सास्वादन जीवों के पूर्वोक्त सातों ही उदयस्थान संभव हैं, इनमें से और सब उदयस्थानों में तो एक 88 प्रकृतियों की ही सत्ता प्राप्त होती है किन्तु 30 के उदय में मनुष्यों के 92 और 88 प्रकृतिक, ये दोनों ही सत्तास्थान संभव है । 29 के समान 30 प्रकृतिक बंधस्थान का भी कथन करना चाहिए ।

31 प्रकृतिक उदयस्थान में 88 प्रकृतियों की ही सत्ता प्राप्त होती है । क्योंकि 31 प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंचों के ही प्राप्त होता है ।

इस प्रकार सास्वादन गुणस्थानक में कुल 8 सत्तास्थान होते हैं । सास्वादन गुणस्थानक के बंध, उदय और सत्तास्थानों और संवेद्य का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए–

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
28	8	30	2312	92, 88
प्रकृतिक		31	1152	88
29	6400	21	32	88
प्रकृतिक		24	2	88
		25	8	88
		26	582	88
		29	9	88
		30	2312	92, 88
		31	1152	88
30	3200	21	32	88
प्रकृतिक		24	2	88
		25	8	88
		26	582	88
		29	9	88
		30	2312	92, 88
		31	1152	88
3	9608	16	11658	19

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
28	8	21	16	92, 88
प्रकृतिक		25	16	92, 88
		26	576	92, 88
		27	16	92, 88
		28	1176	92, 88
		29	1752	92, 88
		30	2888	92, 88
		31	1152	92, 88
29	16	21	17	93, 92, 89, 88
प्रकृतिक		25	17	93, 92, 89, 88
		26	288	93, 89
		27	17	93, 92, 89, 88
		28	601	93, 92, 89, 88
		29	501	93, 92, 89, 88
		30	1160	93, 92, 89, 88
30	8	21	9	93, 89
प्रकृतिक		25	9	93, 89
		27	9	93, 89
		28	17	93, 89
		29	17	93, 89
		30	8	93, 89
3	32	21	10,362	54

मार्गणाओं में बन्धादिस्थान

दो छक्कऽट्ठ चउक्कं पण नव इक्कार छक्कगं उदया ।
नेरइआइसु सता, ति पंच इक्कारस चउक्कं ।।64।।

–: शब्दार्थ :–

दो छक्कऽट्ठ चउक्कं=दो, छह, आठ और चार,	**नेरइआइसु**=नरक आदि गतियों में,
पण नव इक्कार छक्कगं=पाँच, नौ, ग्यारह और छह,	**सत्ता**=सत्ता,
उदया=उदयस्थान,	**ति पंच इक्कारस चउक्कं**=तीन, पाँच, ग्यारह और चार ।

गाथार्थ :–नारकी आदि (नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) के क्रम से दो, छह, आठ और चार बन्धस्थान, पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान तथा तीन, पाँच, ग्यारह और चार सत्ता स्थान होते हैं ।

विवेचन :–इस गाथा में किस गति में कितने बन्ध, उदय और सत्तास्थान होते हैं, इसका निर्देश किया गया । नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गतियाँ हैं और इसी क्रम का अनुसरण करके गाथा में पहले बन्धस्थानों की संख्या बतलाई है । नरकगति में दो, तिर्यंचगति में छह, मनुष्यगति में आठ और देवगति में चार बन्धस्थान हैं । उदयस्थानों का निर्देश करते हुए कहा है–पूर्वोक्त अनुक्रम से पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान हैं तथा तीन, पाँच, ग्यारह और चार सत्तास्थान हैं ।

नरकादि गतियों में बन्धस्थान

नरकगति में दो बन्धस्थान हैं-29 और 30 प्रकृतिक । इनमें से 29 प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति प्रायोग्य दोनों प्रकार का है तथा उद्योत सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगति प्रायोग्य हैं और तीर्थंकर सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगति प्रायोग्य है ।

तिर्यंचगति में छह बन्धस्थान हैं-23, 25, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक । इनका स्पष्टीकरण पहले के समान यहाँ भी करना चाहिए, लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ पर 29 प्रकृतिक बन्धस्थान तीर्थंकर सहित और 30

प्रकृतिक बन्धस्थान आहारकद्विक सहित नहीं कहना चाहिए। क्योंकि तिर्यंचों के तीर्थंकर और आहारकद्विक का बन्ध नहीं होता है।

मनुष्यगति के 8 बन्धस्थान हैं-23, 25, 26, 28, 29, 30, 31 और 1 प्रकृतिक। इनका भी स्पष्टीकरण पूर्व के समान यहाँ भी कर लेना चाहिए।

देवगति में चार बन्धस्थान हैं-25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक। इनमें से 25 प्रकृतिक बन्धस्थान पर्याप्त, बादर और प्रत्येक के साथ एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बन्ध करने वाले देवों के जानना चाहिए। यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश-अपयश के विकल्प से 8 भंग होते हैं। उक्त 25 प्रकृतिक बन्धस्थान में आतप या उद्योत प्रकृति को मिला देने पर 26 प्रकृतिक बन्धस्थान होता है।

26 प्रकृतिक बन्धस्थान के 16 भंग होते हैं। 29 प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगति प्रायोग्य या तिर्यंचगति प्रायोग्य दोनों प्रकार का होता है। तथा उद्योत सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगति प्रायोग्य है। इसके भंग 4608 होते हैं तथा तीर्थंकर नाम सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगति प्रायोग्य है। जिसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश-अपयश के विकल्प से 8 भंग होते हैं।

अब नरक आदि गतियों में अनुक्रम से उदयस्थानों का विचार करते हैं कि नरकगति में 21, 25, 27, 28 और 29 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान हैं। तिर्यंचगति में नौ उदयस्थान हैं–21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, मनुष्यगति में ग्यारह उदयस्थान हैं–20, 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 9 और 8 प्रकृतिक। देवगति में छह उदयस्थान हैं–21, 25, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक। इस प्रकार नरक आदि चारों गतियों में पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान जानना चाहिये-`पण नव इक्कार छक्कगं उदया।'

सत्तास्थानों को नरक आदि गतियों में बतलाते हैं कि-**'सता ति पंच इक्कारस चउक्कं'**। अर्थात् नरकगति में 92, 89 और 88 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। तिर्यंचगति में पाँच सत्तास्थान 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक हैं। मनुष्यगति में ग्यारह सत्तास्थान हैं–93, 92, 89, 88, 86, 80, 79, 76, 75, 9 और 8 प्रकृतिक। देवगति में चार सत्तास्थान हैं–93, 92, 89 और 88 प्रकृतिक। देवगति में चार सत्तास्थान हैं–93, 92, 89 और 88 प्रकृतिक।

इस प्रकार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानों को बतलाने के बाद अब उनके संवेद्य का विचार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनुक्रम से करते हैं ।

नरक गति में संवेद्य– पंचेन्द्रिय तिर्यंचगति के योग्य 29 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले नारकों के पूर्वोक्त 21, 25, 27, 28 और 29 प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते हैं और इनमें से प्रत्येक उदयस्थान में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं । तिर्यंचगति प्रायोग्य प्रकृतियों का बन्ध करने वाले जीव के तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नहीं होने से यहाँ 89 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं कहा है । मनुष्यगति प्रायोग्य 29 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले नारकों के पूर्वोक्त पाँचों उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान में 92, 89 और 88 प्रकृतिक, ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं । तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला मनुष्य नरक में उत्पन्न होकर जब तक मिथ्यादृष्टि रहता है उसकी अपेक्षा तब तक उसके तीर्थंकर के बिना 29 प्रकृतियों का बन्ध होने से 29 प्रकृतिक बन्धस्थान में 89 प्रकृति का सत्तास्थान बन जाता है ।

नरकगति में 30 प्रकृतिक बन्धस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है–एक उद्योत नाम सहित और दूसरा तीर्थंकर प्रकृति सहित । जिसके उद्योत सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान होता है उसके उदयस्थान तो पूर्वोक्त पाँचों ही होते हैं किंतु सत्तास्थान प्रत्येक उदयस्थान में दो-दो होते हैं–92 और 88 प्रकृतिक तथा जिसके तीर्थंकर सहित 30 प्रकृतिक बन्धस्थान होता है, उसके पाँचों उदयस्थानों में से प्रत्येक उदयस्थान में 89 प्रकृतिक एक-एक सत्तास्थान ही होता है ।

इस प्रकार नरकगति में सब बन्धस्थान और उदयस्थानों की अपेक्षा 40 सत्तास्थान होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
29	9216	21	1	92, 89, 88
प्रकृतिक		25	1	92, 89, 88
		27	1	92, 89, 88
		28	1	92, 89, 88
		29	1	92, 89, 88

30 प्रकृतिक	4616	21	1	92, 89, 88
		25	1	92, 89, 88
		27	1	92, 89, 88
		28	1	92, 89, 88
		29	1	92, 89, 88

तिर्यंचगति में संवेद्य :–छह बंधस्थानों में से 23 प्रकृतिक बंधस्थान में यद्यपि पूर्वोक्त 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये नौ ही उदयस्थान होते हैं। लेकिन इनमें से प्रारम्भ के 21, 24, 25 और 26 प्रकृतिक, इन चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं और अन्त के पाँच उदयस्थानों में से प्रत्येक में 78 प्रकृतिक के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि 27 प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में नियम से मनुष्यद्विक की सत्ता सम्भव है। अतः इनमें 78 प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं पाया जाता है।

इसी प्रकार 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थान वाले जीवों के बारे में भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य गति प्रायोग्य 29 प्रकृतियों का बंध करनेवाले जीव के सब उदयस्थानों में 78 के बिना चार-चार सत्तास्थान ही सम्भव हैं। क्योंकि मनुष्यद्विक का बंध करने वाले के 78 प्रकृतिक सत्तास्थान सम्भव नहीं हैं।

28 प्रकृतिक बंधस्थान वाले जीव के 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते हैं। इसके 24 प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि यह एकेन्द्रियों के ही होता है और एकेन्द्रियों के 28 प्रकृतिक बंधस्थान नहीं होता है। इन उदयस्थानों में से 21, 26, 28, 29 और 30 प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या मोहनीय की 22 प्रकृतियों की सत्ता वाले वेदक सम्यग्दृष्टियों के होते हैं तथा इनमें से प्रत्येक उदयस्थान में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। 25 और 27 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंचों के होते हैं। यहाँ भी प्रत्येक उदयस्थान में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा 30 ओर 31 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुए

सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंचों के होते हैं । इनमें से प्रत्येक उदयस्थान में 92, 88 और 86 प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं । लेकिन यह विशेष जानना चाहिए कि 86 प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टियों के ही होता है, सम्यग्दृष्टियों के नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंचों के नियम से देवद्विक का बंध सम्भव है ।

इस प्रकार यहाँ सब बंधस्थानों और सब उदयस्थानों की अपेक्षा 218 सत्तास्थान होते हैं । क्योंकि 23, 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक इन पाँच बंधस्थानों में से प्रत्येक में से चालीस-चालीस और 28 प्रकृतिक बंधस्थान में अठारह सत्तास्थान होते हैं । अतः (40 x 5) + 18 = 218 इन सब का जोड़ होता है ।

तिर्यंचगति सम्बन्धी नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेद्य का विवरण निम्न अनुसार जानना चाहिए–

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23	4	21	23	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	15	92, 88, 86, 80, 78
		26	311	92, 88, 86, 80, 78
		27	14	92, 88, 86, 80
		28	598	92, 88, 86, 80
		29	1180	92, 88, 86, 80
		30	1754	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
25	25	21	23	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	15	92, 88, 86, 80, 78
		26	311	92, 88, 86, 80, 78
		27	14	92, 88, 86, 80

		28	598	92, 88, 86, 80
		29	1180	92, 88, 86, 80
		30	1754	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
26 प्रकृतिक	16	21	23	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	15	92, 88, 86, 80, 78
		26	311	92, 88, 86, 80, 78
		27	14	92, 88, 86, 80
		28	598	92, 88, 86, 80
		29	1180	92, 88, 86, 80
		30	1754	92, 88, 86, 80
		31	1164	92, 88, 86, 80
28 प्रकृतिक	9	21	8	92, 88
		25	8	92, 88
		26	288	92, 88
		27	8	92, 88
		28	592	92, 88
		29	1168	92, 88
		30	1736	92, 88, 86
		31	1152	92, 88, 86
29 प्रकृतिक	9240	21	23	92, 88, 86, 80
		24	11	92, 88, 86, 80
		25	15	92, 88, 86, 80
		26	311	92, 88, 86, 80

		27	14	92, 88, 86, 80
		28	598	92, 88, 86, 80
		29	1180	92, 88, 86, 80
		30	1754	92, 88, 86, 80
		31	1168	92, 88, 86, 80
30 प्रकृतिक	4632	21	23	92, 88, 86, 80
		24	11	92, 88, 86, 80
		25	15	92, 88, 86, 80
		26	311	92, 88, 86, 80
		27	14	92, 88, 86, 80
		28	598	92, 88, 86, 80
		29	1180	92, 88, 86, 80
		30	1754	92, 88, 86, 80
		31	1168	92, 88, 86, 80

मनुष्यगति में संवेद्य :–मनुष्यगति में 23 प्रकृतियों का बंध करने वाले मनुष्य के 21, 22, 26, 27, 28, 29, 30 प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते हैं। इनमें से 25 और 27 प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले मनुष्य के होते हैं किन्तु आहारक मनुष्य के 23 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, अतः यहाँ आहारक को नहीं लेना चाहिए। इन दो उदयस्थानों में से प्रत्येक में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा शेष पाँच उदयस्थानों में से प्रत्येक में 92, 88, 86 और 80 प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार 23 प्रकृतिक बंधस्थान में 24 सत्तास्थान होते हैं।

इसी प्रकार 25 और 26 प्रकृतिक बंधस्थानों में भी चौबीस चौबीस सत्तास्थान जानना चाहिए।

मनुष्य गति प्रायोग्य और तिर्यंच गति प्रायोग्य 29 प्रकृतिक बंधस्थानों में भी इसी प्रकार चौबीस-चौबीस सत्तास्थान होते हैं।

28 प्रकृतिक बंधस्थान में 21, 25, 26, 27, 28, 29 और 30 प्रकृतिक,

ये सात उदयस्थान होते हैं। इनमें से 21 और 26 प्रकृतिक ये दो उदयस्थान सम्यग्दृष्टि के करण-अपर्याप्त अवस्था में होते हैं। 25 और 27, ये दो उदयस्थान वैक्रिय या आहारक संयत के तथा 28 और 29 ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले, अविरत सम्यग्दृष्टि और आहारक संयत के होते हैं। 30 प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टियों के होता हैं। इन सब उदयस्थानों में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इसमें भी आहारकसंयत के एक 92 प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। किन्तु नरक गति प्रायोग्य 28 प्रकृतियों का बंध करने वाले के 30 प्रकृतिक उदयस्थान में 92, 89, 88 और 86 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार 28 प्रकृतिक बंधस्थान में 16 सत्तास्थान होते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगतिप्रायोग्य 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले के 28 प्रकृतिक बंधस्थान के समान सात उदयस्थान होते हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि 30 प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टियों के ही कहना चाहिए, क्योंकि 29 प्रकृतिक बंधस्थान तीर्थंकर प्रकृति सहित है और तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि के ही होता है। इन सब उदयस्थानों में से प्रत्येक में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इसमें आहारकसंयत के 93 प्रकृतियों की ही सत्ता होती है। इस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति सहित 29 प्रकृतिक बंधस्थान में चौदह सत्तास्थान होते हैं।

आहारकद्विक सहित 30 प्रकृतियों का बंध होने पर 29 और 30 प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। इसमें से जो आहारकसंयत स्वयोग्य सर्व पर्याप्ति पूर्ण करने के बाद अंतिम काल में अप्रमत्तसंयत होता है, उसकी अपेक्षा 29 का उदय लेना चाहिए। क्योंकि अन्यत्र 29 के उदय में आहारकद्विक के बंध का कारणभूत विशिष्ट संयम नहीं पाया जाता है। इससे अन्यत्र 30 का उदय होता है। सो इनमें से प्रत्येक उदयस्थान में 92 की सत्ता होती है।

31 प्रकृतिक बंधस्थान के समय 30 का उदय और 93 की सत्ता होती है तथा 1 प्रकृतिक बंधस्थान के समय 30 का उदय और 93, 92, 89, 88, 80, 79, 76 और 75 प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार 23, 25 और 26 के बंध के समय चौबीस-चौबीस सत्तास्थान,

28 के बंध के समय सोलह सत्तास्थान, मनुष्यगति और तिर्यंचगति प्रायोग्य 29 और 30 के बंध में चौबीस-चौबीस सत्तास्थान, देवगतिप्रायोग्य तीर्थंकर प्रकृति के साथ 29 के बंध में चौदह सत्तास्थान, 31 के बंध में एक सत्तास्थान और 1 प्रकृतिक बंध में आठ सत्तास्थान होते हैं। इस तरह मनुष्य गति में कुल 159 सत्तास्थान होते हैं ।

बंधस्थान	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23 प्रकृतिक	21	8	92, 88, 86, 80
	25	8	92, 88
	26	209	92, 88, 86, 80
	27	8	92, 88
	28	584	92, 88, 86, 80
	29	584	92, 88, 86, 80
	30	1152	92, 88, 86, 80
25 प्रकृतिक	21	8	92, 88, 86, 80
	25	8	92, 88
	26	209	92, 88, 86, 80
	27	8	92, 88
	28	584	92, 88, 86, 80
	29	584	92, 88, 86, 80
	30	1152	92, 88, 86, 80
26 प्रकृतिक	21	8	92, 88, 86, 80
	25	8	92, 88
	26	209	92, 88, 86, 80
	27	8	92, 88
	28	584	92, 88, 86, 80
	29	584	92, 88, 86, 80
	30	1152	92, 88, 86, 80

28 प्रकृतिक	21	8	92, 88
	25	8	92, 88
	26	288	92, 88
	27	8	92, 88
	28	584	92, 88
	29	584	92, 88
	30	1152	92, 89, 88, 86
29 प्रकृतिक	21	9	93, 92, 89, 88, 86, 80
	25	9	93, 92, 89, 88
	26	289	93, 92, 89, 88, 86, 80
	27	9	93, 92, 89, 88
	28	587	93, 92, 89, 88, 86, 80
	29	587	93, 92, 89, 88, 86, 80
	30	1154	93, 92, 89, 88, 86, 80
30 प्रकृतिक	21	9	92, 88, 86, 80
	25	8	92, 88
	26	289	92, 88, 86, 80
	27	89	92, 88
	28	584	92, 88, 86, 80
	29	586	92, 88, 86, 80
	30	1154	92, 88, 86, 80
31 प्रकृतिक	30	144	93
1 प्रकृतिक	30	—	93, 92, 89, 88, 80, 79, 76, 75

देवगति में संवेद्य–देवगति में 25 प्रकृतियों का बंध करनेवाले देवों के देव सम्बन्धी छहों उदयस्थान होते हैं । जिनमें से प्रत्येक में 92 और 88 प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । इसी प्रकार 26 और 29 प्रकृतियों का बंध करने वाले देवों के भी जानना चाहिए । उद्योत सहित तिर्यंचगति के योग्य 30 प्रकृतियों का बंध करनेवाले देवों के भी इसी प्रकार छह उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान में 92 और 88 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं परन्तु तीर्थंकर प्रकृति सहित 30 प्रकृतियों का बंध करने वाले देवों के छह उदयस्थानों में से प्रत्येक उदयस्थान में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार यहाँ कुल 60 सत्तास्थान होते हैं ।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
25	8	21	8	92, 88
प्रकृतिक		25	8	92, 88
		27	8	92, 88
		28	16	92, 88
		29	16	92, 88
		30	8	92, 88
26	16	21	8	92, 88
प्रकृतिक		25	8	92, 88
		27	8	92, 88
		28	16	92, 88
		29	16	92, 88
		30	8	92, 88
29	9216	21	8	92, 88
प्रकृतिक		25	8	92, 88
		27	8	92, 88
		28	16	92, 88

		29	16	92, 88
		30	8	92, 88
30 प्रकृतिक	4616	21	8	93, 92, 89, 88
		25	8	93, 92, 89, 88
		27	8	93, 92, 89, 88
		28	16	93, 92, 89, 88
		29	16	93, 92, 89, 88
		30	8	93, 92, 89, 88

इन्द्रिय मार्गणा में बंध आदि स्थानों का निर्देश

इग विगलिंदिअ सगले, पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण छक्किक्कारुदया, पण पण बारस य संताणि ।।65।।

–: शब्दार्थ :–

इग विगलिंदिअ सगले=एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय (पंचेन्द्रिय) में,
पण पंच य अट्ठ=पाँच, पाँच और आठ,
बंधठाणाणि=बंधस्थान,
पण छक्किक्कार=पाँच, छह और ग्यारह,
उदया=उदयस्थान,
पण-पण बारस=पाँच, पाँच और बारह,
य=और,
संताणि=सत्तास्थान ।

गाथार्थ :–एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में अनुक्रम से पाँच, पाँच और आठ बंधस्थान, पाँच, छह और ग्यारह उदयस्थान तथा पाँच, पाँच और बारह सत्तास्थान होते हैं ।

विवेचन :–इस गाथा में इन्द्रियमार्गणा के एकेन्द्रिय आदि पाँच भेदों में बंधादि स्थानों का निर्देश करते हुए अनुक्रम से बताया है कि एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) के पाँच तथा पंचेन्द्रिय के आठ बंधस्थान हैं । इसी प्रकार अनुक्रम से उदयस्थानों का निर्देश करने

के लिये कहा है कि–एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रियों के छह और पंचेन्द्रियों के ग्यारह उदयस्थान होते हैं तथा एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रियों के पाँच और पंचेन्द्रियों के बारह सत्तास्थान हैं । इन सब बंध आदि स्थानों का स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है ।

कुल बंधस्थान आठ हैं, उनमें से एकेन्द्रियों के 23, 25, 26, 29, और 31 प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान हैं । विकलेन्द्रियों में से प्रत्येक के भी एकेन्द्रिय के लिए बताये गये अनुसार ही पाँच-पाँच बंधस्थान हैं तथा पंचेन्द्रियों के 23 आदि प्रकृतिक आठों बंधस्थान हैं ।

उदयस्थान बारह हैं । उनमें से एकेन्द्रियों के 21, 24, 25, 26 और 27 प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं । विकलेन्द्रियों में से प्रत्येक के 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह-छह उदयस्थान होते हैं तथा पंचेन्द्रियों के 20, 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 9 और 8 प्रकृतिक, ये ग्यारह उदयस्थान होते हैं ।

सत्तास्थान कुल बारह हैं, जिनमें से एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में से प्रत्येक के 92, 88, 86, 80 और 78 प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान हैं तथा पंचेन्द्रियों के बारहों ही सत्तास्थान होते हैं ।

एकेन्द्रिय–23 प्रकृतियों का बंध करने वाले एकेन्द्रियों के प्रारम्भ के चार उदयस्थानों में से प्रत्येक उदयस्थान में पाँच-पाँच सत्तास्थान होते हैं तथा 27 प्रकृतिक उदयस्थान में 78 को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान होते हैं । इसी प्रकार 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक बंधस्थानों के भी उदयस्थानों की अपेक्षा सत्तास्थान जानना चाहिए । इस प्रकार 23 प्रकृतिक बंधस्थान में पाँच उदयस्थानों की अपेक्षा प्रत्येक में 24 सत्तास्थान होते हैं, जिनका कुल जोड़ 120 है । ये सब सत्तास्थान एकेन्द्रिय के हैं ।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23	4	21	5	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	7	92, 88, 86, 80, 78
		26	13	92, 88, 86, 80, 78
		27	6	92, 88, 86, 80

25 प्रकृतिक	25	21	5	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	7	92, 88, 86, 80, 78
		26	13	92, 88, 86, 80, 78
		27	6	92, 88, 86, 80
26 प्रकृतिक	16	21	5	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	7	92, 88, 86, 80, 78
		26	13	92, 88, 86, 80, 78
		27	6	92, 88, 86, 80
29 प्रकृतिक	9240	21	5	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	7	92, 88, 86, 80, 78
		26	13	92, 88, 86, 80, 78
		27	6	92, 88, 86, 80
30 प्रकृतिक	4632	21	5	92, 88, 86, 80, 78
		24	11	92, 88, 86, 80, 78
		25	7	92, 88, 86, 80, 78
		26	13	92, 88, 86, 80, 78
		27	6	92, 88, 86, 80

विकलेन्द्रिय–विकलेन्द्रियों में 23 का बन्ध करने वाले जीवों में 21 और 26 प्रकृतियों के उदय में पाँच-पाँच उदयस्थान होते हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में से प्रत्येक में 78 के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार 23 प्रकृतिक बन्धस्थान में 26 सत्तास्थान हुए । इसी प्रकार 25, 26, 29 और 30 प्रकृतिक बन्धस्थानों में भी अपने-अपने उदयस्थानों की अपेक्षा 26-26 सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार विकलेन्द्रियों में पाँच बन्धस्थान में छह उदयस्थानों के कुल मिलाकर 130 सत्तास्थान होते हैं ।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23	4	21	9	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	9	92, 88, 86, 80, 78
		28	6	92, 88, 86, 80
		29	12	92, 88, 86, 80
		30	18	92, 88, 86, 80
		31	12	92, 88, 86, 80
25	25	21	9	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	9	92, 88, 86, 80, 78
		28	6	92, 88, 86, 80
		29	12	92, 88, 86, 80
		30	18	92, 88, 86, 80
		31	12	92, 88, 86, 80
26	16	21	9	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	9	92, 88, 86, 80, 78
		28	6	92, 88, 86, 80
		29	12	92, 88, 86, 80
		30	18	92, 88, 86, 80
		31	12	92, 88, 86, 80
29	9240	21	9	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	9	92, 88, 86, 80, 78
		28	6	92, 88, 86, 80
		29	12	92, 88, 86, 80
		30	18	92, 88, 86, 80
		31	12	92, 88, 86, 80

30	4632	21	9	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	9	92, 88, 86, 80, 78
		28	6	92, 88, 86, 80
		29	12	92, 88, 86, 80
		30	18	92, 88, 86, 80
		31	12	92, 88, 86, 80

पंचेन्द्रिय :–पंचेन्द्रियों में 23 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले के 21, 26, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं। इनमें से 21 और 26 प्रकृतिक उदयस्थानों में पूर्वोक्त पाँच-पाँच और शेष चार उदयस्थानों में 78 के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर यहाँ 26 सत्तास्थान हैं।

25 और 26 का बन्ध करने वाले के 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये आठ-आठ उदयस्थान होते हैं। इनमें से 21 और 26 प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानों में से प्रत्येक में पाँच-पाँच सत्तास्थान पहले बताये गये अनुसार ही होते हैं। 25 और 27 इन दो में 92 और 88 ये दो-दो सत्तास्थान तथा शेष 28 आदि चार उदयस्थानों में 78 के बिना चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार 25 और 26 प्रकृतिक बन्धस्थानों में से प्रत्येक में 30-30 सत्तास्थान होते हैं।

28 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले के 21, 25, 26, 27, 28, 29, 30 और 31 प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते हैं। ये सब उदयस्थान तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों संबंधी लेना चाहिए। क्योंकि 28 का बन्ध इन्हीं के होता है। यहाँ 21 से लेकर 29 तक छह उदयस्थानों में से प्रत्येक में 92 और 88 प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। 30 के उदय में 92, 89, 88 और 86 प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। जिनमें से 89 की सत्ता उस मनुष्य के जानना चाहिए जो तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के साथ मिथ्यादृष्टि होते हुए नरकगति के योग्य 28 प्रकृतियों का बन्ध करता है तथा 31 के उदय में 92, 88 और 86 ये

तीन सत्तास्थान होते हैं । ये तीनों सत्तास्थान तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा समझना चाहिए, क्योंकि अन्यत्र पंचेन्द्रिय के 31 का उदय नहीं होता है । उसमें भी 86 प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रियों के होता है, सम्यग्दृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय के नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंचों के नियम से देवद्विक का बन्ध होने लगता है अतः उनके 86 प्रकृतियों की सत्ता सम्भव नहीं है । इस प्रकार 28 प्रकृतिक बन्धस्थान में कुल 19 सत्तास्थान होते हैं ।

29 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले के ये पूर्वोक्त आठ उदयस्थान होते हैं । इनमें सें 21 और 26 प्रकृतियों के उदय में 92, 88, 86, 80, 78, 93 और 89 प्रकृतिक ये सात-सात सत्तास्थान होते हैं । यहाँ तिर्यंच गति प्रायोग्य 29 का बन्ध करने वालों के प्रारम्भ के पाँच, मनुष्य गति प्रायोग्य 29 का बन्ध करने वालों के प्रारम्भ के चार और देव गति प्रायोग्य 29 का बन्ध करने वालों के अंतिम दो सत्तास्थान होते हैं । 28, 29 और 30 के उदय में 78 के बिना पूर्वोक्त छह-छह सत्तास्थान होते हैं । 31 के उदय में प्रारम्भ के चार और 25 तथा 27 के उदय में 93, 92, 89 और 88 प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं । इस प्रकार 29 प्रकृतिक बन्धस्थान में कुल 44 सत्तास्थान होते हैं ।

30 प्रकृतियों का बन्ध करने वाले के 29 के बन्ध के समान वे ही आठ उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान में उसी प्रकार सत्तास्थान होते हैं । किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि 21 के उदय में पहले पाँच सत्तास्थान तिर्यंच गति प्रायोग्य 30 का बन्ध करने वाले के होते हैं और अंतिम दो सत्तास्थान मनुष्य गति प्रायोग्य 30 का बन्ध करने वाले देवों के होते हैं तथा 26 के उदय में 93 और 89 प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नहीं होते हैं, क्योंकि 26 का उदय तिर्यंच और मनुष्यों के अपर्याप्त अवस्था में होता है परन्तु उस समय देव गति प्रायोग्य या मनुष्य गति प्रायोग्य 30 का बन्ध नहीं होता है, जिससे यहाँ 93 और 89 की सत्ता प्राप्त नहीं होती है । इस प्रकार 30 प्रकृतिक बन्धस्थान में कुल 42 सत्तास्थान प्राप्त होते हैं ।

31 और 1 प्रकृति का बन्ध करने वाले के उदयस्थानों और सत्तास्थानों का संवेद्य मनुष्यगति के समान जानना चाहिए ।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
23	4	21	18	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		26	518	92, 88, 86, 80, 78
		28	1152	92, 88, 86, 80
		29	1728	92, 88, 86, 80
		30	1880	92, 88, 86, 80
		31	1152	92, 88, 86, 80
25	25	21	26	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		25	8	92, 88
		26	578	92, 88, 86, 80, 78
		27	8	92, 88
		28	1168	92, 88, 86, 80, 78
		29	1744	92, 88, 86, 80, 78
		30	2888	92, 88, 86, 80, 78
		31	1152	92, 88, 86, 80, 78
26	16	21	26	92, 88, 86, 80, 78
प्रकृतिक		25	8	92, 88
		26	578	92, 88, 86, 80, 78
		27	8	92, 88
		28	1168	92, 88, 86, 80
		29	1744	92, 88, 86, 80
		30	2888	92, 88, 86, 80
		31	1156	92, 88, 86, 80

28 प्रकृतिक	9	21	16	92, 88
		25	8	92, 88
		26	573	92, 88
		27	8	92, 88
		28	1156	92, 88
		29	1728	92, 88
		30	2880	92, 89, 88, 86
		31	1156	92, 88, 86
29 प्रकृतिक	9248	21	27	92, 88, 86, 80, 78, 93, 89
		25	9	93, 92, 89, 88
		26	578	92, 88, 86, 80, 78, 93, 89
		27	9	93, 92, 89, 88
		28	1169	93, 92, 89, 88, 86, 80
		29	1745	93, 92, 89, 88, 86, 80
		30	2888	93, 92, 89, 88, 86, 80
		31	1156	92, 88, 86, 80
30 प्रकृतिक	4641	21	27	93, 92, 89, 88, 86, 80, 78
		25	9	89, 92, 89, 88
		26	576	92, 88, 86, 80, 78
		27	9	93, 92, 89, 88,
		28	1169	93, 92, 89, 88, 86, 80
		29	1745	93, 92, 89, 88, 86, 80
		30	2888	93, 92, 89, 88, 86, 80
		31	1156	93, 92, 89, 88, 80
31 प्रकृतिक	1	30	144	93
1 प्रकृतिक	1	30	144	93, 92, 89, 88, 80, 79, 76, 75

बंध आदि स्थानों के आठ अनुयोगद्वार

इअ कम्मपगइ-ठाणाणि सुट्ठु बंधुदय-संतकम्माणं ।
गइआइएहिं अट्ठसु, चउप्पयारेण नेआणि ।।66।।

–: शब्दार्थ :–

इअ=पूर्वोक्त प्रकार से,	**गइ आइएहिं**=गति आदि मार्गणास्थानों के द्वारा,
कम्मपगइ-ठाणाणि=कर्म प्रकृतियों के स्थानों को,	**अट्ठसु**=आठ अनुयोग द्वारों में,
सुट्ठु=अत्यन्त उपयोगपूर्वक,	**चउप्पयारेण**=चार प्रकार से,
बंधुदय-संतकम्माणं=बंध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियों के,	**नेआणि**=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–ये पूर्वोक्त बंध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियों के स्थानों को अत्यन्त उपयोगपूर्वक गति आदि मार्गणास्थानों के साथ आठ अनुयोगद्वारों में चार प्रकार से जानना चाहिए ।

विवेचन :–इस गाथा से पूर्व तक ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों का सामान्य रूप से तथा जीवस्थान, गुणस्थानक, गतिमार्गणा और इन्द्रियमार्गणा में निर्देश किया है । लेकिन इस गाथा में कुछ विशेष संकेत करते हैं कि जैसा पूर्व में गति आदि मार्गणाओं में कथन किया गया है, उसके साथ उनको आठ अनुयोगद्वारों में घटित कर लेना चाहिए । इसके साथ यह भी संकेत किया है कि सिर्फ प्रकृतिबंध रूप नहीं किन्तु **'चउप्पयारेण नेआणि'** प्रकृतिबंध के साथ स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से भी घटित करना चाहिए । क्योंकि ये बंध, उदय और सत्ता रूप सब कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के हैं ।

इन चारों प्रकार रूप कर्मों को किन में और किसके द्वारा घटित करने के लिए गाथा में संकेत किया है कि–गति आदि चौदह मार्गणाओं के द्वारा आठ अनुयोग द्वारों में इनका चिन्तन करना है ।

मार्गणा के चौदह भेद :–

1 गति, 2 इन्द्रिय, 3 काय, 4 योग, 5 वेद, 6 कषाय, 7 ज्ञान, 8

संयम, 9 दर्शन, 10 लेश्या, 11 भव्यत्व, 12 सम्यक्त्व, 13 संज्ञी और 14 आहार। इन 14 भेदों के उत्तर भेद 62 होते हैं।

वर्णन की यह परम्परा है कि जीव सम्बन्धी जिस किसी भी अवस्था का वर्णन करना है, उसका पहले सामान्य रूप से वर्णन किया जाता है और उसके बाद उसका विशेष चिन्तन चौदह मार्गणाओं द्वारा आठ अनुयोग द्वारों में किया जाता है। अनुयोग द्वार यह अधिकार का पर्यायवाची नाम है और विषय-विभाग की दृष्टि से ये अधिकार हीनाधिक भी किये जा सकते हैं। परन्तु मार्गणाओं का विस्तृत विवेचन मुख्य रूप से आठ अधिकारों में ही पाया जाता है, अतः मुख्य रूप से आठ ही लिये जाते हैं। नाम इस प्रकार हैं–

1 सत्, 2 संख्या, 3 क्षेत्र, 4 स्पर्शन, 5 काल, 6 अन्तर, 7 भाव और 8 अल्पबहुत्व। इन अधिकारों का अर्थ इनके नामों से ही स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् सत् अनुयोगद्वार में यह बताया जाता है कि विवक्षित धर्म किन मार्गणाओं में है और किन में नहीं है। संख्या अनुयोगद्वार में उस विवक्षित धर्म वाले जीवों की संख्या बतलाई जाती है।

क्षेत्र अनुयोग द्वार में विवक्षित धर्मवाले जीवों का वर्तमान निवास-स्थान बतलाया जाता है। स्पर्शन अनुयोगद्वार में उन विवक्षित धर्म वाले जीवों ने जितने क्षेत्र का पहले स्पर्श किया हो, अब कर रहे हैं और आगे करेंगे उस सबका समुच्चय रूप से निर्देश किया जाता है। काल अनुयोगद्वार में विवक्षित धर्म वाले जीवों की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति का विचार किया जाता है। अन्तर शब्द का अर्थ विग्रह या व्यवधान। विवक्षित धर्म का सामान्य रूप से या किस मार्गणा में कितने काल तक अन्तर रहता है या नहीं रहता है। भाव अनुयोग द्वार में उस विवक्षित धर्म के भाव का तथा अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार में उसके अल्पबहुत्व का विचार किया जाता है।

यद्यपि गाथा में सिर्फ इतना संकेत किया गया है कि इसी प्रकार बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों का तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदों का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से गति आदि मार्गणाओं के द्वारा आठ अनुयोग द्वारों में विवेचन कर लेना चाहिए जैसा कि पहले वर्णन किया गया है। लेकिन इस विषय में टीकाकार आचार्य मलयगिरि का वक्तव्य है कि `यद्यपि आठों कर्मों के सत् अनुयोगद्वार का वर्णन गुणस्थानकों में सामान्य रूप से पहले किया ही गया है और संख्या आदि सात अनुयोगद्वारों का व्याख्यान कर्मप्रकृति प्राभृत ग्रंथों को देखकर करना चाहिए। किन्तु कर्मप्रकृति प्राभृत

आदि ग्रंथ वर्तमान काल में उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए इन संख्यादि अनुयोग द्वारों का व्याख्यान करना कठिन है। फिर भी जो प्रत्युत्पन्नमति विद्वान हैं वे पूर्वापर सम्बन्ध को देखकर उनका व्याख्यान करें।

टीकाकार आचार्यश्री के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाथा में जिस विषय की सूचना दी गई है उस विषय का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ वर्तमान में नहीं पाये जाते हैं। फिर भी विभिन्न ग्रन्थों की सहायता से मार्गणाओं में आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता स्थानों के संवेद्य का विवरण नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिए। पहले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अंतराय इन छह कर्मों के बंध आदि स्थानों का निर्देश करने के बाद मोहनीय व नाम कर्म के बंधादि स्थानों को बतलायेंगे।

मार्गणाओं में ज्ञानावरण आदि छह कर्मों के बंध आदि स्थानों का विवरण इस प्रकार है–

क्रम. सं.	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भंग 7	ज्ञाना० भंग 2	दर्शना० भंग 11	वेदनीय भंग 8	आयु० भंग 28	गोत्र भंग 7	अंतराय भंग 2
1.	नरकगति	2	1	4	4	5	2	1
2.	तिर्यंचगति	2	1	4	4	9	3	1
3.	मनुष्यगति	7	2	11	8	9	6	2
4.	देवगति	2	1	4	4	5	4	1
5.	एकेन्द्रिय	2	1	2	4	5	3	1
6.	द्वीन्द्रिय	2	1	2	4	5	3	1
7.	त्रीन्द्रिय	2	1	2	4	5	3	1
8.	चतुरिन्द्रिय	2	1	2	4	5	3	1
9.	पंचेन्द्रिय	7	2	11	8	28	7	2
10.	पृथ्वीकाय	2	1	2	4	5	3	1
11.	अप्काय	2	1	2	4	5	3	1
12.	तेजःकाय	2	1	2	4	3	2	1
13.	वायुकाय	2	1	2	4	2	2	1

14.	वनस्पतिकाय	2	1	2	4	5	3	1
15.	त्रसकाय	7	2	11	8	28	7	2
16.	मनोयोग	6	2	11	4	28	5	2
17.	वचनयोग	6	2	11	4	28	5	2
18.	काययोग	6	2	11	4	28	6	2
19.	स्त्रीवेद	2	1	7	4	23	5	1
20.	पुरुषवेद	2	1	7	4	23	5	1
21.	नपुंसकवेद	2	1	7	4	23	5	1
22.	क्रोध	2	1	7	4	28	5	1
23.	मान	2	1	7	4	28	5	1
24.	माया	2	1	7	4	28	5	1
25.	लोभ	3	1	7	4	28	5	1
26.	मतिज्ञान	5	2	9	4	20	3	2
27.	श्रुतज्ञान	5	2	9	4	20	3	2
28.	अवधिज्ञान	5	2	9	4	20	3	2
29.	मनःपर्यायज्ञान	5	2	9	4	6	2	2
30.	केवलज्ञान	2	0	0	6	1	2	0
31.	ति-अज्ञान	2	1	2	4	28	5	1
32.	श्रुतअज्ञान	2	1	2	4	28	5	1
33.	विभंगज्ञान	2	1	2	4	28	4	1
34.	सामायिक	2	1	5	4	6	1	1
35.	छेदोपस्थापन	2	1	5	4	6	1	1
36.	परिहारविशुद्धि	2	1	2	4	6	1	1
37.	सूक्ष्मसंपराय	1	1	3	2	2	1	1
38.	यथाख्यात	4	1	4	6	2	2	1
39.	देशविरत	2	1	2	4	12	2	1
40.	अविरत	2	1	4	4	28	5	1
41.	चक्षुदर्शन	5	2	11	4	28	5	2
42.	अचक्षुदर्शन	5	1	11	4	28	6	2
43.	अवधिदर्शन	5	2	9	4	20	3	2
44.	केवलदर्शन	2	0	0	6	1	2	0

45.	कृष्णलेश्या	2	1	4	4	28	5	1
46.	नीललेश्या	2	1	4	4	28	5	1
47.	कापोत लेश्या	2	1	4	4	28	5	1
48.	तेजोलेश्या	2	1	4	4	21	4	1
49.	पद्मलेश्या	2	1	4	4	21	4	1
50.	शुक्ललेश्या	6	2	11	4	16/21	5	2
51.	भव्यत्व	7	2	11	8	28	7	2
52.	अभव्यत्व	2	1	2	4	28	5	1
53.	उपशम सम्य०	3	2	6	4	16	3	2
54.	क्षायिक सम्य०	7	2	9	8	15	4	2
55.	क्षायोपशमिक	2	1	2	4	20	2	1
56.	मिश्र सम्य०	1	1	2	4	16	2	1
57.	सास्वादन सम्य०	2	1	2	4	26	4	1
58.	मिथ्यात्व सम्य०	2	1	2	4	28	5	1
59.	संज्ञी	7/5	2	11	8	28	7	2
60.	असंज्ञी	2	1	2	4	24	3	1
61.	आहारी	6	2	11	4	28	6	2
62.	अनाहारी	3	1/0	4/0	8	4	7	1

उदय से उदीरणा की विशेषता

उदयस्सुदीरणाए, सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मुत्तूण य इगयालं सेसाणं सव्वपयडीणं ।।67।।

–: शब्दार्थ :–

उदयस्स=उदय के,
उदीरणाए=उदीरणा के,
सामित्ताओ=स्वामित्व में,
न विज्जइ=नहीं है,
विसेसो=विशेषता,
मुत्तूण=छोड़कर,
य=और,
इगयालं=इकतालीस प्रकृतियों को,
सेसाणं=बाकी की,
सव्वपयडीणं=सभी प्रकृतियों के ।

गाथार्थ :–इकतालीस प्रकृतियों के सिवाय शेष सब प्रकृतियों के उदय और उदीरणा के स्वामित्व में कोई विशेषता नहीं है ।

विवेचन :–उदय और उदीरणा में यद्यपि अन्तर नहीं है, लेकिन इतनी विशेषता है कि इकतालीस कर्म प्रकृतियों के उदय और उदीरणा में भिन्नता है । इसलिए उदययोग्य 122 प्रकृतियों में से 41 प्रकृतियों को छोड़कर शेष 81 प्रकृतियों के उदय और उदीरणा में समानता जाननी चाहिए ।

कालप्राप्त कर्मपरमाणुओं के अनुभव करने को उदय कहते हैं और उदयावलि के बाहर स्थित कर्मपरिमाणुओं को कषाय सहित या कषाय रहित योग संज्ञा वाले वीर्य विशेष के द्वारा उदयावलि में लाकर उनका उदयप्राप्त कर्मपरमाणुओं के साथ अनुभव करना उदीरणा कहलाता है ।

इस प्रकार कर्मपरमाणुओं का अनुभवन उदय और उदीरणा में समान है । फिर भी दोनों में कालप्राप्त और अकालप्राप्त कर्मपरमाणुओं के अनुभवन का अंतर है । अर्थात् उदय में कालप्राप्त कर्मपरमाणु रहते हैं तथा उदीरणा में अकालप्राप्त कर्मपरमाणु रहते हैं ।

इसके सात अपवाद हैं । वे अपवाद इस प्रकार जानने चाहिए–

1. जिनका स्वोदय से सत्वनाश होता है उनका उदीरणा-विच्छेद एक आवलिकाकाल पहले ही हो जाता है और उदय-विच्छेद एक आवलिकाकाल बाद होता है ।

2. वेदनीय और मनुष्यायु की उदीरणा छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक ही होती है । जबकि इनका उदय अयोगिकेवली गुणस्थानक तक होता है ।

3. जिन प्रकृतियों का अयोगिकेवली गुणस्थानक में उदय है, उनकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थानक तक ही होती है ।

4. चारों आयुकर्मों का अपने-अपने भव की अंतिम आवलि में उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

5. निद्रादि पाँच का शरीर पर्याप्ति के बाद इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने तक उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

6. अंतरकरण करने के बाद प्रथमस्थिति में एक आवली काल शेष रहने पर मिथ्यात्व का, क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले के सम्यक्त्व का और उपशमश्रेणि में जो जिस वेद के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ा है उसके

उस वेद का उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

7. उपशमश्रेणि के सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में भी एक आवलिकाकाल शेष रहने पर सूक्ष्म लोभ का उदय ही होता है उदीरणा नहीं होती है ।

उक्त सात अपवादों वाली 41 प्रकृतियाँ हैं, जिससे ग्रंथकारने 41 प्रकृतियों को छोड़कर शेष सब प्रकृतियों के उदय और उदीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं बतलाई है ।

उदय और उदीरणा में विशेषता

नाणंतरायदसगं, दंसणनव वेअणिज्ज मिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेआऽऽउआणि नवनाम उच्चं च ।।68।।

–: शब्दार्थ :–

नाणंतरायदसगं=ज्ञानावरण और अंतराय की दस,	**लोभ**=संज्वलन लोभ,
दंसणनव=दर्शनावरण की नौ,	**वेआऽऽउआणि**=तीन वेद और चार आयु,
वेअणिज्ज=वेदनीय की दो,	**नवनाम**=नाम कर्म की नौ प्रकृति,
मिच्छत्तं=मिथ्यात्व,	**उच्चं**=उच्चगोत्र,
सम्मत्त=सम्यक्त्व मोहनीय,	**च**=और ।

गाथार्थ :–ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की कुल मिलाकर दस, दर्शनावरण की नौ, वेदनीय की दो, मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, संज्वलन लोभ, तीन वेद, चार आयु, नामकर्म की नौ और उच्च गोत्र, ये इकतालीस प्रकृतियाँ हैं, जिनके उदय और उदीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा विशेषता है ।

विवेचन :–गाथा में उदय और उदीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा विशेषता वाली इकतालीस प्रकृतियों के नाम बतलाये हैं । वे इकतालीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–ज्ञानावरण की मतिज्ञानावरण आदि पाँच, अंतराय की दानान्तराय आदि पाँच तथा दर्शनावरण की चक्षुदर्शनावरण आदि चार, कुल मिलाकर इन चौदह प्रकृतियों की बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानक में एक आवलि काल शेष रहने तक उदय और उदीरणा बराबर होती रहती है । परन्तु एक

आवलि काल के शेष रह जाने पर उसके बाद उक्त चौदह प्रकृतियों का उदय ही होता है किन्तु उदयावलिगत कर्मदलिक सब कारणों के अयोग्य होते हैं, इस नियम के अनुसार उनकी उदीरणा नहीं होती है ।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवों के शरीर पर्याप्ति के समाप्त होने के अनन्तर समय से लेकर जब तक इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक दर्शनावरण की शेष निद्रा आदि पाँच प्रकृतियों का उदय ही होता है उदीरणा नहीं होती है । इसके अतिरिक्त शेष काल में उनका उदय और उदीरणा एक साथ होती है और उनका विच्छेद भी एक साथ होता है ।

साता और असाता वेदनीय का उदय और उदीरणा प्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक एक साथ होते हैं, किन्तु अगले गुणस्थानकों में इनका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है । प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीव के अन्त करण करने के पश्चात् प्रथमस्थिति में एक आवलिका प्रमाण काल के शेष रहने पर मिथ्यात्व का उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है तथा क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जिस वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ने मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय का क्षय करके सम्यक्त्व की सर्व अपवर्तना के द्वारा अपवर्तना करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति शेष रखी है और उसके बाद उदय तथा उदीरणा के द्वारा उसका अनुभव करते हुए जब एक आवलि स्थिति शेष रह जाती है तब सम्यक्त्व का उदय ही होता है उदीरणा नहीं होती है । संज्वलन लोभ का उदय और उदीरणा एक साथ होती है । जब सूक्ष्म संपराय का समय एक आवलि शेष रहता है तब आवलि मात्र काल में लोभ का उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

तीन वेदों में से जिस वेद से जीव श्रेणि पर चढ़ता है, उसके अन्तरकरण करने के बाद उस वेद की प्रथमस्थिति में एक आवलिका प्रमाण काल के शेष रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है । चारों ही आयुष्य का अपने-अपने भव की अन्तिम आवलिका प्रमाण काल के शेष रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती । लेकिन मनुष्यायु में इतनी विशेषता है कि इसका प्रमत्तसंयत गुणस्थानक के बाद उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय,

यश:कीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं और उच्चगोत्र, इन दस प्रकृतियों का सयोगिकेवली गुणस्थानक तक उदय और उदीरणा दोनों ही सम्भव हैं किन्तु अयोगिकेवली गुणस्थानक में इनका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है ।

गुणस्थानकों में प्रकृतियों का बंध

तित्थयराहारग-विरहिआउ अज्जेइ सव्वपयडीओ ।
मिच्छत्तवेअगो सासणो वि गुणवीससेसाओ ।।69।।

–: शब्दार्थ :–

तित्थयराहारग=तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक,	**मिच्छत्तवेयगो**=मिथ्यादृष्टि,
विरहिआउ=बिना,	**सासणो**=सास्वादन गुणस्थानक वाला,
अज्जेइ=उपार्जित, बंध करता है,	**वि**=भी,
सव्वपयडीओ=सभी प्रकृतियों का,	**गुणवीस**=उन्नीस,
	सेसाओ=शेष, बाकी की ।

गाथार्थ :–मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक के बिना शेष सब प्रकृतियों का बंध करता है तथा सास्वादन गुणस्थानक वाला उन्नीस प्रकृतियों के बिना शेष प्रकृतियों को बाँधता है ।

विवेचन :–गुणस्थानक मिथ्यात्व, सास्वादन आदि चौदह हैं और ज्ञानावरण आदि आठ मूल कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ 148 हैं । उनमें से बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या 120 मानी गई है । बंध की अपेक्षा 120 प्रकृतियों के मानने का मतलब यह नहीं है कि शेष 28 प्रकृतियाँ छोड़ दी जाती हैं । लेकिन इसका कारण यह है कि पाँच बंधन और पाँच संघातन, ये दस प्रकृतियाँ शरीर की अविनाभावी हैं, अत: जहाँ जिस शरीर का बंध होता है, वहाँ उस बंधन और संघातन का बंध अवश्य होता है ।

जिससे इन दस प्रकृतियों को अलग से नहीं गिनाया जाता है । इस प्रकार 148 में से दस प्रकृतियों को कम कर देने पर 138 प्रकृतियाँ रह जाती हैं तथा वर्णचतुष्क के अवान्तर भेद 20 हैं किन्तु बंध में अवान्तर भेदों की विवक्षा न करके मूल में वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, ये चार प्रकृतियाँ ग्रहण की जाती

हैं । अतएव 138 में से 20 - 4 = 16 घटा देने पर 122 प्रकृतियाँ शेष रह जाती हैं । दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्व, सम्यग् मिथ्यात्व और मिथ्यात्व, ये तीन प्रकृतियाँ हैं । उनमें से सम्यक्त्व और सम्यग् मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ बंध प्रकृतियाँ नहीं हैं । क्योंकि बंध मिथ्यात्व प्रकृति का होता है और जीव अपने सम्यक्त्व गुण के द्वारा ही मिथ्यात्व के दलिकों के तीन भाग बना देता है । इनमें से जो अत्यन्त विशुद्ध होता है उसे सम्यक्त्व और जो कम विशुद्ध होता है उसे सम्यग् मिथ्यात्व संज्ञा प्राप्त होती है और इन दोनों के अतिरिक्त शेष अशुद्ध भाग मिथ्यात्व कहलाता है । अतः 122 में से सम्यक्त्व व मिश्र मोहनीय इन दो प्रकृतियों को घटा देने पर शेष 120 प्रकृतियाँ बंधयोग्य मानी जाती हैं ।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में बंधयोग्य प्रकृतियों को बतलाने के लिए गाथा में कहा है कि तीर्थंकरनाम और आहारकद्विक-आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय शेष 117 प्रकृतियों का बंध होता है । इन तीन प्रकृतियों के बंध न होने का कारण यह है कि तीर्थंकरनाम का बंध सम्यक्त्व गुण के सद्भाव में और आहारकद्विक का बंध संयम के सद्भाव में होता है । किन्तु पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में न सम्यक्त्व है और न संयम । इसीलिए मिथ्यात्व गुणस्थानक में उक्त तीन प्रकृतियों का बंध न होकर शेष 117 प्रकृतियों का बंध होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में उन्नीस प्रकृतियों के बिना शेष 101 प्रकृतियों का बंध होता है । अर्थात् मिथ्यात्व गुण के निमित्त से जिन सोलह प्रकृतियों का बंध होता है, उनका सास्वादन गुणस्थानक में मिथ्यात्व का अभाव होने से बंध नहीं होता है । मिथ्यात्व के निमित्त से बँधने वाली सोलह प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं :

1. मिथ्यात्व, 2. नपुंसकवेद, 3. नरकगति, 4. नरकानुपूर्वी, 5. नरकायु, 6. एकेन्द्रिय जाति, 7. द्वीन्द्रिय जाति, 8. त्रीन्द्रिय जाति, 9. चतुरिन्द्रिय जाति, 10. हुंडकसंस्थान, 11. सेवार्त संहनन, 12. आतप, 13. स्थावर, 14. सूक्ष्म, 15. साधारण और 16 अपर्याप्त । मिथ्यात्व से बँधने वाली 117 प्रकृतियों में से उक्त 16 प्रकृतियों को घटा देने पर सास्वादन गुणस्थानक में 101 प्रकृतियों का बंध होता है ।

छायालसेस मीसो, अविरयसम्मो तिआलपरिसेसा ।
तेवन्न देसविरओ, विरओ सगवन्नसेसाओ ।।70।।

–: शब्दार्थ :–

छायालसेस=छियालीस के बिना,	**तेवन्न**=त्रेपन,
मीसो=मिश्र गुणस्थानक में,	**देसविरओ**=देशविरत,
अविरयसम्मो=अविरति सम्यग्दृष्टि में,	**विरओ**=प्रमत्तविरत,
तिआलपरिसेस=तेतालीस के बिना,	**सगवन्नसेसाओ**=सत्तावन के सिवाय शेष ।

गाथार्थ :–मिश्र गुणस्थानक में छियालीस के बिना शेष प्रकृतियों का, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में तेतालीस के बिना शेष प्रकृतियों का, देशविरत में तिरेपन के बिना और प्रमत्तविरत में सत्तावन के बिना शेष प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :–तीसरे मिश्र गुणस्थानक में बंधयोग्य 120 प्रकृतियों में से छियालीस प्रकृतियों को घटाने पर शेष रहीं 120-46 = 74 प्रकृतियों का बंध होता है । इसका कारण यह है कि दूसरे सास्वादन गुणस्थानक तक अनन्तानुबंधी का उदय होता है, लेकिन तीसरे मिश्र गुणस्थानक में अनन्तानुबंधी का उदय नहीं होता है । अतः अनन्तानुबंधी के उदय से जिन 25 प्रकृतियों का बंध होता है, उनका यहाँ बंध नहीं है । अर्थात् तीसरे मिश्र गुणस्थानक में सास्वादन गुणस्थानक की बंधयोग्य 101 प्रकृतियों से 25 प्रकृतियाँ और घट जाती हैं ।

वे 25 प्रकृतियाँ ये हैं-स्त्यानर्द्धित्रिक, अनन्तानुबंधीचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, प्रथम और अन्तिम को छोड़कर मध्य के चार संस्थान, प्रथम और अन्तिम को छोड़ कर मध्य के चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्र । इसके अतिरिक्त यह नियम है कि मिश्र गुणस्थानक में किसी भी आयु का बंध नहीं होता है अतः यहाँ मनुष्यायु और देवायु, ये दो आयु और कम हो जाती हैं । मनुष्यायु और देवायु इन दो आयुयों को घटाने का कारण यह है कि नरकायु का बंधविच्छेद पहले और तिर्यंचायु का बंधविच्छेद दूसरे गुणस्थानक में हो जाता है । अतः आयु कर्म के चारों भेदों में से शेष रही मनुष्यायु और देवायु,

इन दो प्रकृतियों को ही यहाँ कम किया जाता है । इस प्रकार सास्वादन गुणस्थानक में नहीं बँधने वाली 19 प्रकृतियों में इन 25 + 2 = 27 प्रकृतियों को मिला देने पर 46 प्रकृतियाँ होती हैं जिनका मिश्र गुणस्थानक में बंध नहीं होता है । किन्तु 120 प्रकृतियों में से 46 प्रकृतियों के सिवाय शेष रही 74 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 43 प्रकृतियों के बिना शेष 77 प्रकृतियों का बंध होता है । इसका कारण यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर नाम, इन तीन प्रकृतियों का बंध सम्भव है । अतः यहाँ बंधयोग्य 120 प्रकृतियों में से 46 न घटाकर 43 प्रकृतियाँ ही घटाई हैं । इस प्रकार अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 77 प्रकृतियों का बंध बतलाया है ।

देशविरत नामक पाँचवें गुणस्थानक में 53 के बिना 67 प्रकृतियों का बंध बतलाया है । इसका अर्थ यह है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जिन दस प्रकृतियों का बंध अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के होता है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने से उनका यहाँ बंध नहीं होता है । अतः चौथे गुणस्थानक में कम की गई 43 प्रकृतियों में 10 प्रकृतियाँ को और जोड़ देने पर देशविरत गुणस्थानक में बंध के अयोग्य 53 प्रकृतियां हो जाती हैं और इनके अतिरिक्त शेष रहीं 67 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से बँधने वाली 10 प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं–अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रऋषभनाराच संहनन ।

छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 57 के बिना 63 प्रकृतियों का बंध होता है । इसका आशय यह है कि प्रत्याख्यानावरण के उदय से जिन प्रत्याख्यानावरण चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) का बंध देशविरत गुणस्थानक तक होता था, उनका प्रमत्तविरत गुणस्थानक में बंध नहीं होता है । अतः जिन 53 प्रकृतियों को देशविरत गुणस्थानक में बँधने के अयोग्य बतलाया है, उनमें इन चार प्रकृतियों के और मिला देने पर प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 57 प्रकृतियाँ बंध के अयोग्य होती हैं–इसलिए प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 63 प्रकृतियों का बंध होता है ।

इगुणट्ठि-मप्पमत्तो, बंधइ देवाउअस्स इअरो वि ।
अट्ठावन्नमपुव्वो, छप्पन्नं वावि छव्वीसं ।।71।।

–: शब्दार्थ :–

इगुणट्ठि=उनसठ प्रकृतियों के,	**अपुव्वो**=अपूर्वकरण गुणस्थानक वाला,
अप्पमत्तो=अप्रमत्त संयत,	**छप्पन्नं**=छप्पन,
बंधइ=बंध करता है,	**वावि**=अथवा भी,
देवाउअस्स=देवायु का बंधक,	**छव्वीसं**=छब्बीस ।
इअरो वि=अप्रमत्त भी,	
अट्ठावन्नं=अट्ठावन,	

गाथार्थ :–अप्रमत्तसंयत गुणस्थानकवर्ती जीव उनसठ प्रकृतियों का बंध करता है । यह देवायु का भी बंध करता है । अपूर्वकरण गुणस्थानक वाला अट्ठावन, छप्पन अथवा छब्बीस प्रकृतियों का बंध करता है ।

विवेचन :–सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थानक में उनसठ प्रकृतियों का बंध होता है– छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 63 प्रकृतियों का बंध होता है, उनमें से असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अपयश इन छह प्रकृतियों का सातवें गुणस्थानक में बंध नहीं होता है, छठे गुणस्थानक तक बंध होता है । अतः पूर्वोक्त 63 प्रकृतियों में से इन 6 प्रकृतियों को कम कर देने पर 57 प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन इस गुणस्थानक में आहारकद्विक का बंध होता है जिससे 57 में 2 प्रकृतियों को और मिला देने पर अप्रमत्तसंयत के 59 प्रकृतियों का बंध कहा गया है ।

उक्त 59 प्रकृतियों में देवायु भी सम्मिलित है लेकिन ग्रन्थकार ने अप्रमत्तसंयत देवायु का भी बंध करता है–इस प्रकार पृथक् से निर्देश किया है । उसका अभिप्राय यह है कि देवायु के बंध का प्रारम्भ प्रमत्तसंयत ही करता है फिर भी वह जीव देवायु का बंध करते हुए अप्रमत्तसंयत भी हो जाता है और इस प्रकार अप्रमत्तसंयत भी देवायु का बंधक होता है । परन्तु इससे कोई यह न समझे कि अप्रमत्तसंयत भी देवायु के बंध का प्रारम्भ करता है ।

अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानक में अट्ठावन, छप्पन और छब्बीस प्रकृतियों का बंध होता है । प्रकृतियों की संख्या में भिन्नता का कारण यह है कि पूर्वोक्त 59 प्रकृतियों में से देवायु के बंध का विच्छेद हो जाने पर अपूर्वकरण

गुणस्थानक वाला जीव पहले संख्यातवें भाग में 58 प्रकृतियों का बंध करता है। अनन्तर निद्रा और प्रचला का बंधविच्छेद हो जाने पर संख्यातवें भाग के शेष रहने तक 56 प्रकृतियों का बंध करता है और उसके बाद देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, तैजसशरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्त्र संस्थान, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर, इन तीस प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाने पर अंतिम भाग में 26 प्रकृतियों का बंध करता है।

बावीसा एगूणं, बंधइ अट्ठारसंत-मनिअट्टी ।
सत्तरस सुहुमसरागो सायममोहो सजोगुत्ति ।।72।।

–: शब्दार्थ :–

बावीस=बाईस,	**सुहुमसरागो**=सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाला,
एगूणं=एक एक कम,	**सायं**=साता वेदनीय को,
बंधइ=बंध करता है,	**अमोहो**=अमोही (उपशांतमोह, क्षीणमोह)
अट्ठारसंतं=अठारह पर्यन्त,	**सजोगुत्ति**=सयोगिकेवली गुणस्थान तक।
मनिअट्टी=अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक वाला,	
सत्तरस=सत्रह,	

गाथार्थ :–अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक वाला बाईस का और उसके बाद एक-एक प्रकृति कम करते हुए अठारह प्रकृतियों का बंध करता है। सूक्ष्मसंपराय वाला सत्रह प्रकृतियों को बाँधता है तथा उपशांतमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थानक वाले सिर्फ एक सातावेदनीय प्रकृति का बंध करते हैं।

विवेचन :–नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक के पहले भाग में बाईस प्रकृतियों का बंध होता है। इसका कारण यह है कि यद्यपि आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में 26 प्रकृतियों का बंध होता है, फिर भी उसके अंतिम समय में हास्य, रति, अरति और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाने से नौवें गुणस्थानक के पहले समय में 22 प्रकृतियों का बंध बतलाया है। इसके

बाद पहले भाग के अंत में पुरुषवेद का, दूसरे भाग के अंत में संज्वलन क्रोध का, तीसरे भाग के अंत में संज्वलन मान का, चौथे भाग के अंत में संज्वलन माया का विच्छेद हो जाने से पांचवें भाग में 18 प्रकृतियों का बंध होता है, अर्थात् नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक के बंध की अपेक्षा पाँच भाग हैं अतः प्रारंभ में तो 22 प्रकृतियों का बंध होता है और उसके बाद पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, भाग के अंत में क्रमशः एक-एक प्रकृति का बंधविच्छेद होते जाने से 21, 20, 19 और 18 प्रकृतियों का बंध होता है ।

क्रम संख्या	गुणस्थानक	बंध	अबंध	बंधविच्छेद
1.	मिथ्यात्व	117	3	16
2.	सास्वादन	101	19	25
3.	मिश्र	74	46	0
4.	अविरतसम्यग्दृष्टि	77	43	10
5.	देशविरत	67	53	4
6.	प्रमत्तविरत	63	57	6
7.	अप्रमत्तविरत	59	61	1
8.	अपूर्वकरण प्रथम भाग	58	62	2
	अपूर्वकरण द्वितीय भाग	56	64	30
	अपूर्वकरण तृतीय भाग	26	94	4
9.	अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग	22	98	1
	अनिवृत्तिकरण द्वितीय भाग	21	99	1
	अनिवृत्तिकरण तृतीय भाग	20	100	1
	अनिवृत्तिकरण चतुर्थ भाग	19	101	1
	अनिवृत्तिकरण पंचम भाग	18	102	1
10.	सूक्ष्मसंपराय	17	103	16
11.	उपशांतमोह	1	119	0
12.	क्षीणमोह	1	119	0
13.	सयोगिकेवली	1	119	0
14.	अयोगिकेवली	0	120	1

लेकिन जब अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक के पाँचवें भाग के अंत में संज्वलन लोभ का बंधविच्छेद होता है तब दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 17 प्रकृतियों का बंध बतलाया है–

दसवें गुणस्थानक के अंत में ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पाँच, यश:कीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है। अर्थात् दसवें गुणस्थानक तक मोहनीयकर्म का उपशम या क्षय हो जाने से अमोह दशा प्राप्त हो जाती है जिससे मोहनीयकर्म से विहीन जो उपशांतमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली-ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानक में सिर्फ एक सातावेदनीयकर्म का बंध होता है।

तेरहवें सयोगिकेवलि गुणस्थानक के अंत में सातावेदनीय का भी बंधविच्छेद हो जाने से चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानक में बंध के कारणों का अभाव हो जाने से किसी भी कर्म का बंध नहीं होता है। अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थानक कर्मबंध से रहित है।

बंधस्वामित्व

एसो उ बंधसामित्त ओहो गइआइएसु वि तहेव।
ओहाओ साहिज्जइ, जत्थ जहा पगइसब्भावो ॥73॥

–: शब्दार्थ :–

एसो=यह पूर्वोक्त गुणस्थानक का बंधभेद,
उ=और,
बंधसामित्त=बंध स्वामित्व का,
ओहो=ओघ (सामान्य) से, इसी प्रकार,
गइआइएसु=गति आदि मार्गणाओं में,
वि=भी,
तहेव=वैसे ही, इसी प्रकार,
ओहाओ=ओघ से कहे अनुसार,
साहिज्जइ=कहना चाहिए,
जत्थ=जिस मार्गणास्थान में,
जहा=जिस प्रकार से,
पगइसब्भावो=प्रकृति का सद्भाव।

गाथार्थ :–यह पूर्वोक्त गुणस्थानकों का बंधभेद, स्वामित्व का ओघ कथन जानना चाहिए। गति आदि मार्गणाओं में भी इसी प्रकार (सामान्य से) जहाँ जितनी प्रकृतियों का बंध होता है, तदनुसार वहाँ भी ओघ के समान बंधस्वामित्व का कथन करना चाहिए।

विवेचन :–गति आदि मार्गणाओं में कितनी-कितनी प्रकृतियों का बंध होता है और कितनी-कितनी प्रकृतियों का बंध नहीं होता है । विचार करके ओघ के समान मार्गणास्थानों में भी बंधस्वामित्व का कथन कर लेना चाहिए ।

तित्थयर-देवनिरयाउअं, च तिसु तिसु गईसु बोधव्वं ।
अवसेसा पयडीओ, हवंति सव्वासु वि गईसु ।।74।।

–: शब्दार्थ :–

तित्थयर-देवनिरयाउअं=तीर्थंकर, देवायु और नरकायु,	**अवसेसा**=शेष, बाकी की,
च=और,	**पयडीओ**=प्रकृतियाँ,
तिसु तिसु=तीन-तीन,	**हवंति**=होती हैं,
गईसु=गतियों में,	**सव्वासु**=सभी,
बोधव्वं=जानना चाहिए,	**वि**=भी,
	गईसु=गतियों में ।

गाथार्थ :–तीर्थंकर नाम, देवायु और नरकायु, इनकी सत्ता तीन-तीन गतियों में होती है और इनके सिवाय शेष प्रकृतियों की सत्ता सभी गतियों में होती है ।

विवेचन :–अब जिस गति में जितनी प्रकृतियों की सत्ता होती है, उसका निर्देश करते हैं कि तीर्थंकर नाम, देवायु और नरकायु, इन तीन प्रकृतियों की सत्ता तीन-तीन गतियों में पाई जाती है । अर्थात् तीर्थंकर नामकर्म की नरक, देव और मनुष्य इन तीन गतियों में सत्ता पाई जाती है, किन्तु तिर्यंचगति में नहीं । क्योंकि तीर्थंकर नामकर्म की सत्ता वाला तिर्यंचगति में उत्पन्न नहीं होता है, तथा तिर्यंचगति में तीर्थंकर नामकर्म का बंध नहीं होता है । अतः नरक, देव और मनुष्य, इन तीन गतियों में ही तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता बतलाई है ।

तिर्यंच, मनुष्य और देव गति में ही देवायु की सत्ता पाई जाती है, क्योंकि नरकगति में नारकों के देवायु के बंध न होने का नियम है । इसी प्रकार

तिर्यंच, मनुष्य और नरक गति में ही नरकायु की सत्ता होती है, देवगति में नहीं क्योंकि देवों के नरकायु का बंध सम्भव नहीं है ।

उक्त प्रकृतियों के सिवाय शेष सभी प्रकृतियों की सत्ता चारों गतियों में पाई जाती है । आशय यह है कि देवायु का बंध तो तीर्थंकर प्रकृति के बंध के पहले भी होता है और पीछे भी होता है, किन्तु नरकायु के संबंध में यह नियम है कि जिस मनुष्य ने नरकायु का बंध कर लिया है, वह सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का भी बंध कर सकता है । इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीवदेव और नारक-मनुष्यायु का ही बंध करते हैं तिर्यंचायु का नहीं, यह नियम है । अतः तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता तिर्यंचगति को छोड़कर शेष तीन गतियों में पाई जाती है ।

इसी प्रकार नारक के देवायु का, देव के नरकायु का बंध नहीं करने का नियम है, अतः देवायु की सत्ता नरकगति को छोड़कर शेष तीन गतियों में और नरकायु की सत्ता देवगति को छोड़कर शेष तीन गतियों में पाई जाती है ।

उक्त आशय का यह निष्कर्ष हुआ कि तीर्थंकर, देवायु और नरकायु इन तीन प्रकृतियों के सिवाय शेष सब प्रकृतियों की सत्ता सब गतियों में होती है । यानी नाना जीवों की अपेक्षा नरकगति में देवायु के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है, तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति के बिना 147 प्रकृतियों की और देवगति में नरकायु के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । लेकिन मनुष्यगति में 148 प्रकृतियों की ही सत्ता होती है ।

उपशमश्रेणी का स्वरूप

पढमकसायचउक्कं, दंसणतिग सत्तगा वि उवसंता ।
अविरयसम्मत्ताओ, जाव निअट्टित्ति नायव्वा ।।75।।

–: शब्दार्थ :–

पढमकसायचउक्कं=प्रथम कषाय चतुष्क (अनंतानुबंधीकषाय चतुष्क),
दंसणतिग=दर्शनमोहनीयत्रिक,
सत्तगा वि=सातों प्रकृतियाँ,
उवसंता=उपशान्त हुई,

अविरयसम्मत्ताओ=अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक से लेकर,	**जाव निअट्टित्ति**=अपूर्वकरण गुणस्थानक तक, **नायव्वा**=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–प्रथम कषाय चतुष्क (अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क) दर्शनमोहत्रिक, ये सात प्रकृतियाँ अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानक तक नियम से उपशांत हो जाती हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

विवेचन :–उपशमश्रेणि का स्वरूप बतलाने के लिए गाथा में यह बतलाया है कि उपशमश्रेणि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है ।

कर्म शक्ति को निष्क्रिय बनाने के लिए दो श्रेणि हैं–उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि । इन दोनों श्रेणियों का मुख्य लक्ष्य मोहनीयकर्म को निष्क्रिय बनाना है । उसमें से उपशमश्रेणि में जीव चारित्र-मोहनीयकर्म का उपशम करता है और क्षपकश्रेणि में जीव चारित्र मोहनीय और यथासंभव अन्य कर्मों का क्षय करता है । इनमें से जब जीव उपशमश्रेणि को प्राप्त करता है तब पहले अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क का उपशम करता है, तदनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके उपशमश्रेणि के योग्य होता है । इन सात प्रकृतियों के उपशम का प्रारंभ तो अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानकों मे से किसी भी गुणस्थानक में किया जा सकता है किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थानक में तो नियम से इनका उपशमन हो ही जाता है ।

अनंतानुबंधी की उपशमना

अनंतानुबंधी चतुष्क की उपशमना करने वाले स्वामी के प्रसंग में बतलाते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, विरत (प्रमत्त और अप्रमत्त) गुणस्थानकवर्ती जीवों में से कोई भी जीव किसी भी योग में वर्तमान हो अर्थात् जिसके चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक काययोग, इनमें से कोई एक योग हो, जो पीत, पद्म और शुक्ल, इन तीन शुभ लेश्याओं में से किसी एक लेश्या वाला हो, जो साकार उपयोग वाला (ज्ञानोपयोग वाला) हो, जिसके आयुकर्म के बिना सत्ता में स्थित शेष सात कर्मों की स्थिति अन्तः कोड़ा-कोड़ी सागर के भीतर हो, जिसकी चित्तवृत्ति अन्तर्मूहूर्त पहले से उत्तरोत्तर निर्मल हो, जो परावर्तमान अशुभ प्रकृतियों को छोड़कर शुभ प्रकृतियों का ही बंध

करने लगा हो, जिसने अशुभ प्रकृतियों के सत्ता में स्थित चतुःस्थानी अनुभाग को द्विस्थानी कर लिया हो और शुभ प्रकृतियों की सत्ता में स्थित द्विस्थानी अनुभाग को चतुःस्थानी कर लिया हो और जो एक स्थितिबंध के पूर्ण होने पर अन्य स्थितिबंध को पूर्व-पूर्व स्थितिबंध की अपेक्षा उत्तरोत्तर पल्य के संख्यातवें भाग कम बाँधने लगा हो-ऐसा जीव ही अनंतानुबंधी चतुष्क को उपशम करता है ।

अनंतानुबंधीचतुष्क की उपशमना के लिए वह जीव यथाप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नाम के तीन करण करता है । यथाप्रवृत्तकरण में तो करण के पहले के समान अवस्था बनी रहती है । अपूर्वकरण में स्थितिबंध आदि बहुत-सी क्रियायें होने लगती हैं, इसलिए इसे अपूर्वकरण कहते हैं और अनिवृत्तिकरण में समान काल वालों की विशुद्धि समान होती है इसीलिए इसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं । अब उक्त विषय को विशेष स्पष्ट करते हैं कि यथाप्रवृत्तकरण में प्रत्येक समय उत्तरोत्तर अनंतगुणी विशुद्धि होती है और शुभ प्रकृतियों का बंध आदि पूर्ववत् चालू रहता है । किन्तु स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रम नहीं होता है, क्योंकि यहाँ इनके योग्य विशुद्धि नहीं पाई जाती है और नाना जीवों की अपेक्षा इस करण में प्रति समय असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो छह स्थान पतित होते हैं ।

हानि और वृद्धि की अपेक्षा ये छह स्थान दो प्रकार के होते हैं–

1. अनंत भागहानि । 2. असंख्यात भागहानि । 3. संख्यात भागहानि । 4. संख्यात गुणहानि । 5. असंख्यात गुणहानि और 6. अनंत गुणहानि । ये हानिरूप छह स्थान हैं । वृद्धि की अपेक्षा छह स्थान इस प्रकार हैं–1. अनन्त भागवृद्धि 2. असंख्यात भागवृद्धि 3. संख्यात भागवृद्धि 4. संख्यात गुणवृद्धि 5. असंख्यात गुणवृद्धि 6. अनन्त गुणवृद्धि ।

इन षड्स्थानों का आशय यह है कि जब हम एक जीव की अपेक्षा विचार करते हैं तब पहले समय के परिणामों से दूसरे समय के परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धि को लिये हुए प्राप्त होते हैं और जब नाना जीवों की अपेक्षा विचार करते हैं तब एक समय वर्ती नाना जीवों के परिणाम छह स्थान पतित प्राप्त होते हैं तथा यथाप्रवृत्तकरण के पहले समय में नाना जीवों की अपेक्षा जितने परिणाम होते हैं, उससे दूसरे समय के परिणाम विशेषाधिक होते हैं,

दूसरे समय से तीसरे समय में और तीसरे समय से चौथे समय में इसी प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के चरम समय तक विशेषाधिक-विशेषाधिक परिणाम होते हैं। इसमें भी पहले समय में जघन्य विशुद्धि सबसे थोड़ी होती है, उससे दूसरे समय में जघन्य विशुद्धि अनंतगुणी होती है, उससे तीसरे समय में जघन्य विशुद्धि अनंतगुणी होती है। इस प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के संख्यातवें भाग के प्राप्त होने तक यही क्रम चलता रहता हैं। पर यहाँ जो जघन्य विशुद्धि प्राप्त होती है, उससे पहले समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणी होती है।

तदनन्तर पहले समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से यथाप्रवृत्तकरण के संख्यातवें भाग के अगले समय की जघन्य विशुद्धि अनंतगुणी होती है। पुनः इससे दूसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणी होती है। पुनः उससे यथा-प्रकृत्तकरण के संख्यातवें भाग के आगे दूसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनंतगुणी होती है।

इस प्रकार यथाप्रवृत्तकरण के अन्तिम समय में जघन्य विशुद्धिस्थान के प्राप्त होने तक ऊपर और नीचे एक-एक विशुद्धिस्थान को अनंतगुणा करते जाना चाहिए, पर इसके आगे जितने विशुद्धिस्थान शेष रह गये हैं, केवल उन्हें उत्तरोत्तर अनंतगुणा करना चाहिए। यथाप्रवृत्तकरण का समय अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

इस तरह अन्तर्मुहूर्त काल में यथाप्रवृत्तकरण समाप्त होने के बाद दूसरा अपूर्वकरण होता है। इसमें प्रतिसमय असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो प्रतिसमय छह स्थान पतित होते हैं। इसमें भी पहले समय में जघन्य विशुद्धि सबसे थोड़ी होती है जो यथा-प्रवृत्तकरण के अन्तिम समय में कही गई उत्कृष्ट विशुद्धि से अनन्तगुणी होती है। पुनः इसके पहले समय में ही उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। तदनन्तर इसके दूसरे समय में जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। इस प्रकार अपूर्वकरण का अन्तिम समय प्राप्त होने तक प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

अपूर्वकरण के पहले समय में ही स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणि, गुणसंक्रम और अपूर्व स्थितिबन्ध, ये पाँच कार्य एक साथ प्रारम्भ हो जाते हैं। जिनका आशय निम्नानुसार है–

स्थितिघात में सत्ता में स्थित स्थिति के अग्रभाग से अधिक से अधिक सैकड़ों सागरोपम प्रमाण और कम से कम पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण

स्थितिखण्ड का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है तथा यहाँ जिस स्थिति का आगे चलकर घात नहीं होगा, उसमें प्रतिसमय दलिकों का निक्षेप किया जाता है और इस प्रकार एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उस स्थिति खण्ड का घात हो जाता है। अनन्तर इसके नीचे के दूसरे पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिखण्ड का उक्त प्रकार घात किया जाता है। इस प्रकार अपूर्वकरण के काल में उक्त क्रम से हजारों स्थितिखण्डों का घात होता है। जिससे पहले समय की स्थिति से अन्त के समय की स्थिति संख्यातगुणी हीन रह जाती है।

रसघात

रसघात में अशुभ प्रकृतियों का सत्ता में स्थित जो अनुभाग है, उसके अनंतवें भाग प्रमाण अनुभाग को छोड़कर शेष का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। अनन्तर जो अनंतवाँ भाग अनुभाग शेष रहा था उसके अनंतवें भाग को छोड़कर शेष का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। इस प्रकार एक-एक स्थितिखण्ड के उत्कीरण काल के भीतर हजारों अनुभाग खण्ड खपा दिये जाते हैं।

गुणश्रेणि

गुणश्रेणि में अनंतानुबंधी चतुष्क की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को छोड़कर ऊपर की स्थिति वाले दलिकों में से प्रति समय कुछ दलिक लेकर उदयावलि के ऊपर की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति में उनका निक्षेप किया जाता है। जिसका क्रम इस प्रकार है कि पहले समय में जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं उनमें से सबसे कम दलिक उदयावलि के ऊपर पहले समय में स्थापित किये जाते हैं। इनसे असंख्यातगुणे दलिक दूसरे समय में स्थापित किये जाते हैं। इनसे असंख्यातगुणे दलिक तीसरे समय में स्थापित किये जाते हैं।

इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेप किया जाता है। यह प्रथम समय में ग्रहण किये गये दलिकों की निक्षेप विधि है। दूसरे आदि समयों में जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं, उनका निक्षेप भी इसी प्रकार होता है, किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणश्रेणि की रचना के पहले समय में जो दलिक ग्रहण

किये जाते हैं वे सबसे थोड़े होते हैं। दूसरे समय में जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं वे इनसे असंख्यातगुणे होते हैं। इसी प्रकार गुणश्रेणिकरण के अन्तिम समय के प्राप्त होने तक तृतीयादि समयों में जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं वे उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे होते हैं। यहाँ इतनी विशेषता और है कि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण का काल जिस प्रकार उत्तरोत्तर व्यतीत होता जाता है, तदनुसार गुणश्रेणि के दलिकों का निक्षेप अन्तर्मुहूर्त के उत्तरोत्तर शेष बचे हुए समयों में होता है, अन्तर्मुहूर्त से ऊपर के समयों में नहीं होता है। जैसे कि मान लो गुणश्रेणि के अन्तर्मुहूर्त का प्रमाण पचास समय है और अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण इन दोनों के काल का प्रमाण चालीस समय है। अब जो जीव अपूर्वकरण के पहले समय में गुणश्रेणि की रचना करता है वह गुणश्रेणि के सब समयों में दलिकों का निक्षेप करता है तथा दूसरे समय में शेष उनचास समयों में दलिकों का निक्षेप करता है। इस प्रकार जैसे-जैसे अपूर्वकरण का काल व्यतीत होता जाता है वैसे-वैसे दलिकों का निक्षेप कम-कम समयों में होता जाता है।

गुणसंक्रम

गुणसंक्रम प्रदेशसंक्रम का एक भेद है। इसमें प्रतिसमय उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित क्रम से अबध्यमान अनंतानुबंधी आदि अशुभ कर्मप्रकृतियों के कर्मदलिकों का उस समय बँधने वाली सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण होता है। यह क्रिया अपूर्वकरण के पहले समय से ही प्रारम्भ हो जाती है।

स्थितिबंध

अपूर्वकरण के पहले समय से ही जो स्थितिबंध होता है, वह अपूर्व अर्थात् इसके पहले होने वाले स्थितिबंध से बहुत थोड़ा होता है। इसके सम्बन्ध में यह नियम है कि स्थितिबंध और स्थितिघात इन दोनों का प्रारम्भ एक साथ होता है और इनकी समाप्ति भी एक साथ होती है। इस प्रकार इन पाँचों कार्यों का प्रारम्भ अपूर्वकरण में एक साथ होता है।

अपूर्वकरण समाप्त होने पर **अनिवृत्तिकरण** होता है। इसमें प्रविष्ट हुए जीवों के परिणामों में एकरूपता होती है अर्थात् इस करण में प्रविष्ट हुए जीवों के जिस प्रकार शरीर के आकार आदि में भेद दिखाई देता है, उस प्रकार

उनके परिणामों में भेद नहीं होता है, यानी समान समय वाले एक साथ में चढ़े हुए जीवों के परिणाम समान ही होते हैं और भिन्न समय वाले जीवों के परिणाम सर्वथा भिन्न ही होते हैं। तात्पर्य यह है कि अनिवृत्तिकरण के पहले समय में जो जीव हैं, थे और होंगे, उन सबके परिणाम एक से ही होते हैं। दूसरे समय में जो जीव हैं, थे और होंगे, उनके भी परिणाम एकसे ही होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयों में भी समझना चाहिए। इसलिए अनिवृत्तिकरण के जितने समय हैं, उतने ही इसके परिणाम होते हैं, न्यूनाधिक नहीं। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके प्रथम आदि समयों में जो विशुद्धि होती है, द्वितीय आदि समयों में वह उत्तरोत्तर अनंतगुणी होती है।

अपूर्वकरण के स्थितिघात आदि पांचों कार्य अनिवृत्तिकरण में भी चालू रहते हैं। इसके अन्तर्मुहूर्त काल में से संख्यात भागों के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रहता है तब अनंतानुबंधी चतुष्क के एक आवलिका प्रमाण नीचे के निषेकों को छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों का अन्तरकरण किया जाता है। इस क्रिया को करने में न्यूनतम स्थितिबंध के काल के बराबर समय लगता है।

यदि उदयवाली प्रकृतियों का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और यदि अनुदयवाली प्रकृतियों का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी नीचे की स्थिति आवलि प्रमाण छोड़ दी जाती है। जोकि यहाँ अनंतानुबंधी चतुष्क का अन्तरकरण करना है किन्तु उसका चौथे आदि गुणस्थानकों में उदय नहीं होता है इसलिए इसके नीचे के आवलि प्रमाण दलिकों को छोड़कर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है।

अंतरकरण में अन्तर का अर्थ व्यवधान और करण का अर्थ क्रिया है। तदनुसार जिन प्रकृतियों का अन्तरकरण किया जाता है, उनके दलिकों की पंक्ति को मध्य से भंग कर दिया जाता है। इससे दलिकों की तीन अवस्थायें हो जाती हैं-प्रथमस्थिति, सान्तरस्थिति और उपरितम या द्वितीयस्थिति। प्रथमस्थिति का प्रमाण एक आवलि या एक अन्तर्मुहूर्त होता है। इसके बाद सान्तरस्थिति प्राप्त होती है। यह दलिकों से शून्य अवस्था है। इसका भी समय प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। इसके बाद द्वितीयस्थिति प्राप्त होती है। इसका प्रमाण दलिकों की शेषस्थिति है।

अन्तरकरण करने से पहले दलिकों की पंक्ति.....
इस प्रकार अविच्छिन्न रहती है किन्तु अन्तरकरण कर लेने पर उसकी
अवस्था..... .....इस प्रकार हो जाती है ।
यहाँ मध्य में जो रिक्तस्थान दिखता है, वहाँ के कुछ दलिकों को यथासंभव बँधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियों में मिला दिया जाता है । इस अंतर स्थान से नीचे (पहले) की स्थिति को प्रथम स्थिति और ऊपर (बाद) की स्थिति को द्वितीयस्थिति कहते हैं । उदयवाली प्रकृतियों के अन्तरकरण करने का काल और प्रथमस्थिति का प्रमाण समान होता है किन्तु अनुदयवाली प्रकृतियों की प्रथमस्थिति के प्रमाण से अन्तरकरण करने का काल बहुत बड़ा होता है । अन्तरकरण क्रिया के चालू रहते हुए उदयवाली प्रकृतियों की प्रथमस्थिति का एक-एक दलिक उदय में आकर निर्जीर्ण होता जाता है और अनुदयवाली प्रकृतियों की प्रथम स्थिति के एक-एक दलिक का उदय में आने वाली सजातीय प्रकृतियों में स्तिबुकसंक्रमण के द्वारा संक्रम होता रहता है ।

यहाँ अनंतानुबंधी के उपशम का कथन कर रहे हैं किन्तु उसका उदय यहाँ नहीं है, अतः इसके प्रथमस्थितिगत प्रत्येक दलिक का भी स्तिबुकसंक्रमण द्वारा पर-प्रकृतियों में संक्रमण होता रहता है । इस प्रकार अन्तरकरण के हो जाने पर दूसरे समय में अनंतानुबंधी चतुष्क की द्वितीयस्थिति वाले दलिकों का उपशम किया जाता है । पहले समय में थोड़े दलिकों का उपशम किया जाता है । दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणे दलिकों का, तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम किया जाता है । इसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे दलिकों का प्रतिसमय उपशम किया जाता है ।

इतने समय में समस्त अनंतानुबंधी चतुष्क का उपशम हो जाता है । जिस प्रकार धूलि को पानी से सींच-सींच कर दुरमुट से कूट देने पर वह जम जाती है, उसी प्रकार कर्म रज भी विशुद्धि रूपी जल से सींच-सींच कर अनिवृत्तिकरण रूपी दुरमुट के द्वारा कूट दिये जाने पर संक्रमण, उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य हो जाती है । इसी को अनंतानुबंधी का उपशम कहते हैं ।

लेकिन अन्य आचार्यों का मत है कि अनन्तानुबंधी चतुष्क का उपशम न होकर विसंयोजना ही होती है । विसंयोजना क्षपणा का ही दूसरा नाम है,

किन्तु विसंयोजना और क्षपणा में सिर्फ इतना अंतर है कि जिन प्रकृतियों की विसंयोजना होती है, उनकी पुनः सत्ता प्राप्त हो जाती है, किन्तु जिन प्रकृतियों की क्षपणा होती है, उनकी पुनः सत्ता प्राप्त नहीं होती है ।

अनन्तानुबंधी की विसंयोजना अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक तक किसी एक गुणस्थानक में होती है । चौथे गुणस्थानक में चारों गति के जीव अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करते हैं । पाँचवें गुणस्थानक में तिर्यंच और मनुष्य अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करते हैं और छठे व सातवें गुणस्थानक में मनुष्य ही अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करते हैं । इसके लिए भी पहले के समान यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण किये जाते हैं । लेकिन इतनी विशेषता है कि विसंयोजना के लिए अन्तरकरण की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु आवलिका प्रमाण दलिकों को छोड़कर ऊपर के सब दलिकों का अन्य सजातीय प्रकृति रूप से संक्रमण करके और आवलिका प्रमाण दलिकों का वेद्यमान प्रकृतियों में संक्रमण करके उनका विनाश कर दिया जाता है ।

इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की उपशमना और विसंयोजना का विचार किया गया, अब दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों की उपशमना का विचार करते हैं ।

दर्शनमोहनीय की उपशमना

मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व ये दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ हैं । उनमें से मिथ्यात्व का उपशम तो मिथ्यादृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं, किन्तु सम्यक्त्व और मिश्र इन दो प्रकृतियों का उपशम वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही करते हैं । इनमें भी चारों गतियों का मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है तब मिथ्यात्व का उपशम करता है । मिथ्यात्व के उपशम करने की विधि पूर्व में बताई-किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अपूर्वकरण में गुणसंक्रम नहीं होता किन्तु स्थितिघात, रसघात, स्थितिबंध और गुणश्रेणि, ये चार कार्य होते हैं ।

मिथ्यादृष्टि के नियम से मिथ्यात्व का उदय होता है । इसलिए इसके गुणश्रेणि की रचना उदय समय से लेकर होती है । अपूर्वकरण के बाद अनिवृत्तिकरण में भी इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इसके संख्यात भागों के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रह जाता है तब मिथ्यात्व के अन्तर्मुहूर्त

प्रमाण नीचे के निषेकों को छोड़कर, इससे कुछ अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ऊपर के निषेकों का अन्तरकरण किया जाता है । इस क्रिया में नूतन स्थितिबंध के समान अन्तर्मुहूर्त काल लगता है । यहाँ जिन दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है, उनमें से कुछ को प्रथमस्थिति में और कुछ को द्वितीयस्थिति में डाल दिया जाता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का पर-प्रकृति रूप संक्रमण नहीं होता है । इसके प्रथमस्थिति में आवलि प्रमाण काल शेष रहने तक प्रथमस्थिति के दलिकों की उदीरणा होती है किन्तु द्वितीयस्थिति के दलिकों की उदीरणा प्रथमस्थिति में दो आवलि प्रमाणकाल शेष रहने तक ही होती है । यहाँ द्वितीय स्थिति के दलिकों की उदीरणा को आगाल कहते हैं ।

इस प्रकार यह जीव प्रथमस्थिति का वेदन करता हुआ जब प्रथमस्थिति के अन्तिम स्थान स्थित दलिक का वेदन करता है, तब वह अन्तरकरण के ऊपर द्वितीयस्थिति में स्थित मिथ्यात्व के दलिकों को अनुभाग के अनुसार तीन भागों में विभक्त कर देता है । इनमें से विशुद्ध भाग को सम्यक्त्व, अर्धविशुद्ध भाग को मिश्र और सबसे अविशुद्ध भाग को मिथ्यात्व कहते हैं ।

इस तरह प्रथमस्थिति के समाप्त होने पर मिथ्यात्व के दलिक का उदय नहीं होने से औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है । इस सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर अलब्ध पूर्व आत्महित की उपलब्धि होती है—

प्रथम सम्यक्त्व का लाभ मिथ्यात्व के पूर्णरूपेण उपशम से प्राप्त होता है और इसके प्राप्त करने वालों में से कोई देशविरत और कोई सर्वविरत होता है । अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् संयमलाभ के लिए प्रयास किया जाता है ।

किन्तु इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व से जीव उपशमश्रेणि पर न चढ़कर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से चढ़ता है । अतः उसके बारे में बताते हैं कि जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक का उपशम करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं । यहाँ दर्शनमोहनीय के उपशम होने की विधि बतलाते हैं ।

जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव संयम में विद्यमान है, वह दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करता है । इसके यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन

करण पहले के समान जानना चाहिए किन्तु इतनी विशेषता है कि अनिवृत्तिकरण के संख्यात भागों के बीत जाने पर अन्तरकरण करते समय सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थापित की जाती है, क्योंकि यह वेद्यमान प्रकृति है तथा मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति आवलि प्रमाण स्थापित की जाती है क्योंकि वेदक सम्यग्दृष्टि के इन दोनों का उदय नहीं होता है। यहाँ इन तीनों प्रकृतियों के जिन दलिकों का अंतरकरण किया जाता है, उनका निक्षेप सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति में होता है। इसी प्रकार इस जीव के मिथ्यात्व और मिश्र की प्रथम स्थिति के दलिकों का सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति के दलिक में स्तिबुकसंक्रम के द्वारा संक्रमण होता रहता है और सम्यक्त्व की प्रथम स्थिति का प्रत्येक दलिक उदय में आ-आकर निर्जीर्ण होता रहता है। इस प्रकार इसके सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति के क्षीण हो जाने पर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

चारित्र मोहनीय की उपशमना

चारित्र मोहनीय का उपशम करने के लिए पुनः यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण किये जाते हैं। यथाप्रवृत्तकरण सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक में होता है, अपूर्वकरण आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में और अनिवृत्तिकरण नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में होता है। यहाँ भी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में स्थितिघात आदि पहले के समान होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौथे से लेकर सातवें गुणस्थानक तक जो अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते हैं, उनमें उसी प्रकृति का गुणसंक्रम होता है, जिसके सम्बन्ध में वे परिणाम होते हैं। किन्तु अपूर्वकरण में नहीं बँधने वाली सम्पूर्ण अशुभ प्रकृतियों का गुणसंक्रम होता है। अपूर्वकरण के काल में से संख्यातवाँ भाग बीत जाने पर निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है। इसके बाद जब हजारों स्थितिखंडों का घात हो जाता है, तब अपूर्वकरण का संख्यात बहुभाग काल व्यतीत होता है और एक भाग शेष रहता है। इसी बीच नामकर्म की निम्नलिखित 30 प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है–

देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, त्रस,

बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर ।

तदनन्तर स्थितिखंड-पृथक्त्व हो जाने पर अपूर्वकरण का अंतिम समय प्राप्त होता है । इसमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बंध विच्छेद, छह नोकषायों का उदयविच्छेद तथा सब कर्मों की देशोपशमना, निधत्ति और निकाचना करणों की व्युच्छित्ति होती है । इसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में प्रवेश होता है ।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में भी स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान होते हैं । अनिवृत्तिकरण के संख्यात बहुभाग काल के बीत जाने पर चारित्रमोहनीय की 21 प्रकृतियों का अंतरकरण किया जाता है । अन्तरकरण करते समय चार संज्वलन कषायों में से जिस संज्वलन कषाय का और तीन वेदों में से जिस वेद का उदय होता है, उनकी प्रथमस्थिति को अपने-अपने उदयकाल प्रमाण स्थापित किया जाता है अन्य उन्नीस प्रकृतियों की प्रथम स्थिति को एक आवलि प्रमाण स्थापित किया जाता है ।

स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का उदयकाल सबसे थोड़ा है । पुरुषवेद का उदयकाल इससे संख्यातगुणा है । संज्वलन क्रोध का उदयकाल इससे विशेष अधिक है । संज्वलन मान का उदयकाल इससे विशेष अधिक है । संज्वलन माया का उदयकाल इससे विशेष अधिक है और संज्वलन लोभ का उदयकाल इससे विशेष अधिक है ।

जो संज्वलन क्रोध के उदय से उपशमश्रेणि का आरोहण करता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम नहीं होता तब तक संज्वलन क्रोध का उदय रहता है । जो संज्वलन मान के उदय से उपशम श्रेणि पर चढ़ता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण मग्न और प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम नहीं होता, तब तक संज्वलन मान का उदय रहता है ।

जो संज्वलन माया के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण माया का और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम नहीं होता तब तक संज्वलन माया का उदय रहता है तथा जो संज्वलन लोभ के उदय से उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण

लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम नहीं होता तब तक संज्वलन लोभ का उदय रहता है ।

जितने काल के द्वारा स्थितिखंड का घात करता है या अन्य स्थिति का बंध करता है, उतने ही काल के द्वारा अन्तरकरण करता है, क्योंकि इन तीनों का प्रारंभ और समाप्ति एक साथ होती है । तात्पर्य यह है कि जिस समय अंतरकरण क्रिया का आरंभ होता है, उसी समय अन्य स्थितिखंड के घात का और अन्य स्थितिबंध का भी प्रारंभ होता है और अन्तरकरण क्रिया के समाप्त होने के समय ही इनकी समाप्ति भी होती है । इस प्रकार अन्तरकरण के द्वारा जो अन्तर स्थापित किया जाता है, उसका प्रमाण प्रथमस्थिति से संख्यात गुणा है । अन्तरकरण करते समय जिन कर्मों का बंध और उदय होया है उनके अन्तरकरण संबंधी दलिकों को प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थिति में क्षेपण करता है, जैसे कि पुरुषवेद के उदय से श्रेणि पर चढ़ने वाला पुरुषवेद का ।

जिन कर्मों का अन्तरकरण करते समय उदय ही होता है, बंध नहीं होता उनके अन्तरकरण संबंधी दलिकों को प्रथमस्थिति में ही क्षेपण करता है, द्वितीयस्थिति में नहीं, जैसे स्त्रीवेद के उदय से श्रेणि पर चढ़ने वाला स्त्रीवेद का । अन्तरकरण करने के समय जिन कर्मों का उदय न होकर केवल बंध ही होता है, उसके अंतरकरण संबंधी दलिक को द्वितीय स्थिति में ही क्षेपण करता है, प्रथम स्थिति में नहीं, जैसे संज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि पर चढ़ने वाला शेष संज्वलनों का । किन्तु अन्तरकरण करने के समय जिन कर्मों का न तो बंध ही होता है और न उदय ही, उनके अन्तरकरण सम्बन्धी दलिकों का अन्य सजातीय बँधने वाली प्रकृतियों में क्षेपण करता है, जैसे दूसरी और तीसरी कषायों का ।

अब अंतरकरण द्वारा किये जाने वाले कार्य का संकेत करते हैं ।

अंतरकरण करके नपुंसकवेद का उपशम करता है । पहले समय में सबसे थोड़े दलिकों का उपशम करता है, दूसरे समय में असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम करता है । इस प्रकार अंतिम समय प्राप्त होने तक प्रति समय असंख्यातगुणे, असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम करता है तथा जिस समय जितने दलिकों का उपशम करता है, उस समय दूसरे असंख्यातगुणे दलिकों का पर-प्रकृतियों में क्षेपण करता है, किन्तु यह क्रम उपान्त्य समय

तक ही चालू रहता है। अंतिम समय में तो जितने दलिकों का पर-प्रकृतियों में संक्रमण होता है, उससे असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम करता है। इसके बाद एक अन्तर्मुहूर्त में स्त्रीवेद का उपशम करता है। इसके बाद एक अन्तर्मुहूर्त में हास्यादि छह का उपशम करता है। हास्यादिषट्क का उपशम होते ही पुरुषवेद के बंध, उदय और उदीरणा का तथा प्रथमस्थिति का विच्छेद हो जाता है। किन्तु आगाल प्रथम स्थिति में दो आवलिका शेष रहने तक ही होता है तथा इसी समय से छह नोकषायों के दलिकों का पुरुषवेद में क्षेपण न करके संज्वलन क्रोध आदि में क्षेपण करता है।

हास्यादि छह का उपशम हो जाने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल में सकल पुरुषवेद का उपशम करता है। पहले समय में सबसे थोड़े दलिकों का उपशम करता है। दूसरे समय में असंख्यातगुणे दलिकों का, तीसरे समय में इससे असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम करता है। दो समय कम दो आवलिकायों के अंतिम समय तक इसी प्रकार उपशम करता है तथा दो समय कम दो आवलिकाकाल तक प्रति समय यथाप्रवृत्त संक्रम के द्वारा परप्रकृतियों में दलिकों का निक्षेप करता है। पहले समय में बहुत दलिकों का निक्षेप करता है, दूसरे समय में विशेष हीन दलिकों का निक्षेप करता है, तीसरे समय में इससे विशेष हीन दलिकों का निक्षेप करता है। अंतिम समय तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

जिस समय हास्यादि षट्क का उपशम हो जाता है और पुरुषवेद की प्रथम स्थिति क्षीण हो जाती है, उसके अनन्तर समय से अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और संज्वलन क्रोध के उपशम करने का एक साथ प्रारंभ करता है तथा संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय कम तीन आवलिका शेष रह जाने पर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध के दलिकों का संज्वलन क्रोध में निक्षेप न करके संज्वलन मानादिक में निक्षेप करता है तथा दो आवलि काल शेष रहने पर आगाल नहीं होता है किन्तु केवल उदीरणा ही होती है और एक आवलिका काल के शेष रह जाने पर संज्वलन क्रोध के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम हो जाता है उस समय संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिकों

को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल के द्वारा बद्ध दलिकों को छोड़कर शेष दलिक उपशांत हो जाते हैं ।

तदनन्तर प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिकों का स्तिबुकसंक्रम के द्वारा क्रम से संज्वलन मान में निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल में बद्ध दलिकों का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से संक्रमण करता है । इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल में संज्वलन क्रोध का उपशम हो जाता है । जिस समय संज्वलन क्रोध के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन मान की द्वितीयस्थिति से दलिकों को लेकर उनकी प्रथम स्थिति करके वेदन करता है ।

प्रथमस्थिति करते समय प्रथम समय में सबसे थोड़े दलिकों का निक्षेप करता है । दूसरे समय असंख्यातगुणे दलिकों का, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेप करता है । इस प्रकार प्रथमस्थिति के अंतिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेप करता है । प्रथमस्थिति करने के प्रथम समय से लेकर अप्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण मान और संज्वलन मान के उपशम करने का एक साथ प्रारंभ करता है । संज्वलन मान की प्रथमस्थिति में एक समय कम तीन आवलिकाकाल के शेष रहने पर अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान के दलिकों का संज्वलन मान में प्रक्षेप न करके संज्वलन माया आदि में प्रक्षेप करता है । दो आवलिका के शेष रहने पर आगाल नहीं होता किन्तु केवल उदीरणा ही होती है । एक आवलिका काल के शेष रहने पर संज्वलन मान के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हो जाता है । उस समय संज्वलन मान की प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिकों को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल में बद्ध दलिकों को छोड़कर शेष दलिक उपशान्त हो जाते हैं ।

तदनन्तर प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण संज्वलन मान के दलिकों का स्तिबुकसंक्रम के द्वारा क्रम से संज्वलन माया में निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल में बद्ध दलिकों का पुरुषवेद के समान

उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से संक्रमण करता है । इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल में संज्वलन मान का उपशम हो जाता है । जिस समय संज्वलन मान के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन माया की द्वितीय स्थिति से दलिकों को लेकर उनकी प्रथमस्थिति करके वेदन करता है तथा उसी समय से लेकर अप्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण माया और संज्वलन माया के उपशम करने का एक साथ प्रारंभ करता है ।

संज्वलन माया की प्रथमस्थिति में एक समय कम तीन आवलिका काल के शेष रहने पर अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के दलिकों का संज्वलन माया में प्रक्षेप न करके संज्वलन लोभ में प्रक्षेप करता है । दो आवलिकाकाल के शेष रहने पर आगाल नहीं होता किन्तु केवल उदीरणा ही होती है । एक आवलिका काल शेष रहने पर संज्वलन माया के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो जाता है । उस समय संज्वलन माया की प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिकों को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिकाकाल में बद्ध दलिकों को छोड़कर शेष दलिक उपशान्त हो जाते हैं ।

अनन्तर प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिकों का स्तिबुकसंक्रम के द्वारा क्रम से संज्वलन माया में निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल में बद्ध दलिकों का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से सक्रमण करता है । इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल में संज्वलन माया का उपशम हो जाता है । जिस समय संज्वलन माया के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन लोभ की द्वितीय स्थिति से दलिकों को लेकर उनकी लोभ वेदक काल के तीन भागों में से दो भाग प्रमाण प्रथम स्थिति करके वेदन करता है । इनमें से पहले त्रिभाग का नाम अश्वकर्णकरण काल है और दूसरे त्रिभाग का नाम किट्टीकरणकाल है । प्रथम अश्वकर्णकरण काल में पूर्व स्पर्धकों से दलिकों को लेकर अपूर्व स्पर्धक करता है ।

स्पर्धक की व्याख्या

जीव प्रति समय अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कंधों को कर्म रूप से ग्रहण करता है। इनमें से प्रत्येक स्कंध में जो सबसे जघन्य रस वाला परमाणु है, उसके बुद्धि से छेद करने पर सब जीवों से अनंतगुणे अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। अन्य परमाणुओं में एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सिद्धों के अनंतवें भाग अधिक इसके अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होने तक प्रत्येक परमाणु में रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ाते जाना चाहिए।

यहाँ जघन्य रस वाले जितने परमाणु होते हैं, उनके समुदाय को एक वर्गणा कहते हैं। एक अधिक रसवाले परमाणुओं के समुदाय को दूसरी वर्गणा कहते हैं। दो अधिक रस वाले परमाणुओं के समुदाय को तीसरी वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार कुल वर्गणायें सिद्धों के अनंतवें भाग प्रमाण या अभव्यों से अनंतगुणी प्राप्त होती है। इन सब वर्गणाओं के समुदाय को एक स्पर्धक कहते हैं।

दूसरे आदि स्पर्धक भी इसी प्रकार प्राप्त होते हैं किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम आदि स्पर्धकों की अंतिम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं, दूसरे आदि स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग में सब जीवों से अनन्तगुणे रस के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं और फिर अपने-अपने स्पर्धक की अंतिम वर्गणा तक रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता जाता है। ये सब स्पर्धक संसारी जीवों के प्रारंभ से ही यथायोग्य होते हैं। इसलिए इन्हें पूर्व स्पर्धक कहते हैं। किन्तु यहाँ पर उनमें से दलिकों को ले-लेकर उनके रस को अत्यन्त हीन कर दिया जाता है, इसलिए उनको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि संसार अवस्था में इस जीव ने बंध की अपेक्षा कभी भी ऐसे स्पर्धक नहीं किये थे, किन्तु विशुद्धि के प्रकर्ष से इस समय करता है, इसलिए इनको अपूर्व स्पर्धक कहा जाता है।

यह क्रिया पहले त्रिभाग में की जाती है। दूसरे त्रिभाग में पूर्व स्पर्धकों और अपूर्व स्पर्धकों में से दलिकों को ले-लेकर प्रतिसमय अनन्त किट्टियाँ करता अर्थात् पूर्व स्पर्धकों और अपूर्व स्पर्धकों से वर्गणाओं को ग्रहण करके और उनके रस को अनन्तगुणा हीन करके रस के अविभाग प्रतिच्छेदों में

अंतराल कर देता है। जैसे, मानलो रस के अविभाग प्रतिच्छेद, सौ, एक सौ एक और एक सौ दो थे, उन्हें घटा कर क्रम से पाँच, पंद्रह और पच्चीस कर दिया, इसी का नाम किट्टीकरण है।

किट्टीकरण काल के अंतिम समय में अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम करता है तथा उसी समय संज्वलन लोभ का बंधविच्छेद होता है और बादर संज्वलन के उदय तथा उदीरणा के विच्छेद के साथ नौवें गुणस्थानक का अंत हो जाता है। यहाँ तक मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ उपशांत हो जाती हैं। अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण लोभ के उपशान्त हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती हैं। इसके बाद सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक होता है। इसका काल अन्तमुहूर्त है। इसके पहले समय में उपरितन स्थिति में से कुछ किट्टियों को लेकर सूक्ष्मसंपराय काल के बराबर उनकी प्रथमस्थिति करके वेदन करता है और एक समय कम दो आवलिका में बँधे हुए सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त शेष दलिकों का उपशम करता है।

अनिवृत्तिबादर तक उपशान्त प्रकृतियों की संख्या

सत्तऽट्ठ नव य पनरस, सोलस अट्ठारसेव गुणवीसा।
एगाहि दु चउवीसा, पणवीसा बायरे जाण ॥76॥

–: शब्दार्थ :–

सत्तट्ठ=सात, आठ,	**एगाहि दु चउवीसा**=21, 22, 24,
नव य पनरस=नौ पन्द्रह,	**पणवीसा**=पच्चीस,
सोलस=सोलह,	**बायरे**=अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में,
अट्ठारसेव=अठारह,	**जाण**=जानो।
गुणवीसा=उन्नीस,	

गाथार्थ :–अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में 7, 8, 9, 15, 18, 19, 21, 22, 24, 25 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं।

विवेचन :–उपशम श्रेणी में अनिवृत्तिबादर गुणस्थानक में मोहनीय कर्म की 7 से लेकर 25 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं।

अन्तर क्रम करने पर 7 प्रकृति उपशान्त होती हैं उसके बाद नपुंसक

वेद का उपशमन करने पर 8 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं । फिर स्त्रीवेद का उपशमन करने पर 9 प्रकृति का उपशमन होता है । हास्यादिषट्क का उपशमन करने पर 15 प्रकृति उपशान्त होती हैं फिर पुरुषवेद का उपशमन होने पर 16 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं । अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोध को एक साथ में उपशमन करने पर 18 प्रकृतियाँ उपशमन होती हैं । फिर संज्वलन क्रोध को उपशान्त करने पर 19 प्रकृतियों का उपशमन होता है ।

फिर अप्रत्याख्यान एवं प्रत्याख्यान मान का एक साथ उपशमन होने पर 21 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं ।

फिर संज्वलन मान का उपशमन होने पर 22 प्रकृतियाँ उपशान्त होती है । फिर अप्रत्याख्यान एवं प्रत्याख्यान माया का उपशमन होने पर 24 प्रकृतियाँ उपशांत होती हैं फिर संज्वलन माया का उपशमन होने पर 25 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं ।

सत्तावीसं सुहुमे, अट्ठावीसं च मोहपयडीओ ।
उवसंतवीअराए, उवसंता हुंति नायव्वा ।।77।।

–: शब्दार्थ :–

सत्तावीसं=सत्तावीस,	**उवसंतवीअराए**=शांत कषाय, वीतराग, ग्यारहवें गुणस्थानक में
सुहुमे=सूक्ष्म संपराय में,	**उवसंता**=उपशांत,
अट्ठावीसं=अट्ठावीस,	**हुंति**=होती है,
मोहपयडीओ=मोहनीय कर्म की प्रकृति,	**नायव्वा**=जानना चाहिए ।

गाथार्थ :–सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में मोहनीय कर्म की सत्तावीस प्रकृतियाँ एवं उपशांत मोह गुणस्थानक में 28 प्रकृतियाँ उपशान्त होती हैं ।

विवेचन :–सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है । सूक्ष्मसंपराय के अन्तिम समय में संज्वलन लोभ का भी उपशमन होता है । संज्वलन लोभ के उपशमन के समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4, अंतराय की 5, यशःकीर्ति की 1 और उच्चगोत्र की 1, इन 16 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद करता है । उसके बाद दूसरे समय में उपशान्त विराग होकर मोहनीय की 28 प्रकृतियों को उपशान्त करता है । उपशान्त मोह

गुणस्थानक जघन्य से एक समय उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त होता है । तदनन्तर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक के अन्तिम समय में संज्वलन लोभ का उपशम हो जाता है । इस प्रकार मोहनीय की अट्ठाईस प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती हैं और उसी समय ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पाँच, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है । इसके बाद दूसरे समय में ग्यारहवाँ गुणस्थानक उपशान्त कषाय होता है । इसमें मोहनीय की सब प्रकृतियाँ उपशांत रहती हैं । उपशांत कषाय गुणस्थानक का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

उपशमश्रेणि के आरोहक के ग्यारहवें उपशांतमोह गुणस्थानक में पहुँचने पर, इसके बाद नियम से उसका पतन होता है । पतन दो प्रकार से होता है-भवक्षय से और अद्धाक्षय से । आयु के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह भवक्षय से होने वाला पतन है । भव अर्थात् पर्याय और क्षय अर्थात् विनाश तथा उपशांतकषाय गुणस्थानक के काल के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह अद्धाक्षय से होने वाला पतन है । जिसका भवक्षय से पतन होता है, उसके अनन्तर समय में अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक होता है और उसके पहले समय में ही बन्ध आदि सब करणों का प्रारम्भ हो जाता है । किन्तु जिसका अद्धाक्षय से पतन होता है अर्थात् उपशांतमोह गुणस्थानक का काल समाप्त होने के अनन्तर जो पतन होता है, वह जिस क्रम से चढ़ता है, उसी क्रम से गिरता है । इसके जहाँ जिस करण की व्युच्छित्ति हुई, वहाँ पहुँचने पर उस करण का प्रारम्भ होता है और यह जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में जाकर रुक जाता है । कोई-कोई देशविरत और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक को भी प्राप्त होता है तथा कोई सास्वादन भाव को भी प्राप्त होता है ।

साधारणतः एक भव में एक बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है । कदाचित् कोई जीव दो बार भी उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, इससे अधिक बार नहीं । जो दो बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके उस भव में क्षपकश्रेणि नहीं होती है लेकिन जो एक बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके क्षपकश्रेणि होती भी है ।

क्षपक-श्रेणी

पढमकसायचउक्कं, इत्तो मिच्छत्त-मीस-सम्मत्तं ।
अविरय सम्मे देसे, पमत्ति अपमत्ति खीअंति ।।78।।

–: शब्दार्थ :–

पढमकसायचउक्कं=प्रथम कषाय चतुष्क (अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क),	**अविरय सम्मे** =अविरत सम्यग्दृष्टि,
इतो=तदनन्तर, इसके बाद,	**देसे**=देशविरत,
मिच्छत्तमीससम्मत्तं=मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का,	**पमत्ति अपमत्ति**=प्रमत्त और अप्रमत्त,
	खीअंति=क्षय होता है ।

गाथार्थः–अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत, इन चार गुणस्थानकों में से किसी एक गुणस्थानक में अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का और तदनन्तर मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का क्रम से क्षय होता है ।

विवेचन :–उपशमश्रेणि में मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम किया जाता है और क्षपकश्रेणि में उनका क्षय अर्थात् उपशमश्रेणि में प्रकृतियों की सत्ता तो बनी रहती है किन्तु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिकों का अन्तरकरण हो जाता है और द्वितीयस्थिति में स्थित दलिक संक्रमण आदि के अयोग्य हो जाते हैं, जिससे अन्तर्मुहूर्त काल तक उनका फल प्राप्त नहीं होता है । किन्तु क्षपकश्रेणि में उनका समूल नाश हो जाता है ।

क्षपकश्रेणी का आरंभक

क्षपकश्रेणी का आरम्भ आठ वर्ष से अधिक आयुष्य वाले, प्रथम संहनन के धारक, चौथे, पाँचवें, छठे या सातवें गुणस्थानकवर्ती जिनकालिक मनुष्य को ही होता है, अन्य के नहीं । सबसे पहले वह अनंतानुबंधी चतुष्क का विसंयोजन करता है । तदनन्तर मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व की एक साथ क्षपणा का प्रारम्भ करता है । इसके लिए यथाप्रवृत्त आदि तीन करण होते

हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरण के पहले समय में अनुदयरूप मिथ्यात्व और मिश्र के दलिकों का गुणसंक्रम के द्वारा सम्यक्त्व में निक्षेप किया जाता है तथा अपूर्वकरण में इन दोनों का उद्वेलना संक्रम भी होता है । इसमें सर्वप्रथम सबसे बड़े स्थितिखण्ड की उद्वेलना की जाती है । तदनन्तर एक-एक विशेष कम स्थितिखण्डों की उद्वेलना की जाती है । यह क्रम अपूर्वकरण के अन्तिम समय तक चालू रहता है । इससे अपूर्वकरण के पहले समय में जितनी स्थिति होती है, उससे अन्तिम समय में संख्यातगुणहीन यानी संख्यातवाँ भाग स्थिति रह जाती है ।

इसके बाद अनिवृत्तिकरण में प्रवेश किया जाता है । यहाँ भी स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते हैं । अनिवृत्तिकरण के पहले समय में दर्शनत्रिक की देशोपशमना, निधत्ति और निकाचना का विच्छेद हो जाता है । अनिवृत्तिकरण के पहले समय से लेकर हजारों स्थितिखण्डों का घात हो जाने पर दर्शनत्रिक की स्थितिसत्ता असंज्ञी के योग्य शेष रह जाती है । इसके बाद हजार पृथक्त्व प्रमाण स्थितिखण्डों का घात हो जाने पर चतुरिन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है । इसके बाद उक्त प्रमाण स्थितिखण्डों का घात हो जाने पर त्रीन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है । इसके बाद पुनः उक्त प्रमाण स्थितिखण्डों का घात हो जाने पर द्वीन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है । इसके बाद पुनः उक्त प्रमाण स्थितिखण्डों का घात हो जाने पर एकेन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है ।

तदनन्तर तीनों प्रकृतियों की स्थिति के एक भाग को छोड़कर शेष बहुभाग का घात करता है तथा उसके बाद पुनः एक भाग को छोड़कर शेष बहुभाग का घात करता है । इस प्रकार इस क्रम से भी हजारों स्थितिखण्डों का घात करता है । तदनन्तर मिथ्यात्व की स्थिति के असंख्यात भागों का तथा मिश्र और सम्यक्त्व के संख्यात भागों का घात करता है ।

इस प्रकार प्रभूत स्थितिखण्डों के व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्व के दलिक आवलिप्रमाण शेष रहते हैं तथा मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व के दलिक पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण शेष रहते हैं । उपर्युक्त इन स्थितिखंडों का घात करते समय मिथ्यात्व सम्बन्धी दलिकों का मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व में, मिश्र मोहनीय सम्बन्धी दलिकों का सम्यक्त्व में और सम्यक्त्व सम्बन्धी

दलिकों का अपने से कम स्थिति वाले दलिकों में निक्षेप किया जाता है। इस प्रकार जब मिथ्यात्व के एक आवलि प्रमाण दलिक शेष रहते हैं तब उनका भी स्तिबुकसंक्रम के द्वारा सम्यक्त्व में निक्षेप किया जाता है। तदनन्तर मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व के असंख्यात भागों का घात करता है और एक भाग शेष रहता है। तदनन्तर जो एक भाग बचता है, उसके असंख्यात भागों का घात करता है और एक भाग शेष रहता है। इस प्रकार इस क्रम से कितने ही स्थितिखण्डों के व्यतीत हो जाने पर मिश्र मोहनीय की भी एक आवलि प्रमाण और सम्यक्त्व की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहती है।

इसी समय यह जीव निश्चयनय की दृष्टि से दर्शन-मोहनीय का क्षपक माना जाता है। इसके बाद सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति खंड की उत्कीरणा करता है। उत्कीरणा करते समय दलिक का उदय समय से लेकर निक्षेप करता है। उदय समय में सबसे थोड़े दलिकों का निक्षेप करता है। दूसरे समय में असंख्यात गुणे दलिकों का, तीसरे समय में असंख्यातगुणे दलिकों का निक्षेप करता है। इस प्रकार यह क्रम गुणश्रेणि के अन्त तक चालू रहता है। इसके आगे अन्तिम स्थिति प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर कम-कम दलिकों का निक्षेप करता है।

यह क्रम द्विचरम स्थितिखण्ड के प्राप्त होने तक चालू रहता है। किन्तु द्विचरम स्थितिखण्ड से अन्तिम स्थितिखण्ड संख्यातगुणा बड़ा होता है। जब यह जीव सम्यक्त्व के अन्तिम स्थितिखण्ड की उत्कीरणा कर चुकता है तब उसे कृतकरण कहते हैं। इस कृतकरण के काल में यदि कोई जीव मरता है तो वह चारों गतियों में से परभव सम्बन्धी आयु के अनुसार किसी भी गति में उत्पन्न होता है। इस समय यह शुक्ल लेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है। किन्तु उसकी समाप्ति चारों गतियों में होती है।

यदि बद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि का प्रारम्भ करता है तो अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय हो जाने के पश्चात् उसका मरण सम्भव है। उस स्थिति में मिथ्यात्व का उदय हो जाने से यह जीव पुनः अनन्तानुबंधी का बंध और संक्रम द्वारा संचय करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय में अनन्तानुबंधी की नियम से सत्ता पाई जाती है। किन्तु जिसने मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है,

वह पुनः अनन्तानुबंधी चतुष्क का संचय नहीं करता है। सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर जिसके परिणाम नहीं बदले वह मरकर नियम से देव गति में उत्पन्न होता है, किन्तु जिसके परिणाम बदल जाते हैं वह परिणामानुसार अन्य गतियों में भी उत्पन्न होता है।

बद्धायु होने पर भी यदि कोई जीव उस समय मरण नहीं करता तो सात प्रकृतियों का क्षय होने पर वह वहीं ठहर जाता है, चारित्र मोहनीय के क्षय का यत्न नहीं करता है–

लेकिन जो बद्धायु जीव सात प्रकृतियों का क्षय करके देव या नारक होता है, वह नियम से तीसरी पर्याय में मोक्ष को प्राप्त करता है और जो मनुष्य या तिर्यंच होता है, वह असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों और तिर्यंचों में ही उत्पन्न होता है, इसीलिए वह नियम से चौथे भव में मोक्ष को प्राप्त होता है।

यदि अबद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि प्रारम्भ करता है तो वह सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय करने का यत्न करता है। क्योंकि चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाला मनुष्य अबद्धायु ही होता है, इसलिए उसके नरकायु, देवायु और तिर्यंचायु की सत्ता तो स्वभावतः ही नहीं पाई जाती है तथा अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक का क्षय पूर्वोक्त क्रम से हो जाता है, अतः चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाले जीव के उक्त दस प्रकृतियों की सत्ता नियम से नहीं होती है।

अनियट्टिबायरे थीण गिद्धितिग-निरयतिरिअनामाओ।
संखिज्जइमे सेसे तप्पाउग्गाउ खीअंति ॥79॥

–: शब्दार्थ :–

अनियट्टिबायरे=अनिवृत्ति बादर,	**संखिज्जइमे**=संख्यात भाग
थीणगिद्धितिग=स्त्यानगृद्धि त्रिक,	**सेसे**=शेष,
निरयतिरिअनामाओ=नरक गति, तिर्यंच गति नामकर्म की तेरह प्रकृतियाँ,	**तप्पाउग्गाउ**=तत्प्रायोग्य,
	खीअंति=क्षय होती है।

गाथार्थ :–अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक का संख्यात भाग बाकी रहने

पर स्त्यानगृद्धित्रिक नरक गति, तिर्यंच गति नामकर्म की तत्प्रायोग्य 13 प्रकृतियों का क्षय होता है ।

विवेचन :–जो जीव चारित्र मोहनीय की क्षपणा करता है, उसके भी यथाप्रवृत्त आदि तीन करण होते हैं । यहाँ यथाप्रवृत्तकरण सातवें गुणस्थानक में होती है । और आठवें गुणस्थानक की अपूर्वकरण और नौवें गुणस्थानक की अनिवृत्तिकरण संज्ञा है ही । इन तीन करणों का स्वरूप पहले बतलाया जा चुका है, तदनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिए । यहाँ अपूर्वकरण में यह जीव स्थितिघात आदि के द्वारा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय की आठ प्रकृतियों का इस प्रकार क्षय करता है, जिससे नौवें गुणस्थानक के पहले समय में इनकी स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग शेष रहती है तथा अनिवृत्तिकरण के संख्यात बहुभागों के बीत जाने पर स्त्यानर्द्धित्रिक, नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि जातिचतुष्क, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन सोलह प्रकृतियों की स्थिति की संक्रम के द्वारा उद्वेलना होने पर वह पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र शेष रह जाती है । तदनन्तर गुणसंक्रम के द्वारा उनका प्रतिसमय बध्यमान प्रकृतियों में प्रक्षेप करके उन्हें पूरी तरह से क्षीण कर दिया जाता है । यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय की आठ प्रकृतियों के क्षय का प्रारम्भ पहले ही कर दिया जाता है तो भी इनका क्षय होने के पहले मध्य में ही उक्त स्त्यानर्द्धित्रिक आदि सोलह प्रकृतियों का क्षय हो जाता है और इनका क्षय हो जाने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में उक्त आठ प्रकृतियों का क्षय होता है ।

किन्तु इस विषय में किन्हीं आचार्यों का ऐसा भी मत है कि यद्यपि सोलह कषायों के क्षय का प्रारम्भ पहले कर दिया जाता है तो भी आठ कषायों के क्षय हो जाने पर ही उक्त स्त्यानर्द्धित्रिक आदि सोलह प्रकृतियों का क्षय होता है । इसके पश्चात् नौ नोकषायों और चार संज्वलन, इन तेरह प्रकृतियों का अन्तरकरण करता है ।

अन्तरकरण करने के बाद नपुंसकवेद के उपरितन स्थितिगत दलिकों का उद्वेलना विधि से क्षय करता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में उसकी पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति शेष रह जाती है । तत्पश्चात् इसके (नपुंसकवेद के) दलिकों का गुणसंक्रम के द्वारा बँधने वाली अन्य

प्रकृतियों में निक्षेप करता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में उसका समूल नाश हो जाता है । यहाँ विशेष जानना चाहिए कि जो जीव नपुंसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है वह उसके अधस्तन दलिकों का वेदन करते हुए क्षय करता है । इस प्रकार नपुंसक वेद का क्षय हो जाने पर अन्तर्मुहूर्त में इसी क्रम से स्त्रीवेद का क्षय किया जाता है । तदनन्तर छह नोकषायों के क्षय का एक साथ प्रारम्भ किया जाता है । छह नोकषायों के क्षय का आरम्भ कर लेने के पश्चात् इनका संक्रमण पुरुषवेद में न होकर संज्वलन क्रोध में होता है और इस प्रकार इनका क्षय कर दिया जाता है । सूत्र में भी कहा है–

इत्तो हणइ कसाय-ट्ठगंपि पच्छा नपुंसगं इत्थिं ।
तो नोकसायछक्कं, छुहइ संजलणकोहंमि ।।80।।

–: शब्दार्थ :–

इत्तो=इसके बाद,	**इत्थिं**=स्त्रीवेद को,
हणइ=नष्ट करता है,	**तो**=उसके बाद,
कसायट्ठगंपि=कषाय अष्टक को,	**नोकसायछक्कं**=छह नोकषाय,
पच्छा=पश्चात्,	**छुहइ**=संक्रमित करता है,
नपुंसगं=नपुंसक वेद को,	**संजलणकोहंमि**=संज्वलन क्रोध में ।

गाथार्थ :–इसके बाद आठ कषायों का क्षय करता है । फिर नपुंसगं वेद तथा स्त्रीवेद का क्षय करता है उसके बाद छह नोकषाय का संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है ।

विवेचन :–जिस समय छह नोकषायों का क्षय होता है, उसी समय पुरुषवेद के बंध, उदय और उदीरणा की व्युच्छित्ति होती है तथा एक समय कम दो आवलि प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर पुरुषवेद के शेष दलिकों का क्षय हो जाता है । यहाँ पुरुषवेद के उदय और उदीरणा का विच्छेद हो चुका है, इसलिए यह अपगतवेदी हो जाता है ।

उक्त कथन पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि का आरोहण करने वाले जीव की अपेक्षा जानना चाहिए । किन्तु जो जीव नपुंसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है, वह स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का एक साथ क्षय करता है तथा इसके जिस समय स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का क्षय होता है, उसी

समय पुरुषवेद का बंधविच्छेद होता है और इसके बाद वह अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायों का एक साथ क्षय करता है । यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है तो वह नपुंसकवेद का क्षय हो जाने के पश्चात् स्त्रीवेद का क्षय करता है, किन्तु इसके भी स्त्रीवेद के क्षय होने के समय ही पुरुषवेद का बंधविच्छेद होता है और इसके बाद अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायों का एक साथ क्षय करता है ।

पुरुषवेद के आधार से क्षपकश्रेणी का वर्णन

जो जीव पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर क्रोध कषाय का वेदन कर रहा है तो उसके पुरुषवेद का उदयविच्छेद होने के बाद क्रोध कषाय का काल तीन भागों में बँट जाता है—अश्वकर्णकरणकाल, किट्टीकरणकाल और किट्टीवेदन काल । इनमें से जब यह जीव अश्वकर्णकरण के काल में विद्यमान रहता है तब चारों संज्वलनों की अन्तरकरण से ऊपर की स्थिति में प्रतिसमय अनन्त अपूर्व स्पर्धक करता है तथा एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल में बद्ध पुरुषवेद के दलिकों को इतने ही काल में संज्वलन क्रोध में संक्रमण कर नष्ट करता है । यहाँ पहले गुणसंक्रम होता है और अंतिम समय में सर्वसंक्रम होता है । अश्वकर्णकरण काल के समाप्त हो जाने पर किट्टीकरणकाल में प्रवेश करता है । यद्यपि किट्टियाँ अनन्त हैं पर स्थूल रूप से वे बारह हैं, जो प्रत्येक कषाय में तीन-तीन प्राप्त होती हैं । किन्तु जो जीव मान के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है वह उद्वेलना विधि से क्रोध का क्षय करके शेष तीन कषायों की नौ किट्टी करता है । यदि माया के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है तो क्रोध और मान का उद्वेलना विधि से क्षय करके शेष दो कषायों की छह किट्टियाँ करता है और यदि लोभ के उदय से क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है तो उद्वेलना विधि से क्रोध, मान और माया इन तीन का क्षय करके लोभ की तीन किट्टियाँ करता है ।

इस प्रकार किट्टीकरण के काल के समाप्त हो जाने पर क्रोध के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ा हुआ जीव क्रोध की प्रथम किट्टी की द्वितीयस्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । अनन्तर दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति

करता है, और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । उसके बाद तीसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है तथा इन तीनों किट्टियों के वेदन काल के समय उपरितन स्थितिगत दलिक का गुणसंक्रम के द्वारा प्रतिसमय संज्वलन मान में निक्षेप करता है और जब तीसरी किट्टी के वेदन का अंतिम समय प्राप्त होता है तब संज्वलन क्रोध के बंध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है ।

इस समय इसके एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा बँधे हुए दलिकों को छोड़कर शेष का अभाव हो जाता है । तत्पश्चात् मान की प्रथम किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान की प्रथम किट्टी के वेदनकाल के भीतर ही एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा संज्वलन क्रोध के बंधकाल प्रमाण क्रमण भी करता है । यहाँ दो समय कम दो आवलिकाकाल तक गुणसंक्रम होता है और अंतिम समय में सर्व संक्रम होता है ।

इस प्रकार मान की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका शेष रहने तक वेदन करता है और तत्पश्चात् मान की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक तक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । तत्पश्चात् तीसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । इसी समय मान के बंध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता में केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बँधे हुए दलिक शेष रहते हैं और बाकी सबका अभाव हो जाता है ।

तत्पश्चात् माया की प्रथम किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान के बंध आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल मे गुणसंक्रम के द्वारा माया में

करता है । माया की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका काल शेष रहने तक वेदन करता है । तत्पश्चात् माया की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाण काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । उसके बाद माया की तीसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और उसका एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक वेदन करता है । इसी समय माया के बंध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता में केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बँधे हुए दलिक शेष रहते हैं, शेष का अभाव हो जाता है ।

तत्पश्चात् लोभ की प्रथम किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा माया के बंध आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके नवीन बँधे हुए दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल में गुणसंक्रम के द्वारा लोभ में निक्षेप करता है तथा माया की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक आवलिकाकाल के शेष रहने तक ही वेदन करता है ।

अनन्तर लोभ की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है । जब यह जीव दूसरी किट्टी का वेदन करता है तब तीसरी किट्टी के दलिक की सूक्ष्म किट्टी करता है । यह क्रिया भी दूसरी किट्टी के वेदनकाल के समान एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक चालू रहती है । जिस समय सूक्ष्म किट्टी करने का कार्य समाप्त होता है, उसी समय संज्वलन लोभ का बंधविच्छेद, बादरकषाय के उदय और उदीरणा का विच्छेद तथा अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थानक के काल का विच्छेद होता है ।

तदनन्तर सूक्ष्म किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथम स्थिति करता है और उसका वेदन करता है । इसी समय से यह जीव सूक्ष्मसंपराय कहलाता है ।

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक के काल में एक भाग के शेष रहने तक यह

जीव एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बँधे हुए सूक्ष्म किट्टीगत दलिक का स्थितिघात आदि के द्वारा प्रत्येक समय में क्षय भी करता है । तदनन्तर जो एक भाग शेष रहता है, उसमें सर्वापवर्तना के द्वारा संज्वलन लोभ का अपवर्तन करके सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक काल के बराबर करता है । सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक का काल अन्तर्मुहूर्त ही है । यहाँ से आगे संज्वलन लोभ के स्थितिघात आदि कार्य होना बंध हो जाते हैं किन्तु शेष कर्मों के स्थिति घात आदि कार्य बराबर होते रहते हैं । सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तित की गई इस स्थिति का उदय और उदीरणा के द्वारा एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक वेदन करता है । तत्पश्चात् उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक के अन्तिम समय तक सूक्ष्मलोभ का केवल उदय ही रहता है ।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक के अन्तिम समय में ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पाँच, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र, इन सोलह प्रकृतियों का बंधविच्छेद तथा मोहनीय का उदय और सत्ता विच्छेद हो जाता है ।

पुरिसं कोहे कोहं, माणे माणं च छुहइ मायाए ।
मायं च छुहइ लोहे, लोहं सुहुमंपि तो हणइ ।।81।।

–: शब्दार्थ :–

पुरिसं=पुरुषवेद को,
कोहे=संज्वलन क्रोध में,
कोहं=क्रोध को,
माणे=संज्वलन मान में,
माणं=मान को,
च=और,
छुहइ=संक्रमित करता है,
मायाए=संज्वलन माया में,
मायं=माया को,
च=और,
छुहइ=संक्रमित करता है,
लोहे=संज्वलन लोभ में,
लोहं=लोभ को,
सुहुमं=सूक्ष्म,
पि=भी,
तो=उसके बाद,
हणइ=क्षय करता है ।

गाथार्थ :–पुरुषवेद को संज्वलन क्रोध में, क्रोध को संज्वलन मान

में, मान को संज्वलन माया में, माया को संज्वलन लोभ में संक्रमित करता है, उसके बाद सूक्ष्म लोभ का भी स्वोदय से क्षय करता है ।

विवेचन :–गाथा में संज्वलन क्रोध आदि चतुष्क के क्षय का क्रम बतलाया है ।

इसके लिए सर्वप्रथम बतलाते हैं कि पुरुषवेद के बंध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका गुणसंक्रमण के द्वारा संज्वलन क्रोध में संक्रमण करता है । संज्वलन क्रोध के बंध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका संज्वलन मान में संक्रमण करता है । संज्वलन मान के बंध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका संज्वलन माया में संक्रमण करता है । संज्वलन माया के भी बंध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका संज्वलन लोभ में संक्रमण करता है तथा संज्वलन लोभ के बंध आदि का विच्छेद हो जाने पर सूक्ष्म किट्टीगत लोभ का विनाश करता है ।

इस प्रकार से संज्वलन क्रोध आदि कषायों की स्थिति हो जाने के बाद आगे की स्थिति बतलाते हैं कि लोभ का पूरी तरह से क्षय हो जाने पर उसके बाद के समय में क्षीणकषाय होता है क्षीणकषाय के काल के बहुभाग व्यतीत होने तक शेष कर्मों के स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते हैं किन्तु जब एक भाग शेष रह जाता है तब ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पाँच और निद्राद्विक, इन सोलह प्रकृतियों की स्थिति का घात सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तन करके उसे क्षीणकषाय के शेष रहे हुए काल के बराबर करता है । केवल निद्राद्विक की स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम रहती है । सामान्य कर्म की अपेक्षा तो इनकी स्थिति शेष कर्मों के समान ही रहती है । क्षीणकषाय के सम्पूर्ण काल की अपेक्षा कहा है यद्यपि उसका एक भाग है तो भी उसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है । इनकी स्थिति क्षीणकषाय के काल के बराबर होते ही इनमें स्थितिघात आदि कार्य नहीं होते किन्तु शेष कर्मों के होते हैं । निद्राद्विक के बिना शेष चौदह प्रकृतियों का एक समय अधिक एक आवलि काल के शेष रहने तक उदय और उदीरणा दोनों होते हैं । अनन्तर एक आवलि काल तक केवल उदय ही होता है । क्षीणकषाय के उपान्त्य समय में निद्राद्विक का स्वरूपसत्ता की अपेक्षा क्षय करता है और अन्तिम समय में शेष चौदह प्रकृतियों का क्षय करता है–

खीणकसायदुचरिमे, निद्दं पयलं च हणइ छउमत्थो ।
आवरणमंतराए, छउमत्थो चरमसमयम्मि ।।82।।

–: शब्दार्थ :–

खीणकसायदुचरिमे=क्षीण मोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में,	**आवरणं**=पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण,
निद्दंपयलंच=निद्रा और प्रचला को,	**अंतराए**=पाँच अन्तराय,
हणइ=नष्ट करता है,	**चरम समयंमि**=अन्मित समय में ।
छउमत्थो=छद्मस्थ,	

गाथार्थ :–क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला का क्षय करता है तथा अंतिम समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4, और अंतराय की 5 प्रकृतियों का क्षय करता है ।

विवेचन :–इसके अनन्तर समय में यह जीव सयोगिकेवली होता है । जिसे जिन, केवलज्ञानी भी कहते हैं । सयोगिकेवली हो जाने पर वह लोकालोक का पूरी तरह ज्ञाता-द्रष्टा होता है । संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, न हुआ और न होगा जिसे वे नहीं जानते हैं । अर्थात् वे सबको जानते और देखते हैं ।

इस प्रकार सयोगिकेवली जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार करते हैं । सयोगिकेवली अवस्था प्राप्त होने तक चार घातीकर्म-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय निःशेष रूप से क्षय हो जाते हैं, किन्तु शेष वेदनीय, आयुष्य नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म शेष रह जाते हैं । अतः यदि आयुकर्म को छोड़कर शेष वेदनीय, नाम, गोत्र, इन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म की स्थिति से अधिक होती है तो उनकी स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए अन्त में समुद्घात करते हैं और यदि उक्त शेष तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म के बराबर होती है तो समुद्घात नहीं करते हैं ।

वेदनीय आदि तीन अघाति कर्मों की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए जिन (केवलज्ञानी) जो समुद्घात करते हैं, उसे केवलिसमुद्घात कहते हैं ।

केवलिसमुद्घात का काल आठ समय है । पहले समय में स्वशरीर का जितना आकार है तत्प्रमाण आत्म-प्रदेशों को ऊपर और नीचे लोक के

अन्तपर्यन्त रचते हैं, उसे दण्डसमुद्घात कहते हैं। दूसरे समय में पूर्व और पश्चिम या दक्षिण और उत्तर दिशा में कपाटरूप से आत्म-प्रदेशों को फैलाते हैं। तीसरे समय में मंथानसमुद्घात करते हैं अर्थात् मथानी के आकार में आठों दिशाओं में आत्म-प्रदेशों का फैलाव होता है।

चौथे समय में लोक में जो आकाश शेष रहता है उसे भर देते हैं। इसे लोकपूरण अवस्था कहते हैं। इस प्रकार से लोक-पूरित स्थिति बन जाने के पश्चात् पाँचवें समय में संकोच करते हैं और आत्म-प्रदेशों को मंथान के रूप में परिणत कर लेते हैं। छठे समय में मंथान रूप अवस्था का संकोच करते हैं। सातवें समय में पुनः कपाट अवस्था को संकोचते हैं और आठवें समय में स्वशरीरस्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार यह केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया है।

योग-निरोध की प्रक्रिया

जो केवली समुद्घात को प्राप्त होते हैं वे समुद्घात के पश्चात् और जो समुद्घात को प्राप्त नहीं होते हैं वे योग-निरोध के योग्य काल के शेष रहने पर योग-निरोध का प्रारम्भ करते हैं।

इसमें सबसे पहले बादर काययोग के द्वारा बादर मनोयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् बादर वचनयोग को रोकते हैं। इसके बाद सूक्ष्म काययोग के द्वारा बादर काययोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म मनोयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म वचनयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म काययोग को रोकते हुए सूक्ष्मक्रियाप्रतिपात ध्यान को प्राप्त होते हैं। इस ध्यान के सामर्थ्य से आत्मप्रदेश संकुचित होकर निश्छिद्र हो जाते हैं। इस ध्यान में स्थितिघात आदि के द्वारा सयोगि अवस्था के अन्तिम समय तक आयुकर्म के सिवाय भव का उपकार करने वाले शेष सब कर्मों का अपवर्तन करते हैं, जिससे सयोगिकेवली के अन्तिम समय में सब कर्मों की स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थानक के काल के बराबर हो जाती है। यहाँ इतनी विशेषता है कि जिन कर्मों का अयोगिकेवली को उदय नहीं होता उनकी स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम हो जाती है किन्तु कर्म सामान्य की अपेक्षा उनकी भी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थानक के काल के बराबर रहती है।

सयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय में निम्नलिखित तीस प्रकृतियों का विच्छेद होता है–

साता या असाता में से कोई एक वेदनीय, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, पहला संहनन, औदारिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, शभ-अशुभ विहायोगति, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर और निर्माण ।

सयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय में उक्त तीस प्रकृतियों के उदय और उदीरणा का विच्छेद करके उसके अनन्तर समय में वे अयोगिकेवली हो जाते हैं । अयोगिकेवली गुणस्थानक का काल अन्तर्मुहूर्त है । इस अवस्था में भव का उपकार करनेवाले कर्मों का क्षय करने के लिए व्युपरतक्रियाप्रतिपाति ध्यान करते हैं । वहाँ स्थितिघात आदि कार्य नहीं होते हैं । किन्तु जिन कर्मों का उदय होता है, उनको तो अपनी स्थिति पूरी होने से अनुभव करके नष्ट कर देते हैं तथा जिन प्रकृतियों का उदय नहीं होता उनका स्तिबुकसंक्रम के द्वारा प्रतिसमय वेद्यमान प्रकृतियों में संक्रम करते हुए अयोगिकेवली गुणस्थानक के उपान्त्य समय तक वेद्यमान प्रकृति रूप से वेदन करते हैं ।

उपान्त्य समय में क्षय होने वाली प्रकृतियाँ

देवगइसहगयाओ, दुचरम समयभविअम्मि खीअंति ।
सविवागेअरनामा नीआगोअं पि तत्थेव ।।83।।

–: शब्दार्थ :–

देवगइसहगयाओ=देवगति के साथ जिनका बंध होता है ऐसी,
दुचरमसमयभविअम्मि=दो अन्तिम समय जिसके बाकी हैं, ऐसे जीव के,
खीअंति=क्षय होती हैं,
सविवागेअरनामा=विपाकरहित नामकर्म की प्रकृतियाँ,
नीआगोअं=नीच गोत्र और एक वेदनीय,
पि=भी,
तत्थेव=वहीं पर ।

गाथार्थ :–अयोगिकेवली अवस्था में दो अंतिम समय जिसके बाकी हैं ऐसे जीव के देवगति के साथ बँधने वाली प्रकृतियों का क्षय होता है तथा विपाकरहित जो नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं तथा नीच गोत्र और किसी एक वेदनीय का भी वहीं क्षय होता है ।

विवेचन :– अयोगिकेवली अवस्था में जिन प्रकृतियों का उदय नहीं होता है, उनकी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थानक के काल से एक समय कम होती है। इसीलिए उनका उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है। उपान्त्य समय में क्षय होने वाली प्रकृतियों का कथन पहले नहीं किया गया है, अतः इस गाथा में निर्देश किया है कि जिन प्रकृतियों का देवगति के साथ बंध होता है उनकी तथा नामकर्म की जिन प्रकृतियों का अयोगि अवस्था में उदय नहीं होता उनकी और नीच गोत्र व किसी एक वेदनीय की उपान्त्य समय में सत्ता का विच्छेद हो जाता है।

देवगति के साथ बँधने वाली प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं–देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय बंधन, वैक्रिय संघात, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक बंधन, आहारक संघातन, आहारक अंगोपांग, ये दस प्रकृतियाँ हैं।

गाथा में अनुदय रूप से संकेत की गई नामकर्म की पैंतालीस प्रकृतियाँ ये हैं-औदारिक शरीर, औदारिक बंधन, औदारिक संघातन, तैजस शरीर,तैजस बन्धन, तैजस संघातन, कार्मण शरीर, कार्मण बंधन, कार्मण संघातन, छह संस्थान, छह संहनन, औदारिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, पराघात, उपघात, अगुरुलघु, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, अपर्याप्त, उच्छ्वास, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण।

इनसे अतिरिक्त नीच गोत्र और साता व असाता वेदनीय में से कोई एक वेदनीय कर्म। कुल मिलाकर ये सब 10 + 45 + 2 = 57 होती हैं। जिनका अयोगिकेवली अवस्था के उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है।

उक्त सत्तावन प्रकृतियों में वर्णचतुष्क में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श, ये चार मूल भेद ग्रहण किये हैं, इनके अवान्तर भेद नहीं है। यदि इन मूल वर्णादि चार के स्थान पर उनके अवान्तर भेद ग्रहण किये जायें तो उपान्त्य समय में क्षय होने वाली प्रकृतियों की संख्या तिहत्तर हो जाती है। यद्यपि गाथा में किसी भी वेदनीय का नामोल्लेख नहीं किया किन्तु गाथा में जो 'पि' शब्द आया है उसके द्वारा वेदनीय कर्म के दोनों भेदों में से किसी एक वेदनीय कर्म का ग्रहण हो जाता है।

अन्नयरवेअणीअं मणुआउअ मुच्चगोअ नव नामे ।
वेएइ अजोगिजिणो, उक्कोस जहन्न मिक्कारा ।।84।।

–: शब्दार्थ :–

अन्नयरवेअणीअं=दो में से कोई एक वेदनीय कर्म,	**वेएइ**=वेदन करते हैं,
मणुआउअं=मनुष्यायु,	**अजोगिजिणो**=अयोगिकेवली जिन,
मुच्चगोअ=उच्चगोत्र,	**उक्कोस**=उत्कृष्ट से,
नव नामे=नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ,	**जहन्न**=जघन्य से,
	मिक्कारा=ग्यारह ।

गाथार्थ :–अयोगिजिन उत्कृष्ट रूप से दोनों वेदनीय में से किसी एक वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ, इस प्रकार बारह प्रकृतियों का वेदन करते हैं तथा जघन्य रूप से ग्यारह प्रकृतियों का वेदन करते हैं ।

विवेचन :–अयोगिकेवली गुणस्थानक में उपान्त्य समय तक कर्मों की कुछ प्रकृतियों को छोड़कर शेष प्रकृतियों का क्षय हो जाता है । लेकिन जो प्रकृतियां अन्तिम समय में क्षय होती हैं उनके नाम इस गाथा में बतलाते हैं कि किसी एक वेदनीय कर्म, मनुष्यायु, उच्च गोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियों का क्षय होता है ।

यहाँ (अयोगिकेवली अवस्था में) किसी एक वेदनीय के क्षय होने का कारण यह है कि तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय में साता और असाता वेदनीय में से किसी एक वेदनीय का उदयविच्छेद हो जाता है । यदि साता का विच्छेद होता है तो असाता वेदनीय का और असाता का विच्छेद होता है तो साता वेदनीय का उदय शेष रहता है । इसी बात को बतलाने के लिए गाथा में `अन्नयरवेअणीअं'–अन्यतर वेदनीय पद दिया है ।

इसके अलावा गाथा में उत्कृष्ट रूप से बारह और जघन्य रूप से ग्यारह प्रकृतियों के उदय को बतलाने का कारण यह है कि सभी जीवों को तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता है । तीर्थंकर प्रकृति का उदय उन्हीं को होता है जिन्होंने उसका बंध किया हो । इसलिए अयोगिकेवली अवस्था में अधिक से अधिक बारह प्रकृतियों का और कम से कम ग्यारह प्रकृतियों का उदय माना गया है ।

मणुअगइ जाइ तस बायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं ।
जसकित्ती तित्थयरं, नामस्स हवंति नव एआ ।।85।।

–: शब्दार्थ :–

मणुअगइ=मनुष्यगति,	**जसकित्ती**=यश:कीर्ति,
जाइ=पंचेन्द्रिय जाति,	**तित्थयरं**=तीर्थंकर,
तसबायरं=त्रस बादर,	**नामस्स**=नामकर्म की,
च=और,	**हवंति**=है,
पज्जत्त=पर्याप्त,	**नव**=नौ,
सुभगं=सुभग,	**एआ**=ये ।
आइज्जं=आदेय,	

गाथार्थ :–मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं ।

विवेचन :–इस गाथा में नामकर्म की उक्त नौ प्रकृतियों के नाम इस प्रकार बतलाये हैं-1. मनुष्यगति, 2. पंचेन्द्रिय जाति, 3. त्रस, 4. बादर, 5. पर्याप्त, 6. सुभग, 7. आदेय, 8. यश:कीर्ति, 9. तीर्थंकर ।

मतान्तर का कथन

तच्चाणुपुव्विसहिआ, तेरस भवसिद्धिअस्स चरमम्मि ।
संतंसगमुक्कोसं, जहन्नयं बारस हवंति ।।86।।

–: शब्दार्थ :–

तच्चाणुपुव्विसहिआ=उस (मनुष्य की) आनुपूर्वी सहित,	**संतसगं**=कर्म प्रकृतियों की सत्ता,
तेरस=तेरह,	**उक्कोसं**=उत्कृष्ट रूप से,
भवसिद्धिअस्स=तद्भव मोक्षगामी जीव के,	**जहन्नयं**=जघन्य रूप से,
चरमम्मि=चरम समय में,	**बारस**=बारह,
	हवंति=होती हैं ।

गाथार्थ :–तद्भव मोक्षगामी जीव के चरम समय में उत्कृष्ट रूप से मनुष्यानुपूर्वी सहित तेरह प्रकृतियों की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

विवेचन :–इस गाथा में मतान्तर का उल्लेख किया है कि कुछ आचार्य अयोगिकेवली गुणस्थानक के चरम समय में मनुष्यानुपूर्वी का भी उदय मानते हैं, इसलिए उनके मत से चरम समय में तेरह प्रकृतियों की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

पहले यह संकेत किया जा चुका है कि जिन प्रकृतियों का उदय अयोगि अवस्था में नहीं होता है, उनकी सत्ता का विच्छेद उपान्त्य समय में हो जाता है । मनुष्यानुपूर्वी का उदय पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानक में ही होता है, इसलिए इसका उदय अयोगि अवस्था में नहीं हो सकता है । इसी कारण इसकी सत्ता का विच्छेद अयोगिकेवली अवस्था के उपान्त्य समय में बतलाया है । लेकिन अन्य कुछ आचार्यों का मत है कि मनुष्यानुपूर्वी की सत्त्व व्युच्छित्ति अयोगि अवस्था के अंतिम समय में होती है । इस मतान्तर के कारण अयोगि अवस्था के चरम समय में उत्कृष्ट रूप से तेरह प्रकृतियों की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियों की सत्ता मानी जाती है ।

ग्रंथकर्ता के मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है, जिससे अंतिम समय में उदयगत बारह प्रकृतियों या ग्यारह प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है । लेकिन कुछ आचार्यों के मतानुसार अंतिम समय में मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता और रहती है, अतः अंतिम समय में तेरह या बारह प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है । अब अन्य आचार्यों द्वारा मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता अंतिम समय तक माने जाने के कारण को अगली गाथा में स्पष्ट करते हैं ।

मणुअगइसहगयाओ, भवखित्तविवाग जिअविवागाओ ।
वेअणिअन्नयरुच्चं, चरम-समयंमि खीअंति ।।87।।

–: शब्दार्थ :–

मणुअगइसहगयाओ=मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली,	**वेअणिअन्नय**=अन्यतर वेदनीय (कोई एक वेदनीय कर्म),
भवखित्तविवाग=भव और क्षेत्र विपाकी,	**रुच्चं**=उच्च गोत्र,
जिअविवागाओ=जीवविपाकी,	**चरम समयंमि**=चरम समय में भव्य जीव के,
	खीअंति=क्षय होती हैं ।

गाथार्थ :–मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियों का तथा किसी एक वेदनीय और उच्च गोत्र का तद्भव मोक्षगामी भव्य जीव के चरम समय में क्षय होता है ।

विवेचन :–मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली जितनी भी भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियाँ हैं तथा कोई एक वेदनीय और उच्च गोत्र, इनका अयोगिकेवली गुणस्थानक के अंतिम समय में क्षय होता है ।

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी का अर्थ यह है कि जो प्रकृतियां नरक आदि भव की प्रधानता से अपना फल देती हैं, वे भवविपाकी कही जाती हैं, जैसे चारों आयुष्य । जो प्रकृतियाँ क्षेत्र की प्रधानता से अपना फल देती हैं वे क्षेत्रविपाकी कहलाती हैं, जैसे चारों आनुपूर्वी । जो प्रकृतियाँ अपना फल जीव में देती हैं उन्हें जीवविपाकी कहते हैं, जैसे पाँच ज्ञानावरण आदि ।

यहाँ मनुष्यायुष्य भवविपाकी है, मनुष्यानुपूर्वी क्षेत्रविपाकी और नामकर्म की पूर्वोक्त नौ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं तथा इनके अतिरिक्त कोई एक वेदनीय तथा उच्चगोत्र, इन दो प्रकृतियों को और मिलाने से कुल तेरह प्रकृतियाँ हो जाती हैं जिनका क्षय भवसिद्धिक जीव के अयोगि केवली गुणस्थानक के अंतिम समय में होता है ।

मनुष्यानुपूर्वी का जब भी उदय होता है तब उसका उदय मनुष्यगति के साथ ही होता है । इस नियम के अनुसार भवसिद्धिक जीव के अंतिम समय में तेरह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना बारह प्रकृतियों का क्षय होता है । किन्तु मनुष्यानुपूर्वी प्रकृति अयोगिकेवली गुणस्थानक के उपान्त्य समय में क्षय हो जाती है । इस मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का अयोगिकेवली अवस्था में उदय नहीं होता है, अतः उसका अयोगि अवस्था के उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है । जो प्रकृतियाँ उदय वाली होती हैं उनका स्तिबुकसंक्रम नहीं होता है, जिससे उनके दलिक स्व-स्वरूप से अपने-अपने उदय के अंतिम समय में दिखाई देते हैं और इसलिए उनका अंतिम समय में सत्ताविच्छेद होता है । चारों आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृतियाँ हैं, उनका उदय केवल अपान्तराल गति में ही होता है । इसलिए भवस्थ जीव के उनका उदय संभव नहीं है और इसीलिए मनुष्यानुपूर्वी का अयोगि अवस्था के अंतिम समय में सत्ताविच्छेद न होकर द्विचरम समय में ही उसका सत्ता विच्छेद हो जाता है । पहले जो

द्विचरम समय में सत्तावन प्रकृतियों का सत्ताविच्छेद और अंतिम समय में बारह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना ग्यारह प्रकृतियों का सत्ताविच्छेद बतलाया है, वह इसी मत के अनुसार बतलाया है ।

निःशेष रूप से कर्मों का क्षय हो जाने के बाद जीव एक समय में ही ऋजुगति से ऊर्ध्वगमन करके सिद्धिस्थान को प्राप्त कर लेता है ।

निष्कर्मा शुद्ध आत्मा की अवस्था

अह सुइअसयलजगसिहर-मरुअनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।
अनिहणमव्वाबाहं, तिरयणसारं अणुहवंति ।।88।।

—: शब्दार्थ :—

अह=इसके बाद (कर्म क्षय होने के बाद),	**निरुवम**=निरुपम, उपमारहित,
सुइअ=एकांत शुद्ध,	**सहाव**=स्वाभाविक,
सयल=समस्त,	**सिद्धिसुहं**=मोक्षसुख को,
जगसिहरं=जगत् के सुख के शिखर तुल्य,	**अनिहणं**=नाशरहित, अनन्त,
मरुअ=रोग रहित,	**अव्वाबाहं**=अव्याबाध,
	तिरयणसारं=रत्नत्रय के साररूप,
	अणुहवंति=अनुभव करते हैं ।

गाथार्थ :—कर्मक्षय होने के बाद जीव एकांत शुद्ध, समस्त जगत् के सब सुखों से भी बढ़कर, रोगरहित, उपमारहित, स्वाभाविक, नाशरहित, बाधारहित, रत्नत्रय के साररूप मोक्षसुख का अनुभव करते हैं ।

विवेचन :—कर्मक्षय हो जाने के बाद जीव की स्थिति का वर्णन किया है कि वह अनुपम सुख का अनुभव करता है ।

कर्मातीत अवस्थाप्राप्ति के बाद प्राप्त होने वाले सुख के क्रमशः नौ विशेषण दिये हैं । उनमें पहला विशेषण है-**शुचिक**=जिसका अर्थ एकान्त शुद्ध है । संसारी जीवों को प्राप्त होने वाला सुख राग-द्वेष से मिला होता है, किन्तु सिद्ध जीवों को प्राप्त होने वाले सुख में रागद्वेष का सर्वथा अभाव होता है, इसलिए उनको जो सुख होता है वह शुद्ध आत्मा से उत्पन्न होता है, उसमें बाहरी वस्तु का संयोग और वियोग तथा इष्टानिष्ट कल्पना कारण नहीं है ।

दूसरा विशेषण है-**सकल**=जिसका अर्थ सम्पूर्ण होता है । संसारी

अवस्था में जीवों के कर्मों का संबंध बना रहता है, जिससे एक तो आत्मिक सुख की प्राप्ति होती ही नहीं और कदाचित् सम्यग्दर्शन आदि के निमित्त से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती भी है तो उसमें व्याकुलता का अभाव न होने से वह किंचिन्मात्रा में, सीमित मात्रा में प्राप्त होता है। किन्तु सिद्धों के सब बाधक कारणों का अभाव हो जाने से पूर्ण सिद्धिजन्य सुख प्राप्त होता है।

तीसरा विशेषण **जगशिखर**=जिसका अर्थ है कि जगत् में जितने भी सुख हैं, सिद्ध जीवों का सुख उन सब में प्रधान है। क्योंकि आत्मा के अनन्त अनुजीवी गुणों में सुख भी एक गुण है। अतः जब तक यह जीव संसार में रहता है, तब तक उसका यह गुण घातित रहता है। कदाचित् प्रकट भी होता है, तो स्वल्प मात्रा में प्रकट होता है। किन्तु सिद्ध जीवों के प्रतिबन्धक कारणों के दूर हो जाने से सुख गुण अपने पूर्ण रूप में प्रकट हो जाता है, इसलिए जगत् में जितने भी प्रकार के सुख हैं, उनमें सिद्ध जीवों का सुख प्रधानभूत है।

चौथा विशेषण **रोगरहित**=उस सुख में लेश व्याधि-रोग नहीं है। क्योंकि रोगादि दोषों की उत्पत्ति शरीर के निमित्त से होती है। जहाँ शरीर है वहाँ रोग की उत्पत्ति अवश्य होती है। सिद्ध जीव शरीर रहित हैं, उनके शरीरप्राप्ति का निमित्तकारण कर्म भी दूर हो गया है, इसीलिए सिद्ध जीवों का सुख रोगादि दोषों से रहित है।

पाँचवाँ विशेषण **उपमारहित**=प्रत्येक वस्तु के गुणधर्म और उसकी पर्याय दूसरी वस्तु के गुणधर्म और पर्याय से भिन्न हैं, अतः थोड़ी-बहुत समानता को देखकर दृष्टांत द्वारा उसका परिज्ञान कराने की प्रक्रिया को उपमा कहते हैं। परन्तु यह प्रक्रिया इन्द्रियगोचर पदार्थों में ही घटित हो सकती है। सिद्धों का सुख तो अतीन्द्रिय है, इसलिए उपमा द्वारा उसका परिज्ञान नहीं कराया जा सकता है। संसार में तत्सदृश ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसकी उसे उपमा दी जा सके, इसलिए सिद्ध परमेष्ठी के सुख को अनुपम कहा है।

छठा विशेषण **स्वभावभूत**=संसार सुख तो कोमल स्पर्श, सुस्वादु भोजन, वायुमण्डल को सुरभित करने वाले अनेक प्रकार के पुष्प, इत्र, तेल आदि के गंध, रमणीय रूप के अवलोकन, मधुर संगीत आदि के निमित्त से उत्पन्न होता है, लेकिन सिद्ध सुख तो आत्मा का स्वभाव है, वह बाह्य इष्ट मनोज्ञ पदार्थों के संयोग से उत्पन्न नहीं होता है।

सातवाँ विशेषण **अनिधन**=सिद्ध अवस्था प्राप्त हो जाने के बाद उसका कभी नाश नहीं होता है । उसके स्वाभाविक अनंतगुण सदा स्वभाव रूप से स्थिर रहते हैं ।

आठवाँ विशेषण **अव्याबाध**=अर्थात् बाधारहित । उसमें किसी प्रकार का अन्तराल नहीं और न किसी के द्वारा उसमें रुकावट आती है । जो अन्य के निमित्त से होता है या अस्थायी होता है उसी में बाधा उत्पन्न होती है । परन्तु सिद्ध जीवों का सुख न तो अन्य के निमित्त से ही उत्पन्न होता है और न थोड़े काल तक ही टिकने वाला है । इसीलिए उसे अव्याबाध कहा है ।

नौवाँ विशेषण **त्रिरत्नसार**=यानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न हैं, जिन्हें रत्नत्रय कहते हैं । सिद्धों को प्राप्त होने वाला सुख उनका सारफल है । क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय कर्मक्षय का कारण है और कर्मक्षय के बाद सिद्धसुख की प्राप्ति होती है । इसीलिए सिद्धिसुख को रत्नत्रय का सार कहा गया है । उससे निराकुल अवस्था की प्राप्ति होती है । सुख की अभिव्यक्ति निराकुलता में ही है । इसी कारण से सिद्धों को प्राप्त होने वाले सुख को रत्नत्रय का सार बताया है ।

आत्मस्वरूप की प्राप्ति करना जीवमात्र का लक्ष्य है और उस स्वरूप प्राप्ति में बाधक कारण कर्म है । कर्मों का क्षय हो जाने के अनन्तर अन्य कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता है ।

दुरहिगम-निउण-परमत्थ-रुईर-बहुभंगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरिअव्वा, बंधोदयसंतकम्माणं ।।89।।

—: शब्दार्थ :—

दुरहिगम=अतिश्रम से जानने योग्य,	**दिट्ठिवायाओ**=दृष्टिवादअंग
निउण=सूक्ष्म बुद्धिगम्य,	**अत्था**=विशेष अर्थवाला
परमत्थ=यथावस्थित अर्थवाला,	**अणुसरिअव्वा**=जानने के लिए,
रुईर=रुचिकर, आह्लादकारी,	**बंधोदयसंतकम्माणं**=बंध, उदय
बहुभंग=बहुत भंगवाला,	और सत्ता कर्म की ।

गाथार्थ :—दृष्टिवाद अंग अतिश्रम से जानने योग्य, सूक्ष्म बुद्धिगम्य, यथावस्थित अर्थ का प्रतिपादक, आह्लादकारी, बहुत भंग वाला है । जो बंध,

उदय और सत्ता रूप कर्मों को विशेष रूप से जानना चाहते हैं, उन्हें यह सब इससे जानना चाहिए ।

विवेचन :–यह सप्ततिका ग्रंथ दृष्टिवाद अंग के आधार पर लिखा गया है । यह दृष्टिवाद अंग दुरभिगम्य है, सब इसको सरलता से नहीं समझ सकते हैं । लेकिन जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है, जो सूक्ष्म पदार्थ को जानने के लिए जिज्ञासु हैं, वे ही इसमें प्रवेश कर पाते हैं । दृष्टिवाद अंग को दुरभिगम्य बताने का कारण यह है कि यद्यपि इसमें यथावस्थित अर्थ का सुन्दरता से युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है लेकिन अनेक भेदप्रभेद हैं, इसीलिए इसको कठिनता से जाना जाता है । इसका अपनी बुद्धि से मंथन करके जो कुछ भी ज्ञात किया जा सका उसके आधार से इस ग्रंथ की रचना की है, लेकिन विशेष जिज्ञासुजन दृष्टिवाद अंग का अध्ययन करें, और उससे बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों के भेदप्रभेदों को समझें । यह सप्ततिका नामक ग्रन्थ तो उनके लिए मार्गदर्शक के समान है ।

जो जत्थ अपडिपुन्नो, अत्थो अप्पागमेण बद्धोत्ति ।
तं खमिऊण बहुसुआ, पूरेऊणं परिकहंतु ।।90।।

–: शब्दार्थ :–

जो=जिस,	**बद्धोत्ति**=निबद्ध किया है,
जत्थ=जहाँ,	**तं**=उसके लिए,
अपडिपुन्नो=अपूर्ण,	**खमिऊण**=क्षमा करके,
अत्थो=अर्थ,	**बहुसुआ**=बहुश्रुत,
अप्पागमेण=अल्पश्रुत, आगम के अल्प ज्ञाता-मैंने,	**पूरेऊणं**=परिपूर्ण करके,
	परिकहंतु=भली प्रकार से प्रतिपादन करें ।

गाथार्थ :–मैं तो आगम का अल्प ज्ञाता हूँ, इसलिए मैंने जिस प्रकरण में जितना अपरिपूर्ण अर्थ निबद्ध किया है, वह मेरा दोष-प्रमाद है । अतः बहुश्रुत जन मेरे उस दोष-प्रमाद को क्षमा करके उस अर्थ की पूर्ति करने के साथ कथन करें ।

विवेचन :–गाथा में अपनी लघुता प्रकट करते हुए ग्रंथकार लिखते हैं कि मैं न तो विद्वान हूँ और न बहुश्रुत, किन्तु अल्पज्ञ हूँ । इसलिए यह दावा

नहीं करता हूँ कि ग्रंथ सर्वांगीण रूप से विशेष अर्थ को प्रकट करने वाला बन सका है । इस ग्रंथ में जिस विषय को प्रतिपादन करने की धारणा की हुई थी, सम्भव है अपनी अल्पज्ञता के कारण उसका पूरी तरह से न निभा पाया होऊँ तो इसके लिए मेरा प्रमाद ही कारण है और यत्र-तत्र स्खलित भी हो गया होऊं किन्तु जो बहुश्रुत जन हैं, वे मेरे इस दोष को भूल जायें और जिस प्रकरण में जो कमी रह गई हो, उसकी पूर्ति करते हुए कथन करने का ध्यान रखें, यही विनम्र निवेदन है ।

गाहग्गं सयरीए, चंदमहत्तर-मयाणुसारीए ।
टीगाइ निअमिआणं, एगूणा होइ नउईओ ।।91।।

–: शब्दार्थ :–

गाहग्गं=गाथाएं,	**निअमिआणं**=निर्माण,
सयरीए=सित्तर,	**एगूणा**=एक न्युन,
चंदमहत्तरमयाणुसारीए=चंद्रमहत्तरा के मतानुसार,	**होइ**=होती है,
टीगाइ=टीका से,	**नउईओ**=नब्बे

गाथार्थ :–श्री चंद्रमहत्तरा आचार्य के मत का अनुसरण करनेवाली 70 गाथाओं के द्वारा इस ग्रंथ का निर्माण हुआ है । उसमें टीकाकार विरचित गाथाओं को जोडने से 89 गाथाएँ होती हैं ।

विवेचन :–सर्वप्रथम श्री चंद्रमहत्तराचार्यश्रीने 70 गाथा प्रमाण यह ग्रंथ रचा था, परंतु इसमें रहे कई पदार्थों का बोध कठिन था, इसलिए ग्रंथकर्ता की अनुमति प्राप्त कर उनमें भाष्य की कई गाथाओं को भी ग्रंथ में जोड़ दिया गया है-इस कारण इस ग्रंथ का प्रमाण 89 संख्या का हुआ है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न,
पू.आ. श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा
मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित
243 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य
पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-
7.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
9.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
10.	विविध-तपमाला	100/-
11.	विवेकी बनो	90/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-
13.	आओ श्रावक बनें !	25/-
14.	व्यसन-मुक्ति	100/-
15.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-
18.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
19.	समाधि मृत्यु	80/-
20.	Pearls of Preaching	60/-
21.	New Message for a New Day	600/-
22.	Panch Pratikraman Sootra	100/-
23.	अमृत रस का प्याला	300/-
24.	ध्यान साधना	40/-
25.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
26.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
27.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
28.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
29.	जीव विचार विवेचन	100/-
30.	नवतत्त्व विवेचन	110/-
31.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-
32.	लघु संग्रहणी	140/-
33.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
34.	कर्मग्रन्थ (भाग-1)	160/-
35.	दूसरा कर्मग्रन्थ	110/-
36.	गणधर-संवाद	80/-
37.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
38.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-
39.	विविध देववंदन	100/-
40.	संस्मरण	50/-
41.	भव आलोचना	10/-
42.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
43.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
44.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
45.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
48.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
49.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
50.	नमस्कार मीमांसा	150/-
51.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
56.	वैराग्य-वाणी	140/-
57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
63.	मन के जीते जीत है	80/-
64.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
66.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
68.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
69.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
70.	वैराग्य-शतक	140/-
71.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
72.	धर्म-बीज	140/-
73.	45 आगम परिचय	200/-
74.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
75.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
76.	नित्य देववंदन	निशुल्क
77.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
78.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
79.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
80.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299